

सचित्र

# श्रीमद्भाल्मीकि-रामायण

[ हिन्दीभाषानुवाद सहित ]

## उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध-६

अनुवादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, पम० आर० प०पस०

---

प्रकाशक

रामनारायण लाल

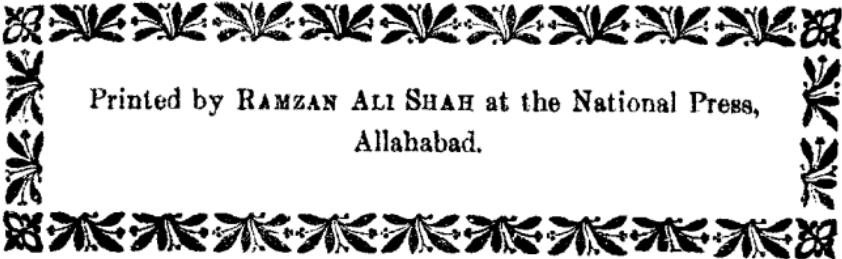
पश्चिमशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९२७

प्रथम संस्करण २००० ]

[ मूल्य १॥ ]



Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press,  
Allahabad.

## उत्तरकाण्ड-पूर्वार्द्ध

की

## विषयानुक्रमणिका

पथम सर्ग

१-९

श्रीरामचन्द्र जी के गढ़ी पर बैठ चुकने पर उनको बधाई देने के लिये पूर्व दिशादि चारों दिशावासी कौशकादि महर्षियों का आगमन। श्रीरामद्वारा उनका पूजन। ऋषियों द्वारा श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा। ऋषियों के मुख से इन्द्रजीत की प्रशंसा सुन श्रीरामचन्द्र जी का विस्मित होना। साथ ही उसके प्रभावादि सुनने के लिये श्रीरामचन्द्र जी का उत्सुकता प्रकट करना।

दूसरा सर्ग

१०-१७

उत्तर में अगस्त्य जी द्वारा रावण के पितामह पुलस्त्य जी की कथा का वर्णन। विश्रवा की उत्पत्ति।

तीसरा सर्ग

१७-२५

रावण के पिता विश्रवा की तपश्चर्या। विश्रवा को भरद्वाज का अपनी कन्या देना। इन दोनों से वैश्रवण की उत्पत्ति। विश्रवा द्वारा वैश्रवण को रहने के लिये, त्रिकूट-पर्वतशिखर-स्थित लङ्घा का बतलाया जाना। वैश्रवण की लोकपाल पद पर नियुक्ति, दैवतव प्राप्ति एवं सवारी के लिये पुष्पकविमान की उपलब्धि।

चौथा सर्ग

२५-३३

लङ्घा निर्माण के समय ही से लङ्घा में राज्ञसों की आवादी का वृत्तान्त सुन, श्रीरामचन्द्र जी का

उनके विषय में पूरा हाल सुनने की उत्कण्ठा प्रकट करना ।  
 अगस्त्य द्वारा राज्ञसोत्पत्ति तथा यज्ञोत्पत्ति वर्णन । वैति-  
 प्रहृति नामक भाइयों का वर्णन । विद्युत्केश की उत्पत्ति ।  
 सम्ब्या को कन्या से विद्युत्केश का विवाह । माता द्वारा परि-  
 त्यक्त सुकेश नामक राज्ञस बालक को पड़ा देख, दयावश  
 पार्वती और शिव का राज्ञस बालकों को वरदान ।

**पाँचवाँ सर्ग**

३३-४३

सुकेश के वंशविस्तार का वर्णन ।

**छठवाँ सर्ग**

४४-५९

सुकेश के पुत्रों द्वारा देवताओं का सताया जाना  
 और उनके साथ युद्ध करने के लिये देवताओं का युद्ध-  
 समारोह ।

**सातवाँ सर्ग**

५९-७२

राज्ञसों और देवताओं की लड़ाई । माली राज्ञस  
 का वध ।

**आठवाँ सर्ग**

७३-८०

माल्यवान का पराजय और बचे हुए राज्ञसों सहित  
 लड़ा से उसका पलायन और श्रीभगवान विष्णु के भय से  
 उन सब का रसातल गमन ।

**नवाँ सर्ग**

८०-९१

माल्यवान के भाई सुमाली का मर्यादाक में आग-  
 मन । रावणादि की उत्पत्ति ।

**दसवाँ सर्ग**

९१-१०१

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की तयार्या और  
 ब्रह्मा जी से उनको वरदान का मिलना ।

## ग्यारहवाँ सर्ग

१०२-११३

कुबेर को निकाल कर लड़ा में राज्ञसों का पुनर्वास ।  
रावण का लड़ा में राज्याभिषेक ।

## बारहवाँ सर्ग

११३-११९

कालकेय वंशी दानवेन्द्र विद्युजिह्वा का सूपनला के साथ विवाह । रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण का विवाह । इन्द्रजीत मेघनाद की उत्पत्ति ।

## तेरहवाँ सर्ग

१२०-१२९

कुम्भकर्ण का ब्रह्मा के शाप से निद्राभिभूत होना । देवता, ऋषि, यज्ञ और गन्धर्वों पर रावण के अत्याचार । कुबेर का रावण के पास दूत भेजना और रावण द्वारा उस दूत का जान से मारा जाना ।

## चौदहवाँ सर्ग

१२९-१३६

रावण की कैलासयात्रा । राज्ञसों की यज्ञों से लड़ाई ।

## पन्द्रहवाँ सर्ग

१३६-१४५

यज्ञों और राज्ञसों का युद्ध । कुबेर द्वारा रावण की भत्सना । रावण और कुबेर का युद्ध । कुबेर का रावण के प्रहार से मूर्च्छित होना । रावण द्वारा पुण्यक विमान का अपहरण ।

## सोलहवाँ सर्ग

१४५-१५६

रावण का युद्ध करने के लिये इधर उधर घूमते हुए कैलास के समीप पहुँचना और कैलास पर्वत को उठाना । पर्वत के नीचे रावण के हाथों का दब जाना और उसका रोना । इस पर उसको “रावण” नाम की प्राप्ति । रावण का मर्त्यलोक में आगमन और मनुष्यों को सताना ।

**सत्रहवाँ सर्ग**

१५६-१६५

हिमालयपर्वत परारावण का वेदवती के साथ काम चेष्टा करना । वेदवती का अग्नि में कुद कर प्राणोत्सर्ग करना और रावण को शाप देना ।

**अठारहवाँ सर्ग**

१६५-१७३

रावण का उशीरबीज नामक देश में गमन । वहाँ मरुत्त राजा को रावण का युद्ध के लिये ललकारन । मरुत्त और रावण का कथोपकथन । राजा मरुत्त के यज्ञ में आये हुए ऋषियों को मार कर, रावण का उनका रक्तपान कर, वहाँ से प्रस्थान करना ।

**उन्नीसवाँ सर्ग**

१७३-१८०

अयोध्यानरेश अनरण्य के साथ रावण का युद्ध । अनरण्य का पराजय और रावण को शाप तथा अनरण्य की स्वर्गयात्रा ।

**बीसवाँ सर्ग**

१८१-१८८

रावण और नारद का संवाद । नारद का यमराज से युद्ध करने के लिये, रावण को परामर्श ।

**इक्कीसवाँ सर्ग**

१८८-१९८

रावण — यमपुरी में जा कर उत्पात और यम-  
किङ्गों के घ का युद्ध ।

**बाइसवाँ सर्ग**

१९८-२०९

युद्धस्थ यमराज के साथ रावण का युद्ध । ब्रह्मा जो के अनुरे होना । रावण यमराज का युद्धस्थल से अन्तर्धान अपने विजय का डंका बजा कर, वहाँ से प्रस्थान ।

## तेइसवाँ सर्ग

२०९-२२१

रावण का रसातल प्रवेश । वहाँ पर बहुण और बहुण-पुत्रों से रावण का युद्ध । बहुणपुत्रों का युद्ध में मारा जाना । रावण का विजय और लड़ा को लौट जाना ।

---

## प्रच्छित सर्ग पाँच

## प्रथम प्रक्षिप्त सर्ग

२२१-२४१

युद्धोन्मत्त रावण का अश्मनगर में गमन । वहाँ राजा बलि के द्वार पर उपस्थित महापुरुष से रावण का वार्तालाप । उनके निर्देश से रावण का भवन के भीतर प्रवेश और राजा बलि के पास गमन । राजा बलि की बलपरीक्षा में रावण का विफल होना ।

## दूसरा प्रक्षिप्त सर्ग

२४१-२४४

रावण का सूर्यलोक में गमन और दूर्तों द्वारा दोनों में कथोपकथन । रावण का वहाँ पर अपने विजय की घोषणा कर वहाँ से प्रस्थान ।

## तीसरा प्रक्षिप्त सर्ग

२४४-२५६

रावण की चन्द्रलोकयात्रा । बीच में रावण का मान्धाता से युद्ध । पुलस्य का बीच में पड़ दोनों का मेल करवा देना ।

## चौथा प्रक्षिप्त सर्ग

२५७-२६७

रावण का चन्द्रमा के साथ युद्ध और ब्रह्मा जी का बीच में पड़ दोनों को समझाना ।

## पाँचवाँ प्रक्षिप्त सर्ग

२६७-२८२

रावण का पश्चिम दिशा के एक द्वीप में गमन और वहाँ कपिलदेव द्वारा रावण का पराजय ।

## चौबीसवाँ सर्ग

२८३-२९२

रावण का लङ्घा को लौटते समय अनेक देव, मुनियों और यज्ञों को मारना तथा उनकी सुन्दर ललनाथों को बरजोरी ले आना ।

## पचीसवाँ सर्ग

२९२-३०३

मधुदैत्य द्वारा अपनी वहिन कुंभीनसी के हरे जाने का संवाद सुन, रावण का मधुपुरी में गमन और वहिन के कहने से मधु में और रावण में मेल का होना । स्वर्गविजय के लिये रावण का उद्योग ।

## छब्बीसवाँ सर्ग

३०४-३१६

मार्ग में पहाड़ पर रावण का नलकूवर के पास जाती हुई रम्भा को बरजोरी पकड़ कर, उसके साथ सम्मोग करना । रम्भा के मुख से इस वृत्तान्त का सुन, नलकूवर का रावण को शाप देना । इस शाप का वृत्तान्त सुन रावण के अन्तःपुर में अवरुद्ध ललनाथों का प्रसन्न होना ।

## सत्ताइसवाँ सर्ग

३१७-३२८

रावण का स्वर्ग में पहुँचना, और इन्द्र के युद्ध के लिये ललकारना । इन्द्र का नारायण के पास जाना । इन्द्र और नारायण का संवाद । राक्षसों और देवताओं का युद्ध । सावित्रि के गदाप्रहार से युद्धभूमि से राक्षसों का पलायन ।

## अद्वाइसवाँ सर्ग

३२८-३३८

राक्षसों को भागते देख मेघनाद का देवताओं पर आकमण करना और उनको रणक्षेत्र से भगा देना । इन्द्र के उत्साहित करने पर देवताओं का लौटना और राक्षसों के साथ घोर युद्ध करना ।

## उन्तीसवाँ सर्ग

३३८-३४७

मायावी मेघनाद का अदृश्य हो जाना । अवसर पा इन्द्रजीत का इन्द्र पर आकमण कर, इन्द्र को पकड़ कर बांध लेना । तथा उनको अपने साथ रथ में बिठा लड़ा को ले जाना ।

## तीसवाँ सर्ग

३४७-३५९

ब्रह्मा का लड़ा में जाना और मेघनाद को इन्द्रजीत की उपाधि से अलंकृत कर इन्द्र को बन्धनमुक्त करवाना । इन्द्र की आत्मगतानि । इस पर ब्रह्मा जी का उनको गौतम ऋषि के शाप का स्मरण कराना और वैष्णवयज्ञ करने का उपदेश देना ।

## इकतीसवाँ सर्ग

३५९-३६८

श्रीरामचन्द्र जी का अगस्त्य जी से रावण का पराजय सम्बन्धी प्रश्न करना । उत्तर में अगस्त्य जी का रावण के पराजय का इतिहास सुनाना । रावण की माहिष्मती यात्रा । माहिष्मती में सहस्रार्जुन को न पा कर रावण का विन्ध्यपर्वत पर होते हुए नर्मदा तट पर पहुँचना ।

## बत्तीसवाँ सर्ग

३६९-३८५

सहस्रार्जुन का अपने भुजबल से नर्मदा के जल-प्रवाह को रोकना और रुके हुए जल का पीछे लौट कर

तट पर रखी हुई रावण की पूजनसामग्री का बहाना । इस पर रावण का कुद्द होना और नर्मदा के उल्टे बहाव का कारण जानने को अपने साथी राक्षसों को भेजना । कारण जान लेने पर रावण का लड़ने के लिये सहस्रार्जुन के पास जाना और युद्ध करने की अपनी अभिलाषा प्रकट करना । सहस्रार्जुन के हाथ से रावण का पकड़ा जाना ।

### तैतीसवाँ सर्ग

३८५—३९०

पुलस्त्य का पौत्रस्नेहवश माहित्यतो में जाना और रावण को छुड़वाना । रावण का लजिज्जत हो लड़ा को लौट जाना ।

### चौतीसवाँ सर्ग

३९०—४०१

रावण का किञ्चिकन्धागमन । वहाँ बालि को न पा कर रावण का उसको खोज में समुद्रतट पर जाना । सन्ध्या करते समय बालि को पकड़ लेने की रावण की चेष्टा । किन्तु रावण का बालि द्वारा स्वयं पकड़ा जाना और बालि की काँख में दबा पड़ा रहना । किञ्चिकन्धा पहुँच बालि का अपमानित रावण के साथ कथोपकथन और बालि के साथ रावण का मैत्री करके एक मास तक किञ्चिकन्धा में रह, लड़ा को लौट जाना ।

### पैतीसवाँ सर्ग

४०२—४१६

धीरामचन्द्र जी का महर्षि अगस्त्य से हनुमान जी के सम्बन्ध में प्रश्न और महर्षि का श्रोहनुमत् जन्मकथा का कहना ।

### छत्तीसवाँ सर्ग

४१६—४३०

हनुमान जी को देवताओं द्वारा वरप्राप्ति । हनुमत् चरित सुन, श्रोरामचन्द्र जी का विस्मित होना । समागत

ऋषियों का प्रस्थान और यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये  
श्रीरामचन्द्र जी की उन सब से प्रार्थना ।

### सैतीसवाँ सर्ग

४३०-४३६

रामाभिषेक के अनन्तर और ऋषियों के चले जाने पर, एवं प्रथम रात बोतने पर बंदोजनों का श्रीरामचन्द्र जी को जगाने के लिये उनका गुणगान करना ।

### प्रक्षिप्त सर्ग पाँच

#### प्रथम प्रक्षिप्त सर्ग

४३६-४४८

अगस्त्य जी के मुख से बालि और सुग्रीव की जन्मकथा ।

#### दूसरा प्रक्षिप्त सर्ग

४४८-४५३

अगस्त्य जी का श्रीरामचन्द्र जी को रावण द्वारा सीता के हरे जाने का रहस्य वृत्तान्त सुनाना ।

#### तीसरा प्रक्षिप्त सर्ग

४५४-४६१

अगस्त्य-श्रीराम-संवाद के अन्तर्गत ऋषि द्वारा रावण से श्रीरामजन्म के समय का वृत्तान्त कहा जाना ।

#### चौथा प्रक्षिप्त सर्ग

४६१-४६३

उक्त कथा को सुन, श्रीरामचन्द्र जी का विस्मित होना । उक्त कथा सुनने का माहात्म्य ।

#### पाँचवाँ प्रक्षिप्त सर्ग

४६३-४७६

रावण का अनेक द्वीपों में भ्रमण । श्वेतद्वीप में खियों द्वारा रावण के साथ खेल खेला जाना । अगस्त्य का श्रीरामचन्द्र जी का रावणवध का रहस्य बतलाया जाना । अगस्त्य जी का प्रस्थान ।

अड़तीसवाँ सर्ग	४७७-४८४
श्रीरामचन्द्र जी की जनकादि से भेंट और राजाओं की बिदाई ।	
उनतालीसवाँ सर्ग	४८४-४९०
वानर युथपतियों की सम्भावना और उनकी बिदाई ।	
चालीसवाँ सर्ग	४९१-४९८
सुग्रीव, विभीषणादि का श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से अयोध्या से प्रस्थान । श्रीरामचन्द्र जी और हनुमान जी का कथोपकथन ।	
इकतालीसवाँ सर्ग	४९८-५०३
पुष्पकविमान का श्रीरामचन्द्र जी के पास पुनरा- गमन और उनकी आज्ञा से पुनः गमन । भरत और श्रीराम जी का राज्य की सुव्यवस्था पर संवाद ।	
बयालीसवाँ सर्ग	५०३-५११
श्रीराम जी का अपनी अशोकवाटिका में सीता सहित गमन और वहाँ पर दोनों का वनविहार । बातों हीं बातों में सीता जी का तपस्वियों के आश्रमों को देखने की अभिलाषा प्रकट करना ।	
तेतालीसवाँ सर्ग	५११-५१६
श्रीरामचन्द्र जी का सीता के विषय में जासूसों के मुख से निन्दापूर्ण जनश्रुति का सुनना ।	
चौवालीसवाँ सर्ग	५१७-५२१
श्रीराम जी का जासूसों को विदा कर, भरत और लद्मण को बुलवाना ।	

## पैतालीसवाँ सर्ग

५२१-५२७

सीता के विषय में सुने हुए अपवाद का दोनों भाइयों  
के सामने श्रीरामचन्द्र द्वारा कहा जाना और लक्ष्मण  
को यह आज्ञा दिया जाना कि, जानकी को बन में  
छोड़ आओ ।

## छियालीसवाँ सर्ग

५२७-५३४

लक्ष्मण के साथ सीता जी का बनगमन । मार्ग में  
सीता-लक्ष्मण संवाद । सीता जी सहित लक्ष्मण का नाव  
द्वारा नदी पार होना ।

## सैतालीसवाँ सर्ग

५३५-५३९

लक्ष्मण और जानकी के गङ्गा पार होने का विस्तृत  
वर्णन ।

## अड़तालीसवाँ सर्ग

५३९-५४५

गङ्गा पर होने पर लक्ष्मण जी का सीता जी को  
उनके श्रीरामचन्द्र जी द्वारा परित्याग किये जाने का  
संदेसा सुनाना ।

## उननचासवाँ सर्ग

५४५-५५१

लक्ष्मण के बचन सुन सीता जी का चिलाप करना  
और श्रीराम जी के लिये लक्ष्मण द्वारा संदेसा कहलाना ।  
लक्ष्मण का जानकी जी को बन में छोड़ अयोध्या को  
लौटना । जानकी का महर्षि वाल्मीकि के आश्रम  
में गमन ।

## पचासवाँ सर्ग

५५१-५५६

मार्ग में लक्ष्मण और सुमंत का संवाद ।

॥ इति ॥



॥ श्रीः ॥

## श्रीमद्भारामायणपारायणोपक्रमः

[नोट—सनातनधर्म के अन्तर्गत जिन वैदिकसम्प्रदायों में श्रीमद्भारामायण का पारायण होता है, उन्हीं सम्प्रदायों के अनुसार उपक्रम और समापन क्रम प्रत्येक खण्ड के आदि और अन्त में क्रमशः दे दिये गये हैं। ]

### श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—\*—

कृजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।

आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकित्तम् ॥ १ ॥

वाल्मीकिमुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।

शृगवन्नामकथानादं कौ न याति परां गतिम् ॥ २ ॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।

अतृप्तस्तं मुर्नि वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ३ ॥

गोष्ठीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।

रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ४ ॥

अञ्जनानन्दनं धोरं जानकीशोकनाशनम् ।

कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्घाभयङ्घरम् ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं

जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वातात्मजं वानरयूथमुख्यं

श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ ६ ॥

उद्धुव्वच सिन्धोः सलिलं सलीलं  
यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः ।  
आवाय तनैव ददाह लङ्कां  
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं  
काञ्जनार्दिकमनीयविग्रहम् ।  
पारिजाततरुमूलवासिनं  
भाषयामि पवमाननन्दनम् ॥ ८ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं  
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।  
बाष्पचारिपरिपूर्णलोचनं  
मारुतिं नमत राज्ञसान्तकम् ॥ ९ ॥

वेदवेदे परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।  
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं  
सममध्युरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।  
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं  
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ११ ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं  
सोतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदोपम् ।  
आजानुवाहुमरविन्ददलायतान्नं  
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ १२ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्धुमतले हैमे महामण्डपे  
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।

अथ्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं  
व्याख्यानं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामजम् ॥१३॥

— : \* : —

### माधवसम्प्रदायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं च तु भुजम् ।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविष्णोपशान्तये ॥ १ ॥

लद्मीनारायणं वन्दे तद्वक्तप्रबरो हि यः ।

श्रीमदानन्दतीर्थाख्यो गुहस्तं च नमाम्यहम् ॥ २ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।

आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥ ३ ॥

सर्वविष्णुप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं परम् ।

सर्वजीवप्रणेतारं वन्दे विजयदं हरिम् ॥ ४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं रामं सर्वारिष्टनिवारकम् ।

जानकीजानिमनिशं वन्दे मदगुहवन्दितम् ॥ ५ ॥

अभ्रमं भङ्गरहितमजडं विमलं सदा ।

आनन्दतीर्थमतुलं भजे तापत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भवति यदनुभावादेडमूकोऽपि वाग्मी

जडमतिरपि जन्मतुर्जायते प्राज्ञमौलिः ।

सकलवचनचेतोदेवता भारती सा

मम वचसि विघ्नां सन्त्रिधि मानसे च ॥ ७ ॥

मिथ्यासिद्धान्तदुर्धर्वान्तविधिं सनविचक्षणः ।

जयतीर्थाख्यतरणिर्भासतां नो हृदभवे ॥ ८ ॥

चित्रैः पदैश्च गम्भीरैर्वक्यैपर्निरखण्डतैः ।

गुरुभावं व्यञ्जयन्ति भाति श्रीजयतीर्थवाक् ॥ ६ ॥

कृजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षसम् ।

आरुहा कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १० ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।

शृणुष्वन्नरामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ११ ॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।

अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्पषम् ॥ १२ ॥

गोष्ठदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।

रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १३ ॥

श्रद्धजनानन्दं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।

कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्घाभयङ्घरम् ॥ १४ ॥

मनोज्ञवं मारुततुल्यवेगं

जितेन्द्रियं बुद्धिमत्तां वरिष्ठम्

वातात्मजं वानरयूथमुख्यं

श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ १५ ॥

उल्लङ्घन सिन्धोः सलिलं सलीलं

यः शोकवर्हिं जनकात्मजायाः ।

आदाय तेनैव ददाह लङ्घां

नमामि तं प्राञ्छलिराञ्जनेयम् ॥ १६ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं

काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।

पारिजाततरुमूलवासिनं  
भावयामि पवमानन्दनम् ॥ १७ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं  
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।  
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं  
मारुतिं नमत राज्ञसान्तकम् ॥ १८ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।  
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १९ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।  
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाभ्यहम् ॥ २० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं  
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।  
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं  
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ २१ ॥

वैदेहीसहितं सुरदुमतले हैमे महामण्डपे  
मध्ये पुष्टकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।  
अग्रे वाचर्याति प्रभञ्जनसुते तत्वं मुनिभ्यः परं  
व्याख्यानं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥२२॥

वन्दे वन्द्यं विधिभवमहेन्द्रादिवृन्दारकेन्द्रैः  
व्यक्तं व्याप्तं स्वगुणगणतो देशतः कालतश्च ।  
धूतावद्यं सुखचितिमयैर्मङ्गलैर्युक्तमङ्गैः  
सानाथयं नेऽविद्याधिकं ब्रह्म नारायणाख्यम् ॥२३॥

भूषारत्नं भुवनवलयस्याखिलाश्चर्यरत्नं  
लीलारत्नं जलधिदुहितुर्देवतामौलिरत्नम् ।

चिन्तारलं जगति भजतां सत्सरोजद्युरलं  
कौसल्याया लसतु मम हन्मण्डले पुश्रततम् ॥ २४ ॥

महाश्चाकरणाम्भेधिमन्थमानसमन्दरम् ।  
कवयन्तं रामकीर्त्या हनुमन्तमुपास्महे ॥ २५ ॥

मुख्यप्राणाय भीमाय नमो यस्य भुजान्तरम् ।  
नानावीरसुवर्णानां निकषाशमायितं बभौ ॥ २६ ॥

स्वान्तस्थानन्तश्चायाय पूर्णज्ञानमहार्णसे ।  
उत्तुङ्गवाकरङ्गाय मध्वदुभ्याब्धये नमः ॥ २७ ॥

वाल्मीकिर्गैः पुनीयान्नो महीधरपदाश्रया ।  
यददुध्यमुपजीवन्ति कवयस्तर्णका इष ॥ २८ ॥

सूक्तिरत्नाकरे रम्ये मूलरामायणार्णवे ।  
विहरन्तो महीयांसः प्रीयन्तां गुरवो मम ॥ २९ ॥

हयग्रीव हयग्रीव हयग्रीवेति यो वदेत् ।  
तस्य निःसरते वाणी जहुकन्याप्रवीहवत् ॥ ३० ॥

—\*—

### स्मार्तसम्प्रदायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।  
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।  
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ २ ॥

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना  
हस्तैनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।

भासा कुन्देनुशङ्कुस्फटिकमणिनिभा । भासमानासमाना  
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥३॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।  
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ४ ॥

वाल्मीकिमुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।  
श्रुग्वन्नामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ५ ॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।  
अतृप्सस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकलमषम् ॥ ६ ॥

गोप्यदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।  
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ७ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।  
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्घाभयङ्घरम् ॥ ८ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं  
यः शोकवर्द्धि जनकात्मजायाः ।  
आदाय तेनेव ददाह लङ्घां  
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ९ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं  
काञ्जनाद्रिकमनोयचिग्रहम् ।  
पारिजाततरुमूलवासिनं  
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ १० ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं  
तत्र तत्र कुतमस्तकाञ्जलिम् ।

बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं

मारुतिं नमत रात्रसान्तकम् ॥ ११ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं

जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वातात्मजं वानरयूथमुख्यं

श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ १२ ॥

यः कण्डिलिसम्पुटैरहरहः सम्यक्पिवत्यादरात्

वाल्मीकिर्वदनारविन्दगलितं रामायणाख्यं मधु ।

जन्मवशधिजराविपत्तिमरणैरत्यन्तसेषद्ववं

संसारं स विहाय गच्छति पुमान्विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥ १३ ॥

तदुपगतसमाप्तसन्धियोगं

सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।

रघुवरत्ररितं मुनिप्रणीतं

दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ १४ ॥

वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामसागरगामिनी ।

पुनातु भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥ १५ ॥

श्लोकसारसपाकीर्णं सर्गकल्पोलसङ्कल्पम् ।

काशडग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम् ॥ १६ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।

वेदः प्राचेतसाद्यसीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १७ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे

मध्येषुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।

अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्वं मुनिभ्यः परं

व्याख्यानं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे इयामलम् ॥ १८ ॥

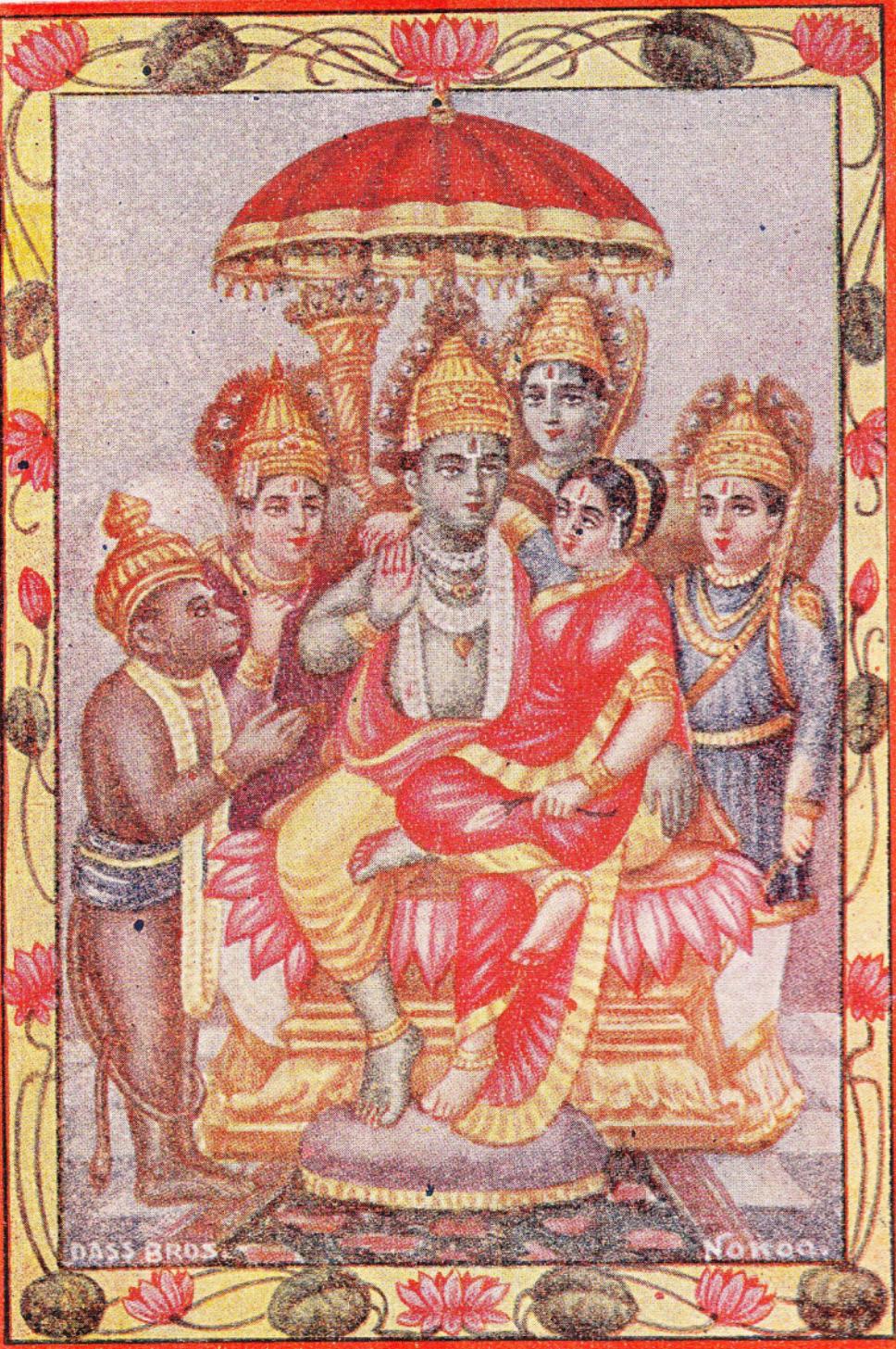
वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान्पश्चात्सुमित्रासुतः  
 शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्यादिक्षेषु च ।  
 सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्  
 मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥१॥

नमोऽस्तु रामाय सलहमणाय  
 देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।  
 नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो  
 नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुदूरणेभ्यः ॥ २० ॥









DASS BROS.

NOKOOR

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिप्रिकाय सीतया ।

—१—

# श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

—:०:—

## उत्तरकाण्डः

[ पूर्वार्द्धः ]

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते ।

आजग्मुर्मुनयः\* सर्वे राघवं 'प्रतिनन्दितुम् ॥ १ ॥

राक्षसों का नाश कर जब श्रीरामचन्द्र जो राजगढ़ी पर बैठे, तब समस्त मुनिगण ( श्रीरामचन्द्र जी की अवहेला कर ) लक्ष्मण जी के बल पराक्रम की प्रशंसा करने को आये ॥ १ ॥

कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्यो गालव एव च ।

कष्ठो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि येश्रिताः ॥ २ ॥

स्वस्त्यात्रेयथ भगवान्मुचिः प्रमुचिस्तथाः ।

अगस्त्योऽत्रिश भगवान्सुमुखो विमुखस्तथा ॥ ३ ॥

आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये स्थिता दक्षिणां दिशम् ।

नृषदगुः कवषो धौम्योऽ कौषेयश्च महानृषिः ॥ ४ ॥

तेऽप्याजग्मुः सशिष्यावै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् ।

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः ॥ ५ ॥

---

प्रतिनन्दितुम् — प्राप्तराज्यं राममनादत्य राघवं लक्ष्मणं प्रतिनन्दितुं  
सर्वे क्रष्यः आजग्मुः । ( गो० )

\* पाठान्तरे — “क्रष्यः” । † \* पाठान्तरे — “रौद्रेयश्च” ।

जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि समर्षयस्तथा ।

उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥ ६ ॥

( उन ऋषियों के नाम ये थे )—कौशिक, यवक्रीत, गार्घ्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कणव—ये सब ऋषि पूर्व दिशा में रहा करते थे । स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य की अध्यक्षता में आये थे और दक्षिण दिशा में रहा करते थे । नृषदगु, कवषी, धौम्य और सशिष्य कौषेय—ये पश्चिम दिशा के रहने वाले थे और पश्चिम ही से आये थे । वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि उत्तर दिशा के रहने वाले उत्तरदिशा से आये थे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

[ नोट—अत्रि का नाम दो बार आया है । ये अत्रि दो थे । पहिले तो दक्षिण दिशावासी और दूसरे उत्तरदिशि वासी । दूसरे अत्रि सप्तर्षियों में परगणित हैं । वशिष्ठ के सम्बन्ध में यह शहा अवश्य हो सकती है कि, जब वशिष्ठ जी सदा राजपुरोहित होने के कारण अयोध्या ही में रहा करते थे, तब उनका उत्तर दिशा से सप्तर्षियों के साथ आना यहाँ क्यों लिखा गया है ? इस शहा का समाधान करते हुए भूषणटीकाकार ने लिखा है—

“ यथाऽगस्त्यो ज्योतिर्मण्डलस्थोपि भुवि तपःसमार्जनाय शरीरान्तरे स्थित आगतस्था वसिष्ठोपि ज्योतिर्मण्डलस्थः सप्तर्षिभिः समागत इति बोध्यम् । ” अर्थात् जिस प्रकार ज्योतिर्मण्डलस्थ अगस्त्य भगवान् तपःफल अर्जन करने के लिये दूसरा शरीर धारण कर वृथिवी पर आ गये थे, वैष्णे ही वशिष्ठ जी भी अयोध्या में दूसरा शरीर धारण कर रहते थे । ]

सम्प्राप्य ते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।

विष्टिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥ ७ ॥

ये समस्त ऋषि श्रीरामचन्द्र जी के राजभवन की छ्योढ़ी पर पहुँचे । ये सब ही अग्नि के समान तेजस्वी थे । इन सब को द्वारपालों ने आदर पूर्वक बिठाया ॥ ७ ॥

**वेदवेदाङ्ग विदुषो नानाशास्त्रविशारदाः ।**

**द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा अगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥८॥**

वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता, अनेक शास्त्रों में निष्णात, मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्य जी द्वारपालों से बोले ॥ ८ ॥

**निवेद्यतां दाशरथेर्कृषीनस्मान्समागतान् ।**

**प्रतीहारस्तस्तूर्णमगस्त्य वचनादद्रुतम् ॥ ९ ॥**

महाराज श्रीरामचन्द्र जी से जा कर निवेदन करो कि, हम सब ऋषि आये हुए हैं ( और श्रीरामचन्द्र जी से पिलना चाहते हैं ), अगस्त्य जी के ये वचन सुन द्वारपाल तुरन्त अन्दर चल दिया ॥ ९ ॥

**समीरं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः ।**

**नयेङ्गितज्ञः सदृक्ष्टो दक्षो धैर्य समन्वितः ॥ १० ॥**

वह शीघ्र ही श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँचा । वह द्वारपाल नीतिवान, इशारों को समझने वाला, सदाचारी, चतुर और धैर्यवान् था ॥ १० ॥

**स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्र समद्युतिम् ।**

**अगस्त्यं कथयामास सम्प्राप्तमृषि सत्तमम् ॥ ११ ॥**

पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान प्रकाशमान श्रीरामचन्द्र जी के निकट जा कर वह बोला कि, महाराज ! ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ( बहुत से ऋषिश्रेष्ठों सहित ) आये हैं ॥ ११ ॥

श्रुत्वा प्रासान्मुनीस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान् ।

प्रत्युवाच ततो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम् ॥ १२ ॥

बालसूर्य के समान प्रभावान् उन समस्त ऋषिश्रेष्ठों का आना सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने द्वारपाल से कहा कि, तुम उन सब को आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाओ ॥ १२ ॥

\*द्वष्टा प्रासान्मुनीस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।

पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च्य गां निवेद्य च सादरम् ॥ १३ ॥

जब ( द्वारपाल के कहने से ) वे समस्त ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी के निकट पहुँचे, तब श्रीरामचन्द्र जी ( राजसिंहासन छोड़ ) हाथ जोड़ खड़े हो गये । फिर उन्होंने उन सब का अर्घ्य, पाद्यार्घ्य से पूजन किया और बड़े आदर के साथ प्रत्येक को गोदान दिया ॥ १३ ॥

रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेशह ।

तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ॥ १४ ॥

कुशांतर्धानदत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च ।

यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्टृष्टिपुञ्जवाः ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने बड़े भक्तिभाव से उन सब को प्रणाम किया, तदनन्तर उन सब को बैठने के लिये आसन दिये । ये आसन सोने के बने हुए थे और रंग बिरंगे होने के कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते थे । उनके ऊपर यथायोग्य अपने अपने बैठने के कुशासन और मृगचर्म विछा विछा कर, वे सब ऋषिश्रेष्ठ उन पर बैठ गये ॥ १४ ॥ १५ ॥

\* पाठान्तरे—“ तान्सम्प्रान्तमुनीन् दृष्ट्वा ” ।

रामेण कुशलं पृष्ठाः सशिष्याः सपुरोगमाः<sup>१</sup> ।  
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन् ।  
कुशलं ना महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १६ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने उनके शिष्यों सहित प्रधान मृषियों से कुशल मङ्गल पूँछा, तब वे वेदज्ञ मृषिगण कहने लगे । हे रघुनन्दन ! हे महाबाहो ! हम सब प्रकार से कुशलपूर्वक हैं ॥ १६ ॥

त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम् ।  
दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकरावणः ॥ १७ ॥

शत्रुघ्नों का संहार कर आपको सकुशल देख हम अत्यन्त प्रसन्न हैं । हे राजन ! यह सौभाग्य की बात है कि, जो आपने लोकों को रुलाने वाले रावण को मार डाला ॥ १७ ॥

नहिभारः सते राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ।  
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन्विजयेथा न संशयः ॥ १८ ॥

हे राम ! आपके लिये पुत्रपौत्रवान् रावण का नाश करना कोई बड़ी बात न थी । क्योंकि आप तो हाथ में धनुष ले कर तीनों लोकों को जीत सकते हैं । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणोः राक्षसेश्वरः ।  
दिष्ट्या विजयिनं त्वाऽत्र पश्यामः सह सीतया ॥ १९ ॥

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, आपने राज्ञसेवर रावण को मार डाला और यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि, हम सब लोग सीता सहित आपको विजयी देख रहे हैं ॥ १६ ॥

**लक्ष्मणेन च धर्मात्मन् भ्रात्रा त्वद्वितकारिणा ।**

**मातृभिर्भातुसहितं पश्यामोऽय वर्यं नृप ॥ २० ॥**

हे धर्मात्मन् ! आपके हितकारी भाई लक्ष्मण, माता, तथा अन्य वन्धुओं के साथ आपको आज हम सकुशल देख रहे हैं ॥ २० ॥

**'दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः ।**

**अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥ २१ ॥**

दैवात ही दुर्धर्ष प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर और अकम्पन आदि राज्ञसों को आपने मारा ॥ २१ ॥

**यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।**

**दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥ २२ ॥**

जिसके समान विशालकाय दूसरा व्यक्ति इस भूमण्डल पर कोई था ही नहीं, उस कुम्भकर्ण को दैवात ही आपने युद्ध में मार कर गिरा दिया ॥ २२ ॥

**त्रिशिराश्वातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।**

**दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्यो निशाचराः ॥ २३ ॥**

त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक जैसे महा बलवान राज्ञसों को ही राम ! दैवात ही आपने मार गिराया है ॥ २३ ॥

दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्व युद्धमुपागतः ।

देवता नाम वधयेन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २४ ॥

देवताओं से अवध्य, राक्षसराज रावण के साथ द्वन्द्वयुद्ध कर, आपने जो विजय प्राप्त की है, सो यह बड़े आनन्द की बात है ॥२४॥

संख्ये तस्य न किञ्चित्तु रावणस्य पराभवः ।

द्वन्द्वयुद्ध मनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः ॥ २५ ॥

किन्तु हे वीर ! युद्ध में रावण को जीत लेना उतना कठिन न था, जितना कि इन्द्रजीत को मारना कठिन था । सो उस इन्द्र-जीत को द्वन्द्वयुद्ध में मार डाला यह सौभाग्य की बात है ॥ २५ ॥

दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ।

मुक्तः सुररिपेवीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥ २६ ॥

अभिनन्दाम ते सर्वे संश्रुत्येन्द्रजितो वधम् ।

अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥२७॥

काल के समान दौड़ने वाले उस देवशत्रु से बच कर आप विजयी हुए हैं । हे राम ! उस इन्द्रजीत का वध सुन कर, हम सब लोग आनन्दित हुए हैं । ज्योंकि वह युद्ध में बड़ी माया रचा करता था और उसे कोई भी मार नहीं सकता था ॥ २६ ॥ २७ ॥

विस्मयस्त्वेष चास्माकं तंच्छ्रुत्वेन्द्रजितं हतम् ।

दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ।

दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ॥२८॥

उसका मारा जाना सुन कर, हम लोगों को आश्चर्य हो रहा है । हे काकुत्स्थ ! हे शत्रुकर्शन ! हम सब को इस प्रकार

अभयदान दे, आपकी बढ़ती देख, हमें जो आनन्द प्राप्त हुआ है  
उससे बढ़ कर, आनन्द और क्या होगा ॥ २८ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।

विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्छलिरब्रवीत् ॥ २९ ॥

उन आत्मदर्शी मुनियों के ये वचन सुन कर, श्रीरामचन्द्र जी  
को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे हाथ लोड़ कर बोले ॥ २६ ॥

भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ।

अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३० ॥

भगवन् ! महाबलवान् रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षसों  
को छोड़, आप लोग इन्द्रजीत की प्रशंसा कर रहे हैं ॥ ३० ॥

महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ।

मत्तोन्मत्तौ च दुर्धष्टौ देवान्तकनरान्तकौ ।

अतिक्रम्य महावीरान्कि प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३१ ॥

महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त, देवान्तक, एवं नरान्तक  
जैसे वीर्यवानों को छोड़, आप लोग इन्द्रजीत की प्रशंसा करों कर  
रहे हैं ॥ ३१ ॥

अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् ।

अतिक्रम्य महावीर्यान्कि प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३२ ॥

अतिकाय, त्रिशिरा, धूम्राक्ष आदि बड़े बड़े बलवान् राक्षसों को  
छोड़, आप लोग इन्द्रजीत की इतनी प्रशंसा करों कर रहे हैं ? ॥३२॥

कीदृशोवै प्रभावोऽस्य किं बलं कः पराक्रमः ।

केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥ ३३ ॥

हे ऋषियों ! इन्द्रजीत का प्रभाव, बल और पराक्रम कैसा था ? क्यों कर वह रावण से भी बढ़ कर था ? ॥ ३३ ॥

शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्वाज्ञापयामि वः ।

यदि गुह्यं न चेद्वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ ३४ ॥

यदि यह बात मेरे सुनने योग्य हो, और गोप्य न हो तो कहिये । क्योंकि यह सब सुनने को मेरी इच्छा है । यह मेरी आज्ञा नहीं है ( किन्तु प्रार्थना है ) ॥ ३४ ॥

शक्रोपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ।

कथं च बलवान्पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥ ३५ ॥

उसने इन्द्र को किस प्रकार जीता था और उसे किस प्रकार वर मिला था ? पुत्र क्यों ऐसा बलवान था और उसका पिता वैसा क्यों न था ? ॥ ३५ ॥

कथं पितुश्चाप्यधिको महाहवे

शक्रस्य जेता हि कथं स रक्षसः ।

वराश्च लब्धाः कथयस्व मेऽद्य

पाप्रच्छतश्चास्य मुनींद्र सर्वम् ॥ ३६ ॥

इति प्रथमः सर्गः ॥

इन्द्रजीत अपने पिता से संग्राम में क्यों कर अधिक पराक्रमी हुआ ? उसने इन्द्र को किस प्रकार जीता ? किस प्रकार उसने वर पाया ? हे मुनिश्चेष्टों ! मैं आप सब से पूँछता हूँ । आप मेरे इन सब प्रश्नों का उत्तर दें ॥ ३६ ॥

उत्तरकाण्ड का पहला सर्ग समाप्त हुआ ।

## द्वितीयः सर्गः

—:०:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।  
कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के इन प्रश्नों को सुन महातेजस्वी  
कुम्भयोनि अगस्त्य जी कहने लगे ॥ १ ॥

शृणु राम कथावृत्तं तस्य तेजोबलं महत् ।  
जघान शत्रून्येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः ॥ २ ॥

हे राम ! उस कारण को सुनिये, जिससे इन्द्रजीत का तेज  
और बल ( पिना से भी ) अधिक था । वह शत्रुओं को तो मारता  
था, पर शत्रु उसे नहीं मार पाते थे ॥ २ ॥

तावत्ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव ।  
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥

हे राघव ! मैं पहले आपको रावण के जन्म, और उसकी  
वरदान प्राप्ति का वृत्तान्त सुनाता हूँ ॥ ३ ॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ।  
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥ ४ ॥

पहले सत्ययुग में ब्रह्मा जो के पुलस्त्य नामक एक पुत्र उत्पन्न  
हुए । ब्रह्मर्षि पुलस्त्य जो तपःप्रभाव से साक्षात् ब्रह्मा जी ही के  
समान हो गये थे ॥ ४ ॥

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ।

प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥

उनके धर्म और शोल आदि गुणों का वर्णन करना असम्भव है । उनके इन गुणों को जानने के लिये उनका नाम ले देना और यह कह देना कि, वे प्रजापति के पुत्र थे, पर्याप्त ( काफ़ी ) है ॥ ५ ॥

प्रजापति सुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः ।

इष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः ॥ ६ ॥

वे महामति पुलस्त्य जी प्रजापति के पुत्र थे । अतः समस्त देवता उनको बहुत प्यार करते थे । अपने विमल गुणों के कारण वे सभी के मित्र बन गये थे ॥ ६ ॥

‘स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पाश्वे महागिरेः ।

तृणविन्दाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥

तप करने की इच्छा से वे मुनिश्रेष्ठ मेरुर्वत के समीप तृण-विन्दु के आश्रम में जा कर रहने लगे ॥ ७ ॥

तपस्तेषे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः ।

गत्वाऽश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ॥ ८ ॥

वहाँ वे धर्मात्मा पुलस्त्य जी इन्द्रियों को बश में कर, तपःस्वाध्याय में संलग्न हो गये । किन्तु वहाँ जा कर कल्याण उनके तपः स्वाध्याय में विघ्न डालने लगे ॥ ८ ॥

ऋषिपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः ।

क्रीडन्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥ ९ ॥

ऋषियों, नागों और राजर्षियों की कन्याएँ तथा अप्सराएँ मिल कर, वहाँ जा कीड़ा करने लगीं ॥ ६ ॥

सर्वतुषूपभोग्यत्वाद्रम्यत्वात्काननस्य च ।

नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥ १० ॥

एक तो वह वन ही बड़ा रमणीक था, दूसरे सब ऋतुओं में वह वन रहने योग्य था। इसीसे वे सब वहाँ नित्य जा कर, इकट्ठी होती थीं और खेलती कूदती थीं ॥ १० ॥

देशस्य रमणीयत्वात्पुलस्त्योयत्र स द्विजः ।

गायन्त्यो वादयन्त्योश्च लासयन्त्योस्तथैव च ॥ ११ ॥

जहाँ पुलस्त्य जी रहते थे, वहाँ का स्थान बड़ा रमणीक था, अतः वे कन्याएँ वहाँ जा कर गाती बजाती और नाचा करती थीं ॥ ११ ॥

मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुनिन्दिताः ।

अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः ॥ १२ ॥

इस प्रकार वे सुन्दरी कन्याएँ जब उन तपस्वी मुनि की तपस्या में विघ्न डालने लगीं, तब महातेजस्वी पुलस्त्य जी ने क्रुद्ध हो कर यह कहा ॥ १२ ॥

या मे दर्शन मागच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति ।

तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ॥ १३ ॥

जो लड़की मेरी आँखों के सामने पड़ जायगी, वही गर्भवती हो जायगी। ऋषि के मुख से यह निकलते ही ॥ १३ ॥

ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ।

तृणविन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥ १४ ॥

वे ब्रह्मशाप के भय से भीत हो गयीं और फिर उनके आश्रम में न गयीं। किन्तु राजर्षि तृणविन्दु की कन्या ने पुलस्त्य जी की इस उकि को नहीं सुन पाया ॥ १४ ॥

गत्वाऽश्रमपदं तत्र विचर्चार सुनिर्भया ।

न सा पश्यस्थिता तत्र काञ्चिदभ्यागतां सखीम् ॥ १५ ॥

अतः वह पुलस्त्य जी के आश्रम में जा, निर्भय हो घूमने फिरने लगी। किन्तु वहाँ उसे उसकी कोई सखी न दिखलायी पड़ी ॥ १५ ॥

तस्मिन्काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः ।

स्वाध्यायमकरोत्तत्र तपसा भावितः स्वयम् ॥ १६ ॥

इस समय प्रजापति के पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य जी तप के प्रभाव से, प्रदीप हो स्वाध्याय में लगे हुए थे। अर्थात् वेदपाठ कर रहे थे ॥ १६ ॥

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्टा वै तपसेनिधिम् ।

अभवत्पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥ १७ ॥

वह राजर्षिकन्या वेदध्वनि सुनने की इच्छा से, जैसे ही उन तपोधन का दर्शन करने गयी, वैसे ही उन्हें देखते ही उसका शरीर पीला पड़ गया और शरीर में गर्भ के लक्षण प्रकट हो गये ॥ १७ ॥

बभूव च समुद्रिया दृष्टा तद्वोष मात्मनः ।

इदं मे किंत्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाश्रमेऽस्थिता ॥१८॥

अपने शरीर में इस प्रकार का विकार देख, वह बहुत घबड़ायी और आप ही आप कह उठी—यह क्या हुआ ? तदनन्तर असली बात जान, वह पिता के आश्रम में लौट गयी ॥ १८ ॥

तां तु दृष्टा तथा भूतां तृणविन्दुरथाब्रवीत् ।

किं त्वमे तत्त्व सदृशं धारयस्वात्मनो वपुः ॥ १९ ॥

किन्तु तृणविन्दु उसे देख और असली बात जान उससे बोले—तूने कुशारण के विरुद्ध अपना ऐसा रूप क्यों कर धारण किया ? ॥ १९ ॥

स तु कृत्वाङ्गलि दीना कन्योवाच तपोधनम् ।

न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदशम् ॥ २० ॥

तब वह कन्या उदास है, अपने तपस्त्री पिता से बोलती है पिता ! मैं स्वयं अभी तक नहीं समझ सकती कि, किस कारण से मेरा ऐसा रूप हो गया है ॥ २० ॥

किन्तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः ।

पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥ २१ ॥

किन्तु ऐसा होने के पूर्व मैं अपनी सखियों को खोजती ब्रह्मचिन्तापरायण महर्षि पुलस्त्य जी के रमणीय आश्रम में अकेली चली गयी ॥ २१ ॥

न च पश्यास्यहं तत्र काञ्चिचदभ्यागतां सखीम् ।

रूपस्य तु विपर्यासं पृष्ठा त्रासादिहागता ॥ २२ ॥

वहाँ मुझे अपनी कोई भी सखी सहेली आती हुई न देख पड़ी, किन्तु जब मैंने अपना ऐसा बदला हुआ रूप देखा, तब डर कर यहाँ भाग आयी ॥ २२ ॥

तृणविन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा वोतित प्रभः ।

ध्यानं विवेश तच्चापि ह्यपश्यदृषिकर्मजम् ॥ २३ ॥

तब तप के प्रभाव से युक्त राजर्षि तृणविन्दु ने ध्यान कर दिव्य द्वाष्ट से सारा हाल जान लिया ॥ २३ ॥

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ।

गृहीत्वा तनयां गृह्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

ब्रह्मचिन्तापरायणं महर्षि पुलस्त्य जी के शाप का बृत्तान्त जान, तृणविन्दु उस कन्या को साथ ले, मुनि के पास गये और उनसे यह कहा ॥ २४ ॥

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।

भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥ २५ ॥

हे भगवन् ! अपने गुणों से भूषित ( अर्थात् गुणवती ) और अपने आप आई हुई मेरी इस कन्या को भिक्षा रूप से आप अङ्गीकार करें ॥ २५ ॥

तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते ।

शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥

आप जब तप करते करते थक जाया करेंगे, तब निश्चय ही यह आपकी सदा सेवा ठहल किया करेगी ॥ २६ ॥

तं ब्रुवाणं तु तद्वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा ।

जिघृक्षुरब्रवीत्कन्यां वादमित्येव स द्विजः ॥ २७ ॥

उस अप्रमेय ब्राह्मणश्रेष्ठ पुलस्त्य जी धार्मिक राजर्षि तृणविन्दु के ऐसे वचन सुन, उस कन्या को अङ्गीकार करते हुए बोले “बहुत अच्छा ” ॥ २७ ॥

दत्वा स तु यथान्यायं स्वमाश्रमपदं गतः ।

साऽपि तत्रावस्त्कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ॥ २८ ॥

अपनी कन्या को पुलस्त्य जी को मौंग राजा तृणविन्दु अपने आश्रम में लौट आये । वह राजतनया मी अपने गुणों से पति को सन्तुष्ट कर, वहाँ रहने लगी ॥ २८ ॥

तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः ।

प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९ ॥

महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य उस राजतनया के शीलस्वभाव से सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न हो कर उससे बोले ॥ २९ ॥

परितुष्टोस्मि सुश्रोणि गुणानां सम्पदा भृशम् ।

तस्मादेवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ।

उभयोर्वशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ॥ ३० ॥

हे सुश्रोणि ! मैं तेरी गुणसम्पदा से ( गुणावली ) से तेरे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । अतः हे देवि ! आज मैं तुझे अपने तुल्य पुत्र देता हूँ । वह दोनों वंशों का बढ़ाने वाला होगा और पौलस्त्य के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ३० ॥

यस्मात् विश्रुतो वेदस्त्वयैषोऽध्ययतो मम ।

तस्मात्स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

तुने मेरी वेदध्वनि सुन कर गर्भधारण किया है । अतः  
निस्सन्देह उसका नाम विश्रवा होगा ॥ ३१ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।

अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ।

त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोर्धर्मसमन्वितम् ॥ ३२ ॥

वह देवी इस प्रकार वरप्राप्त कर, मन में अत्यन्त हर्षित हुई ।  
थोड़े ही दिनों बाद उसके त्रिलोकविख्यात यशस्वी और धर्मवान्  
विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥

श्रुतिमान्समदर्शीं च व्रताचाररतस्तथा ।

पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद्विश्रवा मुनिः ॥ ३३ ॥

इति द्वितीयः सर्गः ॥

वेदज्ञ और समदर्शी विश्रवा मुनि व्रताचार में रत हो, अपने  
पिता की तरह तप करने लगे ॥ ३३ ॥

उत्तरकाण्ड का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

तृतीयः सर्गः

—०—

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।

अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥ १ ॥

थोड़े ही दिनों में पुलस्थ के पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा अपने पिता के समान तप करने लगे ॥ १ ॥

सत्यवाच्शीलवान्दान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।  
सर्वधोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

विश्रवा मुनि सत्यवादी, शीलवान्, दान्त, स्वाध्यायनिरत, पवित्र, सब भेगों से दूर रहने वाले और धर्माचार में तत्पर देख पड़ते थे ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तस्य तु तद्वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।  
ददौ विश्रवसे भार्या स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ ३ ॥

महामुनि भरद्वाज जी ने विश्रवा के ऐसे चरित्रवान होने के कारण, अपनी देववर्णिनी नाम की कन्या उनको विवाह दी ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।  
प्रजान्वीक्षिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥४॥

धर्मनुसार भरद्वाज जी की कन्या के साथ विवाह कर, सन्तान की इच्छा रखते हुए, विश्रवा जी उसकी भलाई चाहने लगे ॥ ४ ॥

मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुञ्जवः ।  
स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमादभुतम् ॥ ५ ॥

जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्म गुणैर्दृष्टम् ।  
तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ॥ ६ ॥

परम हर्षित हो मुनिश्रेष्ठ विश्रवा जी ने अपनी भार्या के गर्भ से बलवान और परम अद्भुत एक पुत्र ऐसा उत्पन्न किया, जिसमें

ब्राह्मणोचित् समस्त गुण विद्यमान थे । उसके उत्पन्न होने से उसके बावा पुलस्थ जी को बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ५ ॥ ६ ॥

दृष्टा श्रेयस्कर्णं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।

नाम चास्याकरोत्पीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥

वे अपने नाती की कल्याणकारिणी बुद्धि देख कर बोले—  
“यह बालक धनाध्यक्ष होगा ।” किर उन्होंने अत्यन्त हर्षित हो  
देवर्षियों सहित उसका नामकरण किया ॥ ७ ॥

यस्माद्विश्रवसोपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव ।

तस्माद्वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥ ८ ॥

वे बोले—यह बालक विश्रवा से उत्पन्न हुआ है और है भी  
उन्हींके सदृश । अतः यह वैश्रवण के नाम से विख्यात होगा ॥ ८ ॥

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।

अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथाऽनलः ॥ ९ ॥

उस तपोवन में रहता हुआ वह वैश्रवण आहुति छोड़े हुए अग्नि  
की तरह बढ़ने लगा । वह बड़ा तेजस्वी हुआ ॥ ९ ॥

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्ज्ञे महात्मनः ।

चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥ १० ॥

आश्रम में रहने के समय उस महात्मा के मन में यह बात  
उपजी कि, धर्म ही परमगति है, अतः मैं भी धर्माचरण अर्थात्  
तप करूँगा ॥ १० ॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।

यन्त्रितो नियमैख्यैश्चकार सुमहत्पः ॥ ११ ॥

यह विचार वह बड़े कठोर नियमों के साथ हज़ार वर्ष तक बड़ी कठोर तपस्या करते रहे ॥ ११ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत् ।

जलाशी मास्ताहारो निराहारस्तथैव च ।

एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येक वर्षवत् ॥ १२ ॥

एक हज़ार वर्ष बीत जाने पर वे कभी जल पी कर, कभी पवन पान कर और कभी कभी निराहार ही रह जाते थे । इस प्रकार उन्होंने एक हज़ार वर्ष, एक वर्ष की तरह बिता दिये ॥ १२ ॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ।

गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

तब तो ब्रह्मा जी उनके तप से प्रसन्न हुए और वे इन्द्र सहित समस्त देवताओं को अपने साथ ले उनके आश्रम में पहुँचे और उन ऋषिश्रेष्ठ से यह वचन बोले ॥ १३ ॥

परितुष्टेऽस्मि ते वत्स कर्मणाऽनेन सुब्रत ।

वरं वृणीष्व भद्रं ते वराहस्त्वं महामते ॥ १४ ॥

हे सुब्रत ! हे वत्स ! मैं तुम्हारी इस तपस्या से तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ । अतः तुम वर पाने योग्य होने के कारण, अब तुम वरदान मंगिए ॥ १४ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ।

भगवैल्लोकपालत्वमिच्छेयं वित्तरक्षणम् ॥ १५ ॥

अपने सामने ब्रह्मा जी को उपस्थित देख, वैश्रवण जी ने उनसे कहा—हे भगवन् ! मेरी इच्छा है कि, मैं लोकपाल होऊँ और समस्त धन मेरे पास रहे ॥ १५ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ।

ब्रह्मा सुरगणैः सार्थं बाढमित्येव हृष्टवत् ॥ १६ ॥

ब्रह्मा जो ने समस्त देवताओं के साथ प्रसन्न मन हो वै ब्रवण जो के बचनों को सहर्ष स्वीकार कर कहा—रहुत अच्छा ॥ १६ ॥

अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्त्रद्धुमुद्यतः ।

यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत्तत्र चेपिसतम् ॥ १७ ॥

( श्रौर कहने लगे )—हे वर्त्त ! मैं तो चैथा लोकपाल रखने ही वाला था । हे धर्मज्ञ ! यम, इन्द्र श्रौर वरुण के समान (समकक्ष) लोकपाल होने की तुम्हारी जो कामना है ॥ १७ ॥

तदगच्छ त्वं हि धर्मज्ञ निधीशत्वमपाप्नुहि ।

शक्रांबुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ॥ १८ ॥

सो तुम निधियों के स्वामी यदि को प्राप्त हो कर इन्द्रादि लोक-पालों की तरह चौथे लोकपाल होंगे ॥ १८ ॥

एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसन्निभम् ।

प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ॥ १९ ॥

यह जो सूर्य के समान चमचमाता पुष्पक विमान है—इसे तुम अपनी सवारी के लिये लो, जिससे तुम देवताओं के समान हो सको ॥ १९ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्वं एव यथागतम् ।

कृतकृत्या वर्यं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ॥ २० ॥

अच्छा तुम्हारा कल्याण हो अब हम लोग अपने स्थानों को जाते हैं । क्योंकि है तात ! तुमको वरदान दे कर, हम लोग कृत-

कुत्य हो गये अर्थात् जिस काम के लिये आये थे वह कर चुके ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ।

गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभः स्थलम् ॥ २१ ॥

यह कह कर देवताओं सहित ब्रह्मा जी वहाँ से चले गये ।  
ब्रह्मादि देवता जब आकाशमण्डल में चले गये ॥ २१ ॥

धनेशः पितरं प्राह प्राञ्छलिः प्रयतात्मवान् ।

भगवँल्लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ॥ २२ ॥

तब धनेश वैश्रवण जी सावधान हो और हाथ जोड़ कर अपने पिता से बोले, हे भगवन् ! मैंने पितामह ब्रह्मा जी से अभीष्ट वरदान पा लिया ॥ २२ ॥

निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ।

तं पश्य भगवन्कश्चिन्निवासं साधु मे प्रभो ।

न च पीडा भवेद्यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥ २३ ॥

किन्तु ब्रह्मा जी ने मेरे रहने के लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया ।  
अतः हे स्वामिन् ! सो आप मेरे रहने के लिये कोई ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ मेरे रहने से किसी को कष्ट या पीड़ा न हो ॥ २३ ॥

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुञ्ज्वः ।

वचनं प्राह धर्मज्ञं श्रूयतामिति सत्तमः ॥ २४ ॥

जब पुत्र ने इस प्रकार कहा, तब मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने अपने पुत्र से कहा—हे धर्मज्ञ ! हे श्रेष्ठ ! सुनो मैं तुम्हारे रहने के लिये स्थान बतलाता हूँ ॥ २४ ॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटा नाम पर्वतः ।  
तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥ २५ ॥

दक्षिण समुद्र के तट पर अथवा समुद्र के दक्षिण तट पर त्रिकूट नामक एक पर्वत है। उस त्रिकूटपर्वत के शिखर पर इन्द्र की अमरावती पुरी की तरह एक विशाल नगरी है ॥ २५ ॥

लङ्घा नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ।  
राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥ २६ ॥

उस रमणीक नगरी का नाम लङ्घा है, और उसकी रचना विश्वकर्मा ने की है। वह नगरी विश्वकर्मा ने राक्षसों के रहने के लिये इन्द्र की अमरावती पुरी की तरह बनाई है ॥ २६ ॥

तत्रत्वं वस भद्रं ते लङ्घायां नात्र संशयः ।  
हेमप्राकारपरिखा यंत्रशस्त्रसमावृता ॥ २७ ॥

उसी लङ्घापुरी में तुम जाकर रहो। तुम्हारा मङ्गल होगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं। उस नगरी के परकोटे की दीवाल सौने की है, उसके चारों ओर खाई खुदी हुई है और वह यंत्रों और शखों से भरी है ॥ २७ ॥

रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैद्यर्यतोरणा ।  
राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयादितैः ॥ २८ ॥

वह लङ्घापुरी बड़ी रमणीक है। उसके फाटक सौने के हैं और उनमें पञ्चे जड़े हुए हैं। पहले उसमें राक्षस रहा करते थे, किन्तु विष्णु के द्वर से वे वहाँ से भाग गये हैं ॥ २८ ॥

शून्या रक्षोगणैः सर्वै रसातलतलं गतैः ।

शून्या सम्प्रति लङ्घा सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ॥२९॥

और पृथिवी के नीचे रसातल में जा बसे हैं । अतः वह नगरी अब सूनी पड़ी है और उसका कोई मालिक नहीं है ॥ २६ ॥

स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम् ।

निर्देष्पस्तत्र ते वासो न वाधा तत्र कस्यचित् ॥ ३० ॥

हे पुत्र ! तुम वहाँ जाकर सुख पूर्वक रहो । वहाँ तुम्हारे रहने में कुछ भी बुराई न होगी और न किसी को किसी प्रकार का कष्ट ही होगा ॥ ३० ॥

एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः ।

निवासयामास तदा लङ्घां पर्वतमूर्धनि ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा वैश्रवण ने जब अपने पिता विश्रवा के इस प्रकार के धर्मिष्ठ वचन सुने, तब वे त्रिकूटपर्वत पर बनी हुई लङ्घापुरी में जा बसे ॥ ३१ ॥

नैऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सह ।

अचिरेणैव कालेन सम्पूर्णा तस्य शासनात् ॥ ३२ ॥

सदा हर्षित रहने वाले हजारों राज्ञस वहाँ जा बसे । वैश्रवण के शासन में थोड़े ही दिनों में वह लङ्घापुरी भरी पुरी हो गयो ॥ ३२ ॥

स तु तत्रावसत्प्रीतो धर्मात्मा नैऋतर्षभः ।

समुद्र परिखायां तु लङ्घायां विश्रवात्मजः ॥ ३३ ॥

विश्रवा मुनि के धर्मात्मा राज्ञसराज पुत्र वैश्रवण, समुद्र की परिखा द्वारा चारों ओर से घिरी हुई लङ्कापुरी में प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे ॥ ३३ ॥

काले कालेतु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ।

अभ्यागच्छद्विनीतात्मा पितरं मातरं च हि ॥ ३४ ॥

धर्मात्मा धनेश्वर वैश्रवण समय समय पर पुष्पक विमान पर सवार हो, विनीत भाव से माता पिता के निकट जाया करते थे ॥ ३४ ॥

स देवगन्धर्वगणेरभिष्टुत-

स्तथाऽप्सरोनृत्यविभूषितालयः ।

गभस्तिभिःसूर्य इवावभासन्

पितुःसमीपं प्रययौसवित्तपः ॥ ३५ ॥

इति तृतीयः सर्गः

देवों और गन्धर्वों को स्तुति सुनते हुए, अप्सराओं के नृत्य से अपने भवन को भूषित करते हुए और सूर्य को किरणों की तरह चमचमाते वे धनाध्यत्त वैश्रवण अपने पिता विश्रवा मुनि के निकट आया जाया करते थे ॥ ३५ ॥

उत्तरकाण्ड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

चतुर्थः सर्गः

—०—

श्रुत्वाऽगस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः ।

कथमासीतु लङ्कायां सम्भवो रक्षसां पुरा ॥ १ ॥

अगस्त्य जी के कहे हुए इस वृत्तान्त को सुन श्रीरामचन्द्र जी विस्मित हुए कि, लङ्घा में कुबेर जी के बसने के पूर्व भी राक्षसों का वहाँ रहना क्योंकर सम्भव हो सकता है ॥ १ ॥

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् ।

तपगस्त्यं मुहुर्द्धा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने बार बार सिर को हिलाकर, और तीन अग्नियों के समान देह धारण किये अगस्त्य जी की ओर निहार कर विस्मित हो उनसे कहा ॥ २ ॥

भगवन् पूर्वमप्येषा लङ्घाऽसीत्पिशिताशिनाम् ।

श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! पहले भी इस लङ्घा पुरी में राक्षस लेग ही वास करते थे, आपका यह वचन सुन कर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ है ॥ ३ ॥

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम् ।

इदानीमन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तिस्त्वया ॥ ४ ॥

क्योंकि हमने तो यही सुन रखा है कि, पुलस्त्य ही के धंश से राक्षसों की उत्पत्ति हुई है। परन्तु इस समय आपके कथन से जान पड़ा कि, राक्षसों की उत्पत्ति ( पुलस्त्य के अतिरिक्त ) अन्य किसी से भी हुई है ॥ ४ ॥

रावणात्कुम्भकर्णच्च प्रहस्ताद्विकटादपि ।

रावणस्य च पुत्रेभ्यः किन्ते बलवत्तराः ॥ ५ ॥

क्या वे ( पहिले के राक्षस ) लोग रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट और रावण के पुत्र से भी बढ़ कर बलवान् थे ॥ ५ ॥

क एषां पूर्वको ब्रह्मन्निनामा च वलोत्कटः ।

अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन् ! उन सब का मूल पूर्वपुरुष कौन महाबलवान् था ? उसका नाम क्या था ? उन्होंने विष्णु का क्या विगाढ़ा था जो उन्होंने उन राक्षसों को वहाँ से मार भगाया ॥ ६ ॥

एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ।

कौतूहलमिदं महां नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥

हे अनघ ! यह समस्त वृत्तान्त आप मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये और मेरे इस कुतूहल को उसी तरह दूर कीजिये जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर करता है ॥ ७ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् ।

ईषद्विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के संस्कारित ( व्याकरण से शुद्ध ) एवं अलङ्कार युक्त वचन सुन कर, अगस्त्य जी ने कुक्र कुक्र विस्मित हो श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥ ८ ॥

प्रजापतिः पुरा सृष्टा ह्यपः सलिलसम्भवः ।

तासां गोपायने सत्त्वानसृजत्पद्मसम्भवः ॥ ९ ॥

हे राम ! ( भगवान् विष्णु के नामि ) कमल से उत्पन्न हो, ब्रह्मा जी ने सब से प्रथम जल की सृष्टि की, और जल की रक्षा के लिये उन्होंने अनेक ( जल ) जन्तुओं की बनाया ॥ ९ ॥

ते सत्त्वाः ॑सत्त्वकर्ता॒रं विनीतवदुपस्थिताः ।  
किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासा भयार्दिताः ॥१०॥

वे सब जीव विनीतभाव से सृष्टिकर्ता के पास जा खड़े हुए और बोले कि, हम क्या करें? उस समय वे मारे भूख और प्यास से विकल हो रहे थे ॥ १० ॥

\*प्रजापतिस्तु तान्सर्वान्प्रत्याह प्रहसन्निव ।

आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति ॑मानवाः ॥ ११ ॥

प्रजापति ने मुसङ्घा कर उन सब से कहा कि, है प्राणियो! तुम यज्ञपूर्वक मनुष्यों की रक्षा करो ॥ ११ ॥

रक्षामेति च तत्रान्ये यक्षाम इति चापरे ।

भुक्षिताभुक्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२ ॥

उनमें से कुछ भूखे प्राणियों ने कहा, “रक्षामः” (अर्थात् हम रक्षा करते हैं) और उनमें से कुछ जुधा रहित प्राणियों ने कहा, “यक्षामः” (अर्थात् हम उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं) ॥ १२ ॥

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।

यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तुवः ॥ १३ ॥

उनका यह कथन सुन ब्रह्मा जी बोले कि, जिन प्राणियों ने कहा था कि, “रक्षामः” (हम रक्षा करते हैं) वे राक्षस हों और जिन्होंने कहा, “यक्षामः” वे यक्ष हों ॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ ।

मधुकैटभ सङ्काशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ १४ ॥

१ सत्त्वकर्ता॒रं—सृष्टिकर्ता॒रं । (गो०) \* पाठान्तरे—“प्रजापतिस्तु तान्याह सत्त्वानि प्रहसन्निव ॥ । १ पाठान्तरे—“सानदः ॥ ।

उन राक्षसों में हेति और प्रहेति नामक दो भाई उत्पन्न हुए। वे दोनों भाई मधुकैटम की तरह शत्रुनाशकारी थे। वे दोनों ही राक्षसों के स्वामी हुए ॥ १४ ॥

**प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपेवन गतस्तदा ।**

**हेतिर्दारक्रियार्थे तु परं यत्तमथाकरोत् ॥ १५ ॥**

प्रहेति धार्मिक स्वभाव का होने के कारण तप करने की वन में चला गया। किन्तु हेति अपना विवाह करने के लिये बड़ा प्रयत्न करने लगा ॥ १५ ॥

**स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम \*महाभयाम् ।**

**उदावहृदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥ १६ ॥**

उच्चहृदय और महाबुद्धिमान् हेति ने स्वयं ही काल के निश्च जा और प्रार्थना कर, काल की बहिन के साथ, जिसका नाम भया था और जो महाडरावनी थी, विवाह कर लिया ॥ १६ ॥

**स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुञ्जवः ।**

**पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ॥ १७ ॥**

तदनन्तर पुत्रवानों में प्रथम गिने जाने योग्य राक्षसश्रेष्ठ हेति ने उस छोटी के गर्भ से विद्युत्केश नामक विख्यात पुत्र पैदा किया ॥ १७ ॥

**विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीपार्कसमप्रभः ।**

**व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य †इवांबुजम् ॥ १८ ॥**

महातेजस्वी हेति का पुत्र विद्युत्केश सूर्य की तरह अत्यन्त तेजस्वी हो जल में उगे हुए, कमल की तरह उत्तरोत्तर बढ़ने लगा ॥ १८ ॥

\* पाठान्तरे—“भयावहाम्”। † पाठान्तरे—“इवाम्बुदः”।

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।  
ततोदारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥ १९ ॥

जब वह राक्षस विद्युत्केश जवान हुआ, तब उसके पिता हेति ने उसका विवाह कर देना चाहा ॥ १९ ॥

सन्ध्यादुहितरं सोथसन्ध्या तुल्यां प्रभावतः ।  
वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुञ्जवः ॥ २० ॥

अतः उस राक्षसश्रेष्ठ हेति ने सन्ध्या की तरह प्रतापिनी सन्ध्या की पुत्री को अपने पुत्र विद्युत्केश के लिये सन्ध्या से माँगा ॥ २० ॥

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति सन्ध्या ।  
चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥ २१ ॥

हे राघव ! कन्या तो किसी न किसी को देनी ही है—यह विचार कर सन्ध्या ने विद्युत्केश को अपनी बेटी दे डाली ॥ २१ ॥

सन्ध्यायास्तनयां लब्धवा विद्युत्केशो निशाचरः ।  
रमते स तया सार्धं पैलोम्या पघवानिव ॥ २२ ॥

सन्ध्या की बेटी को पाकर राक्षस विद्युत्केश उसके साथ उसी प्रकार विहार करने लगा, जिस प्रकार इन्द्र अपनी इन्द्राणी के साथ विहार करते हैं ॥ २२ ॥

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्ग्या ।  
विद्युत्केशाद् गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥ २३ ॥

हे राम ! विद्युत्केश की पत्नी सालकटंकटा ने थोड़े दिनों बाद अपने पति से वैसे ही गर्भधारण किया जैसे, समुद्र जल से मेघ, घटाएँ गर्भधारण करती हैं ॥ २३ ॥

ततः सा राक्षसी गर्भ घनगर्भसमप्रभम् ।

प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाप्निजम् ।

तमुत्सृज्य तु सा गर्भ विद्युकेशरथार्थिनी ॥ २४ ॥

उस राक्षसी ने मेघगर्भ के समान एक बालक मन्दराचल पर जाकर वैसे ही जना, जैसे गङ्गा ने अग्नि से धारण किये हुए गर्भ से बालक जना था ॥ २४ ॥

रेमे तु सार्धं पतिना विसृज्य सुतमात्मजम् ।

उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ॥ २५ ॥

उस सद्य-प्रसूत-शिशु को उसी पर्वत पर छोड़ कर, वह सन्ध्या की बेटी सालकटंकटा सम्भोग की इच्छा से पुनः पति के पास जा विहार करने लगी । उधर उसका वह त्यागा हुआ पुत्र, मेघ की तरह शब्द करने लगा ॥ २५ ॥

तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदक्ष समद्युतिः ।

निधायास्ये स्वयं मुष्टि रुरोद शनकैस्तदा ॥ २६ ॥

शरद्कालीन सूर्य को तरह दीप्तिमान त्यागा हुआ वह शिशु मुँह में मुट्ठी दिये हुए पड़ा पड़ा धीरे धीरे रोने लगा ॥ २६ ॥

ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ।

वायुमार्गेण गच्छन्वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥ २७ ॥

उस समय बैल पर सवार शिव और पार्वती आकाशमार्ग से उधर होकर कहीं जा रहे थे । उन्होंने जाते जाते उस बालक के रोने का शब्द सुना ॥ २७ ॥

अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ।

कारुण्यभावात्पर्वित्या भवस्त्रिपूरसूदनः ॥ २८ ॥

फिर उस रोते हुए राक्षसशिशु को दोनों ने देखा भी और दयावश पार्वती के कहने से त्रिपुरासुर को मारने वाले महादेव जी ने ॥ २८ ॥

तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयः समम् ।

अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोव्ययः ॥ २९ ॥

उस राक्षसपुत्र की उम्र, उसकी माता के बराबर कर दी और उसे अमर भी कर दिया । महादेव जी के लिये ऐसा करना कोई बड़ी बात न थी । क्योंकि वे तो अविनाशी और अपरिवर्तनशील हैं ॥ २९ ॥

पुरमाकाशं प्रादात्पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।

उमयाऽपि वरोदत्तो राक्षसानां नृपात्मज ॥ ३० ॥

महादेव जी ने पार्वती जी को प्रसन्न करने के लिये उसे आकाशगामीपुर एक पुर के समान एक विमान भी दे दिया । हे नृपात्मज ! पार्वती जी ने भी राक्षसियों को यह वर दिया कि ॥ ३० ॥

सद्योपलब्धिर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।

सद्य एव वयः प्राप्तिर्मातुरेव वयःसमम् ॥ ३१ ॥

राक्षसियों गर्भधारण करते ही बालक जने और वह बालक तुरन्त माता के समान उम्र वाला हो जाय ॥ ३१ ॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः

श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पाश्वतः ।

चचार सर्वत्र महान्महामतिः

खगं पुरं प्राप्य पुरन्दरो यथा ॥ ३२ ॥

इति चतुर्थः सर्गः ॥

हे राम ! सुकेश नामक विद्युत्केश का पुत्र महादेव जी सेर वरदान पा कर, बड़ा धमंडी हो गया । वह उस आकाशचारी नग ( विमान ) को और लहमी को पा, तथा उस नगर में बैठ कर, चारों ओर घूमने लगा ॥ ३२ ॥

उत्तरकाण्ड का चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

—:\*:—

### पञ्चमः सर्गः

—:०:—

सुकेशं धार्मिकं दृष्टा वरलब्धं च राक्षसम् ।

ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसु समप्रभः ॥ १ ॥

सुकेश को वरदान पाया हुआ तथा धार्मिक देख, विश्वावसु के समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्व ने ॥ १ ॥

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ।

त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयोवनशालिनी ॥ २ ॥

अपनी देववती नाम की कथा, जो दूसरी लहमी के समान थी, तथा जो युवती और सुन्दरी होने के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी, ॥ २ ॥

तां सुकेशाय धर्मात्मा ददौ रक्षःश्रियं यथा ।  
वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ ३ ॥

धर्मात्मा राक्षस सुकेश को राक्षसलक्ष्मी की तरह दे दी ।  
शिव जी से वरदान पाने के कारण सुकेश ऐश्वर्यवान् हो गया  
था । ऐसे प्यारे पति को पा कर ॥ ३ ॥

आसीदेववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ।  
स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ॥ ४ ॥

देववती वैसे ही प्रसन्न हुई जैसे कोई निर्धन पुरुष धन पा कर  
प्रसन्न होता है । वह राक्षस सुकेश भी उसके साथ वैसे ही सुशो-  
भित हुआ ॥ ४ ॥

अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः ।  
देववत्यां सुकेशस्तु जनयामास राघव ।  
त्रीन्पुत्राञ्जनयामास त्रेतामिसमविग्रहान् ॥ ५ ॥

जैसे अंजन नामक दिग्गज से उत्पन्न हुआ महागज हथिनी के  
साथ सुशोभित हो । हे राघव ! ( तदनन्तर समय वाके सुकेश ) ने  
देववती के गर्भ से तीन अश्चियों के समान शरीरधारी तीन  
पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५ ॥

माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ।  
त्रीस्त्रिनेत्रसमान्पुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

बलवानों में श्रेष्ठ उन तीनों के नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और  
माली । राक्षसराज सुकेश ने तीन नेत्रों के समान ये तीन पुत्र  
उत्पन्न किये थे ॥ ६ ॥

त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्रयः ।

\*त्रयो मंत्रा इवात्युग्रास्त्रयो धोरा इवामयाः ॥ ७ ॥

सुकेश के ये तीनों पुत्र व्यग्रतारहित तीनों लोकों की तरह, गार्हपत्यादि तीन अग्नियों की तरह, अथवा तीनों वेदों की तरह अथवा बात पित्त कफ की तरह उग्र और भयद्वार थे ॥ ७ ॥

त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः ।

विवृद्धिमगमस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ॥ ८ ॥

सुकेश के तीनों अत्यन्त तेजवान् पुत्र इस प्रकार बढ़ने लगे, जिस प्रकार उपेन्ना करने से रोग बढ़ता है ॥ ८ ॥

वरप्राप्ति पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यंतपोवलात् ।

तपस्तप्तुं गता मेरु भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ ९ ॥

कुछ दिनों पीछे पिता की वरप्राप्ति और डसके द्वारा प्राप्त पिता के ऐश्वर्य को देख, उन तीनों ने मेरु-पर्वत पर जा, तप करने का निश्चय किया ॥ ९ ॥

प्रगृह नियमान्धोरान् राक्षसा नृपसत्तम ।

विचेष्टस्ते तपोधोरं सर्वभूतभयावहम् ॥ १० ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! वे तीनों राक्षस उस समय कठोर नियमों का पालन करना निश्चय कर, समस्त प्राणियों को भय उपजाने वाला धोर तप करने लगे ॥ १० ॥

सत्यार्ज वशमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुर्लभैः ।

सन्तापयन्तस्त्रीललोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ ११ ॥

१ त्रयोमंत्रा—त्रयोवेदा । (गो०) २ त्रयश्चामयाः—वातपित्तश्लेष्मरूपाः ।

(गो०) ३ त्रेताग्निसम वर्चस इति तैजोतिशय उकः । (गो०)

सत्यभाषण, प्राणिमात्र में सरल अवहार एवं समदृष्टि, इन्द्रिय-  
दमन आदि का नियम कर, उन तीनों ने ऐसा शोर तप किया, जो  
पृथ्वीतल पर दुर्लभ था। ऐसे शोर तप से वे देवताओं और  
मनुष्यों सहित तीनों लोकों को सन्तप्त करने लगे ॥ ११ ॥

ततो विभुश्चतुर्वक्रो विमान वरमास्थितः ।

सुकेशपुत्रानामन्त्य वरदोस्मीत्यभाषत ॥ १२ ॥

तब तो विभु, चतुर्मुख एवं भूतभावन ब्रह्मा जी, विमान  
पर सवार हो कर, वही आये और सुकेश के पुत्रों का सम्बोधन कर  
बोले, हम वरदान देने का आये हैं ( तुम वर माँगो ) ॥ १२ ॥

ब्रह्माण वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ।

अचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इवदुमाः ॥ १३ ॥

इन्द्रादि देवताओं सहित ब्रह्मा जी को वरदान देने को उद्यत  
देख, वे सब राज्ञस, बृक्षों की तरह थर थर काँपते हुए, हाथ जोड़  
कर बोले ॥ १३ ॥

तपसाऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ।

अजेयाः शत्रु हन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।

प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ १४ ॥

हे देव ! तप द्वारा आराधन किये जाने पर, यदि आप हमें  
वर देने को पधारे हैं, तो हम यह माँगते हैं कि, हममें आपस में  
श्रीति बनी रहै, कोई हम लोगों को जीत न पावे, अपने शत्रुओं  
का हम संहार किया करें और हम अजर अमर हों ॥ १४ ॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा सुकेशतनयान्विभुः ।

स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥ १५ ॥

इस पर ब्राह्मणवत्सल विभु ब्रह्मा जी बोले “तथास्तु”—तुम क्लांग ऐसे ही होगे । तदनन्तर सुकेश के पुत्रों को यह वरदान दे, ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक को चले गये ॥ १५ ॥

वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा ।  
सुरासुरान्प्रवाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥ १६ ॥

हे राम ! इस प्रकार वे राक्षस वरदान पा कर, अत्यन्त निर्भीक हो, देवताओं और असुरों को सताने लगे ॥ १६ ॥

तैर्बाध्यमानात्मिदशाः सर्षिसङ्घाः सचारणाः ।  
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥ १७ ॥

उनसे सताये जा कर देवता, महर्षि और चारण, अनाथ की तरह रक्षक ढूँढ़ने लगे । पर जैसे नरक के प्राणियों को कोई उद्धार कर्ता नहीं मिलता, वैसे ही उन सब को भी कोई रक्षक न मिला ॥ १७ ॥

अथ ते विश्वकर्माणं शिलिपनां वरमव्ययम् ।  
ऊच्चुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम् ॥ १८ ॥

हे रघुत्तम ! उन राक्षसों ने हर्षित अन्तःकरण से, शिलिपियों में श्रेष्ठ, चिरजीवी विश्वकर्मा के समीप जा कर कहा, ॥ १८ ॥

ओजस्तेजो बलवतां महतामात्मतेजसा ।  
गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥ १९ ॥  
अस्माकमपि तावत्त्वं गृहं कुरु महामते ।  
हिमवन्तमपाश्रित्य मेर्हं मन्दरमेव वा ॥ २० ॥

पराक्रमी, तेजस्वी और बलवान् देवताओं की चाहना के अनुसार (मनमुताविक) घर तुम्हीं बनाते हो, अतः हे महामते ! हम लोगों के लिये भी तुम चाहे हिमालय पर, या मेरु पर्वत पर अथवा मन्दराचल पर एक भवन बना दो ॥ १६ ॥ २० ॥

महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ।

विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ॥ २१ ॥

शिवभवन की तरह हमारा भवन बड़ा लंबा चौड़ा और ऊँचा होना चाहिये । उन महाबलवान् राक्षसों के यह बचन सुन विश्वकर्मा ने ॥ २१ ॥

निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ।

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटा नाम पर्वतः ॥ २२ ॥

उन लोगों के रहने के लिये इन्द्र की तरह स्थान बतलाते हुए कहा कि, दक्षिण समुद्र के तट पर त्रिकूट नाम का एक पहाड़ है ॥ २२ ॥

सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयस्तत्र सत्तमाः ।

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदि सन्निभे ॥ २३ ॥

वहाँ पर सुवेल नाम का एक दूसरा उत्तम पर्वत भी है । उस पर्वत का बीच बाला शिखर बड़ा ऊँचा एक बड़े मेघ की तरह देख पड़ता है ॥ २३ ॥

शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि ।

त्रिशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ २४ ॥

उसके ऊपर उँड़ कर पक्षी भी नहीं पहुँच सकते । क्योंकि वह चारों ओर से मानों दाकियों से छील कर, चिकनाया गया है । उसके

ऊपर बनी हुई नगरी तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लंबी है ॥ २४ ॥

**स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।**

**मया लङ्घेति नगरी शक्राङ्गसेन निर्मिता ॥ २५ ॥**

लङ्घा के परकोटे की दीवारें सोने की हैं और सोने के तोरणों (फाटकों) से भूषित हैं। इस लङ्घापुरी को मैंने इन्द्र की आङ्गा से बनाया था ॥ २५ ॥

**तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुङ्गवाः ।**

**अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ २६ ॥**

हे दुर्धर्ष राक्षसश्रेष्ठो ! जिस प्रकार इन्द्रादि देवता अमरावती में रहते हैं, उसी प्रकार तुम जोग भी लङ्घापुरी में जा कर बसो ॥ २६ ॥

**लङ्घा दुर्ग समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ।**

**भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ २७ ॥**

हे शत्रुओं का संहार करने वाले राक्षसों ! जब तुम बहुत से राक्षसों के साथ लङ्घा में बस जाओगे, तब तुम शत्रुओं से दुर्धर्ष हो जाओगे ॥ २७ ॥

**विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्तेराक्षसोत्तामाः ।**

**सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन्पुरीम् ॥ २८ ॥**

विश्वकर्मा के इन वचनों को सुन कर, हज़ारों सेवकों को साथ ले कर, वे राक्षसोत्तम उस पुरी में जा बसे ॥ २८ ॥

हृष्टप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम् ।

लङ्घायवाप्य ते ष्टा न्यवसन् रजनीचराः ॥ २९ ॥

मज्जबूत प्राकारों वाली और खाई से युक्त, तथा सैकड़ों हज़ारों  
सुवर्णभूषित गृहों से सुशोभित लङ्घा में जा, वे सब राज्ञस रहने  
लगे ॥ २९ ॥

एतस्मिन्ब्रेवकाले तु यथाकामं च राघव ।

नर्मदा नाम गन्धर्वीं वभूव रघुनन्दन ॥ ३० ॥

हे राघव ! इसी बीच में नर्मदा नामक एक गन्धर्वी अपनी  
इच्छा से उत्पन्न हुई ॥ ३० ॥

तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीत् हीश्रीकीर्तिसमद्युति ।

ज्येष्ठ क्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ॥ ३१ ॥

उसके तीन बेटियाँ थीं, जो कान्ति में हो, श्री और कीर्ति के  
तुल्य थीं । उस गन्धर्वी ने अपनी वे तीनों बेटियाँ ज्येष्ठकम से  
उन तीनों राज्ञसों को दे दीं ॥ ३१ ॥

कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टा पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।

त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥ ३२ ॥

पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवालों तीन गन्धर्वकन्याएँ  
उस गन्धर्वी ने हर्षित अन्तःकरण से उन तीन राज्ञसश्रेष्ठों  
को दीं ॥ ३२ ॥

दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते ।

कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ॥ ३३ ॥

उस महाभागा ने यह विवाह उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में किया था । हे राम ! सुकेश के बे पुत्र अपनी अपनी लियों के साथ ॥३३॥

चिक्रीदुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः ।

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३४ ॥

वैसे ही विहार करने लगे, जैसे देवता अप्सराओं के साथ विहार किया करते हैं । कुछ दिनों बाद माल्यवान ने अपनी सौन्दर्यवती सुन्दरी नामक छोटी से ॥ ३५ ॥

स तस्यां जनयामास यदपत्यं निवोध तत् ।

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्वैव राक्षसः ॥ ३५ ॥

सुसद्मो यज्ञ कोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च ।

अनलाचाभवत्कन्या सुन्दर्या राम सुन्दरी ॥ ३६ ॥

जो जो पुत्र उत्पन्न किये, हे राम ! उनको मैं आपको बताता हूँ । वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुसद्म, यज्ञकोप, मत्त, उन्मत्त—ये (माल्यवान के) सात पुत्र थे और अनला नाम की एक सुन्दरी कन्या भी उस सुन्दरी के गर्भ से माल्यवान के हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सुमालिनोपि भार्याऽसीत्पूर्णचन्द्रनिभानना ।

नाम्ना केतुमती राम प्राणेभ्योपि गरीयसी ॥ ३७ ॥

सुमाली की भार्या भी पूर्णिमा के नन्दमौं की तरह सुन्दर मुखवाली थी । हे राम ! उसका नाम केतुमती था और वह अपने पति के प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी थी ॥ ३७ ॥

सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ।

केतुमत्यां महाराज तन्निवोधानुपूर्वशः ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! सुमाली ने अपनी भार्या केतुमती के गर्भ से जो सन्तानें उत्पन्न कीं, अब मैं उनके नाम आपको कम से सुनाता हूँ ॥ ३८ ॥

**प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालिकामुखः ।**

**धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपाश्वर्वश्च महाबलः ॥ ३९ ॥**

प्रहस्त, कम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली सुपाश्वर्व ॥ ३९ ॥

**संहादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ।**

**राका पुष्पोत्कटाश्चैव कैकसी च \*शुचिसिमता ।**

**कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥ ४० ॥**

संहादि, प्रघस, और भासकर्ण—ये तो महाबली सुमाली के पुत्र हुए और कुम्भीनसी, कैकसी, राका और पुष्पोत्कटा नाम की कन्याएँ भी सुमाली ने उत्पन्न कीं ॥ ४० ॥

**मालेस्तु वसुधा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।**

**भार्याऽसीत्पदपत्राक्षी स्वक्षीयकरोपमा ॥ ४१ ॥**

हे स्वामिन् ! अत्यन्त रूपवती वसुधा नाम की गन्धर्वी माली राक्षस की भार्या थी । उसके नेत्र कमल को तरह होने के कारण एक श्रेष्ठ यक्षी के समान थे ॥ ४१ ॥

**सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामासयत्प्रभो ।**

**अपत्यं कथयमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥ ४२ ॥**

हे प्रभो ! सुमाली के छोटे भाई माली ने इस स्त्री के गर्भ से जो सन्तानें उत्पन्न कीं, मैं अब उनको बतलाता हूँ । आप सुनें ॥ ४२ ॥

\* पाठान्तरे — “सुमध्यमा” ।

अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ।

एते विभीषणामात्या मालेयास्तु निशाचराः ॥ ४३ ॥

अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये माली के पुत्र थे और ये ही चारों विभीषण के मंत्री हुए ॥ ४३ ॥

ततस्तु ते राक्षसपुज्ञवास्त्वयो

निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृत्ताः ।

सुरान्सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्

ववाधिरे तान्बहुवीर्यदर्पिताः ॥ ४४ ॥

राक्षसों में श्रेष्ठ उन तीन राक्षसों का परिवार बहुत बढ़ गया । वे तीनों राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रों के साथ इन्द्र सहित समस्त देवताओं, ऋषियों, नागों और यज्ञों को मताने लगा ॥ ४४ ॥

जगद्भ्रमन्तेऽनिलवहुरासदा

रणेषुमृत्युप्रतिमानतेजसः ।

वरप्रदानादतिगर्विता भृशं

क्रतुक्रियाणां प्रशमंकराः सदा ॥ ४५ ॥

इति पञ्चमः सर्गः ॥

वे सब दुरासद राक्षस, वायु की तरह संसार में सर्वत्र भ्रमण करते थे । ये समस्त राक्षस संप्रामक्षेत्र में काल के समान अमित तेजस्वी हो जाते थे और वरदान पाने से अत्यन्त गर्वित हो सदैव यज्ञों को नष्ट किया करते थे ॥ ४५ ॥

उत्तरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## षष्ठः सर्गः

—::—

**तैर्वध्यमाना देवाश्च कुषयश्च तपोधनाः ।**

**भयार्ताः शरणं जग्मुदेवदेवं महेश्वरम् ॥ १ ॥**

उन राक्षसों से सताये जाने पर देवता और तपस्वी ऋषिगण  
भयार्त हो देवदेव महादेव के गरण में गये ॥ १ ॥

**जगत्सुष्टुचन्तकर्तारमजमव्यक्तखण्डिणम् ।**

**आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम् ॥ २ ॥**

जो महादेव इस संसार के रचने वाले, इसका अन्त करने  
वाले, तथा समस्त लोगों के आधार हैं, जो अज (अजन्मा),  
अव्यक्त, आराधना करने योग्य और परमगुरु हैं ॥ २ ॥

**ते समेत्य तु कामार्दि त्रिपुरार्दि त्रिलोचनम् ।**

**ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥ ३ ॥**

उन त्रिपुरारी पवं त्रिलोचन महादेव जो के निकट समस्त  
देवता गये और हाथ जोड़ कर पवं गिङ्गिङ्गा कर कहने लगे ॥ ३ ॥

**सुकेश पुत्रैर्भगवन्पितामहवरोद्धतैः ।**

**प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥ ४ ॥**

हे भगवन् ! हे प्रजाध्यक्ष ! शत्रुओं को सताने वाले सुकेश के  
पुत्र, ब्रह्मा जो के वर से ढीठ हो, समस्त प्रजा को पीड़ित कर  
रहे हैं ॥ ४ ॥

**शरणान्यशरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः ।**

**स्वर्गाच्च देवान्प्रस्त्याव्य स्वगेऽक्रीडन्ति देववत् ॥५॥**

हम लोगों के घरों और व्याश्रमों को उन लोगों ने उजाड़ाला है और स्वर्ग से हम लोगों को निकाल कर आप देवताओं की तरह वहाँ क्रीड़ा करते हैं ॥ ५ ॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम् ।

अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥ ६ ॥

हम विष्णु हैं, हम रुद्र हैं, हम ब्रह्मा हैं, हम इन्द्र हैं, हम यम हैं, हम वरुण हैं, हम चन्द्रमा हैं, और हम सूर्य हैं ॥ ६ ॥

इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसाः ।

बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुराः सराः ॥ ७ ॥

इस प्रकार माली, सुमाली और माल्यवान कहते हैं और युद्ध में उत्साहित हो, जिसका सामने पाते हैं उसे ही सताया करते हैं ॥ ७ ॥

तन्नो देव भयार्तानामभयं दातुर्मईसि ।

अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान् ॥ ८ ॥

हे देव ! हम सब भयभीत हो रहे हैं । सो आप हम सब को अभयदान दीजिये । आप भयझुर रूप धारण कर, उन देवकण्टकों का नाश कीजिये ॥ ८ ॥

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः ।

सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान्प्रभुः ॥ ९ ॥

उन समस्त देवताओं को इस प्रार्थना को सुन, कपर्दी, नीललोहित ( शिव के नाम विशेष ) महादेव जी, सुकेश का पक्ष ले कर, देवताओं से बोले ॥ ९ ॥

अहं तान्न हनिष्यामि ममाऽवध्या हि तेऽसुराः ।  
किं तु मंत्रं<sup>१</sup> प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥ १० ॥

हे देवगण ! मैं तो उन राज्ञों को न मारूँगा, क्योंकि सुभसे  
तो वे अवध्य हैं ( अथोत् मेरे मारे वे नहीं मारे जा सकेंगे । ) परन्तु  
मैं तुमको उपाय बताता हूँ कि, उनको कौन मारेगा ॥ १० ॥

एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः ।  
गच्छुध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान्प्रभुः ॥ ११ ॥

हे महर्षियों ! इसी प्रकार देवताओं का साथ ले तुम लोग  
भगवान् विष्णु के शरण में जाओ । वे भगवान् उन दुष्ट राज्ञों का  
नाश कर डालेंगे ॥ ११ ॥

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ।  
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयादिताः ॥ १२ ॥

यह सुन महादेव जी की जयजयकार मना कर, उनकी प्रशंसा  
करते हुए, निशाचरों के भय से पीड़ित, वे सब भगवान् विष्णु  
के पास पहुँचे ॥ १२ ॥

शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ।  
ऊचुः संभ्रान्तवद्वाक्यं सुकेशतनयान्प्रति ॥ १३ ॥

शङ्खचक्रधारी भगवान् विष्णु को वडे आदर के साथ प्रणाम  
कर, देवताओं ने सुकेश के पुत्रों के विषय में घबड़ा कर  
कहा ॥ १३ ॥

<sup>१</sup> मंत्रं—उपायं । ( गो० )

सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्ताम्निभैः ।

आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥ १४ ॥

हे देव ! तीन अग्नियों के समान अत्यन्त तेजस्वी, सुकेश के तीनों पुत्रों ने वरदान पा कर और प्रचण्ड हो कर, हम लोगों के स्थान छीन लिये हैं ॥ १४ ॥

लङ्घा नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।

तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान्नः क्षणदाचराः ॥ १५ ॥

वे त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बनी हुई लङ्घापुरी में रहते हैं और हम सब लोगों को सताया करते हैं ॥ १५ ॥

स त्वमस्मद्दिवार्थाय जहि तान्मधुसूदन ।

शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १६ ॥

अतएव हे मधुसूदन ! हम लोगों के हित के लिये, आप उन सब को मारिये । हे सुरेश्वर ! हम सब आपके शरण में आये । अतः आप हम लोगों को रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

चक्रकृत्तास्यकमलान्विदेय यमाय वै ।

भयेष्वभयदोस्माकं नान्योस्ति भवता विना ॥ १७ ॥

आप अपने चक्र से उनके कमल सदृश मुखों को ( गर्दनों को ) काट कर यम की अर्पण कीजिये । क्योंकि आपको छोड़, हम लोगों को इस भय से अभय करने वाला और दूसरा कोई नहीं है ॥ १७ ॥

राक्षसान्समरे दुष्टान्सानुवन्धान्मदोद्धतान् ।

नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥ १८ ॥

हे देव ! युद्ध के लिये सदा उत्साहित रहने वाले अथवा लड़ने में बड़े मज़बूत और मदाद्धत उन राक्षसों को आप उनके अनुचरों अथवा परिवार सहित पेसे नष्ट कीजिये, जैसे सूर्य कुहरे का नाश करते हैं ॥ १८ ॥

इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः ।

अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाचह ॥ १९ ॥

जब देवताओं ने इस प्रकार कहा, तब देवादिदेव और शत्रुओं का भय देने वाले भगवान् जनार्दन, देवताओं का अभय दे कर, उनसे बाले ॥ १९ ॥

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवर दर्पितम् ।

तांश्चास्य तनयाङ्गाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥ २० ॥

शिव के वर से दर्पित सुकेश राक्षस को मैं जानता हूँ । उसके सब पुत्र भी मेरे जाने हुए हैं । उन सब में बड़ा माल्यवान है ॥ २० ॥

तानदं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान् ।

निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥ २१ ॥

मर्यादा तोड़ने वाले उन राक्षसाधमों को मैं क्रोध में भर मारूँगा । अब तुम सब निश्चिन्त हो जाओगा ॥ २१ ॥

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।

यथावासं यथुर्हष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥ २२ ॥

देवशिरोमणि भगवान् विष्णु के ये नचन सुन, समस्त देवता हर्षित हुए और जनार्दन भगवान् की प्रशंसा करते हुए, अपने अपने स्थानों को छले गये ॥ २२ ॥

विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ।

श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

देवताओं के इस उद्योग का संवाद पा कर, माल्यवान अपने दोनों भाईयों से बोला ॥ २३ ॥

अमरा कुषयश्चैव संगम्य किल शङ्करम् ।

अस्मद्धृष्टं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥ २४ ॥

देवताओं और ऋषियों ने हम लोगों का वध करवाने की कामना से शिव जी के पास जा, उनसे यह कहा ॥ २४ ॥

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ।

बाधन्तेऽस्मान्समुद्दसा घोररूपाः पदे पदे<sup>१</sup> ॥ २५ ॥

हे देव ! सुकेश के भयङ्कररूपधारी पुत्र वरदान पा कर बड़े अमिमानी हो गये हैं । वे हम लोगों को प्रतिक्षण सताया करते हैं ॥ २५ ॥

राक्षसैरभिभूताः स्म न शक्ताः स्म प्रजापते ।

स्वेषु सद्ब्रह्म संस्थातुं भयात्तेषां दुरात्मनाम् ॥ २६ ॥

हे प्रजापते ! उन दुरात्माओं के उत्पातों और भय के कारण हम लोगों को अपने घरों में रहना कठिन हो गया है ॥ २६ ॥

तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन ।

राक्षसान्हुंकृतेनैव दह प्रदहतांवर ॥ २७ ॥

<sup>१</sup> पदे पदे—प्रतिक्षण मित्यर्थः । ( गो० )

अतएव हे त्रिलोचन ! हम लोगों की भलाई के लिये आप उन सब को मारिये । हे भस्म करने वालों में श्रेष्ठ ! आप हुंकार ही से उन समस्त राक्षसों का भस्म कर डालिये ॥ २७ ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ।

शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

अंधकासुर के मार डालने वाले महादेव जी ने, देवताओं के येसे वचन सुन, अपने सिर की हाथ से धुन कर, यह कहा ॥ २८ ॥

अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ।

मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान्वै निहनिष्यति ॥ २९ ॥

हे देवताओ ! मैं युद्ध में सुकेश के पुत्रों को नहीं मार सकता, क्योंकि वे मेरे हाथ से नहीं मर सकते । किन्तु जो उन्हें मार सकता है, उसके विषय में, मैं तुमको उपाय बतलाता हूँ ॥ २९ ॥

योसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।

हरिनारायणः श्रीमान् शरणं तं प्रपद्यथ ॥ ३० ॥

जो चक्र और गदाधारी हैं, जो पीतवस्त्र पहनते हैं, जिनके नाम जनार्दन, हरि और नारायण हैं, उन श्रीयुक्त भगवान् विष्णु के तुम सब ज्ञान शरण हो ॥ ३० ॥

हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च ।

नारायणलयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥ ३१ ॥

महादेव जी के बतलाये, इस उपाय को सुन और उनको प्रणाम कर, वे समस्त देवता वैकुण्ठ में पहुँचे और श्रीमन्नारायण से सारा वृत्तान्त कहा ॥ ३१ ॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रं पुरोगमाः ।

सुरार्हिस्तान्हनिष्यामि सुरा भवत निर्भयाः\* ॥ ३२ ॥

तब नारायण ने उन इन्द्रप्रमुख समस्त देवताओं से कहा कि, मैं देवताओं के उन शत्रुओं को अवश्य मारूँगा । तुम सब अब निर्भय हो जाओ ॥ ३२ ॥

देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ।

प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥ ३३ ॥

हे राक्षसश्रेष्ठो ! भयभीत देवताओं से नारायण ने हम लोगों के मार डालने की प्रतिज्ञा को है । अतः अब जो उचित हो, वह विचारना चाहिये ॥ ३३ ॥

हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् ।

नमुचिःकालनेमिश्रं संहादो वीरसत्तमः ॥ ३४ ॥

राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः ।

यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुभश्रैव निशुभ्मकः ॥ ३५ ॥

असुरा दानवाश्रैव सत्ववन्तो महाबलाः ।

सर्वं समरमासाद्य न श्रूयन्तेऽपराजिताः ॥ ३६ ॥

नारायण द्वारा हिरण्यकशिपुं तथा अन्य भी देवताओं के शत्रु मारे गये हैं । इनके अतिरिक्त सुना जाता है, नमुचि, कालनेमि, वीरश्रेष्ठ संहाद, अनेक प्रकार की माया जानने वाला राधेय, धार्मिक लोकपाल, यमल, अर्जुन, हार्दिक्य, शुभ, निशुभ्म आदि बड़े बड़े पराक्रमी और महाबली असुरों तथा दानवों को विष्णु ने युद्ध में परास्त किया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

\* पाठान्तरे—“विज्वराः” ।

सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा ।

सर्वे सर्वाख्यकुशलाः सर्वे शत्रुभयङ्कराः ॥ ३७ ॥

विशेष कर बे सब सैकड़ों यज्ञ करने वाले, विविध प्रकार की मायाओं के जानने वाले और समस्त अख्यों के चलाने में निपुण थे तथा शत्रुओं को भयभीत करने वाले थे ॥ ३६ ॥

नारायणेन निहताः शतशोथ सहस्रशः ।

एतज्ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमं कर्तुमिहार्थ ॥ ३८ ॥

ऐसे सैकड़ों हज़ारों देवताओं के शत्रुओं को, भगवान् विष्णु ने मार डाला है । अतएव इस विषय में जो उचित करना समझ पड़े सो करना चाहिये ॥ ३८ ॥

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ।

ऊचतुभ्रातरं ज्येष्ठमश्विनाविव वासवम्\* ॥ ३९ ॥

तब माल्यवान के इन वचनों को सुन माली और सुमाली अपने बड़े भाई माल्यवान से वैसे ही बोले जैसे दोनों अश्विनीकुमार इन्द्र से बोलते हैं ॥ ३६ ॥

स्वधीतं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्यं परिपालितम् ।

आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः† स्थापितः पथि ॥ ४० ॥

भाई ! हम लोगों ने विधिपूर्वक वेद पढ़ा, दान दिये, यज्ञ किये, ऐश्वर्य की वृद्धि कर उसको भेग किया । दीर्घायु और आरोग्यता पायी, हमने अच्छे धर्म की स्थापना की ॥ ४० ॥

\* पाठान्तरे—“भगवान्विव वासवम्” । † पाठान्तरे—“प्रखितः” ।

देवसागरमक्षोभ्यं शख्नैः समवगात्म च ।

जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥ ४१ ॥

देवताहपी अक्षेभ्य समुद्र को हमने शख्नों से कुब्ज किया और बड़े बड़े शत्रुओं को पराजित किया । सो अब हमको मृत्यु का तो भय है नहीं ॥ ४१ ॥

नारायणश्च रुद्रश्च शक्तश्चापि यमस्तथा ।

अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे विभ्यति सर्वदा ॥ ४२ ॥

देखो नारायण, रुद्र, इन्द्र और यम भी हमारा सामना करने में सदा डरा करते हैं ॥ ४२ ॥

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ।

देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥ ४३ ॥

हे राक्षसेश्वर ! फिर विष्णु के साथ हमारा कोई द्वेष भी नहीं है । परन्तु सभव है, देवताओं के उभाड़ने से वे हम लोगों के विरुद्ध हो गये हों अथवा उनका मन हमारी और से फिर गया हो ॥ ४३ ॥

\*तस्मादद्यैव सहिताः सर्वेऽन्योन्य समावृताः ।

देवानेव जिधांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ॥ ४४ ॥

अतः हम सब अन्य राक्षसों को साथ ले, आज ही उन देवताओं को मार डालें, जिनके उभाड़ने से विष्णु हमको मारने के लिये उद्यत हुए हैं ॥ ४४ ॥

एवं संमन्य बलिनः सर्वे सैन्यमुपासिताः† ।

उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैऋतपुङ्गवाः ॥ ४५ ॥

\* पाठान्तरे — “तस्मादद्य समुद्युक्ताः सर्वसैन्यसमावृताः । देवानेव जिधांसाम एभ्यो दोषः समुत्थितः ॥” † पाठान्तरे — “सैन्यक्षमावृताः ।”

इस प्रकार सलाह कर और युद्ध की घोषणा कर, साथ में सेना ले उन बलवानों ने मारू बाजा बजवाते हुए, देवताओं के ऊपर चढ़ाई की ॥ ४५ ॥

युद्धायनिर्युः क्रुद्धा जूम्भवृत्रादयोः\* यथा ।

इति ते राम संमन्य सर्वाद्योगेन राक्षसाः ॥ ४६ ॥

युद्धाय निर्युः सर्वे महाकाया महाबलाः ।

स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च करिसन्निभैः† ॥ ४७ ॥

हे राम ! इस तरह सब प्रकार से तैयारी कर और युद्ध के लिये देवताओं को ललकारते हुए, राक्षस लोग क्रोध में भर उसी प्रकार युद्ध करने के लिये निकले, जिस प्रकार जूम्भ, वृत्रासुरादि निकले थे । वे महाकाय और महाबलवान राक्षस रथों पर, हाथियों पर और हाथियों के समान ऊँचे घोड़ों पर सवार होकर लड़ने को गये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

खरैर्गेभि रथौष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजङ्गमैः ।

मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहङ्गरूढोपमैः ॥ ४८ ॥

सिंहैव्याघ्रैर्वराहैश्च सूमरैश्चमरैरपि ।

त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ॥ ४९ ॥

बहुत से राक्षस गधों, बैलों, ऊँटों, सूसों, सांपों, घड़ियालों, कछुओं, मच्छों और गरुड के समान पक्षियों, सिंहों, व्याघ्रों, बराहों, सूमरों व चमरों पर सवार थे । वे बल के अहंकार में चूर, लङ्का से रवाना हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ।

लङ्काविपर्ययं दृष्टा यानि लङ्कालयान्यथ ॥ ५० ॥

\* पाठान्तरे—“जूम्भवृत्रबलो इव” । † पाठान्तरे—“गिरिसन्निभैः” ।

ये देवताओं के शत्रु जिस समय लड़ने के लिये देवलोक को रखाना हुए, उस समय लड़ा के अन्य रहने वालों ने वहाँ बड़ी उथल पुथल देखी ॥ ५० ॥

**भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ।**

**रथोत्तमैरुद्धमानाः शतशोथ सहस्रशः ॥ ५१ ॥**

**प्रयाता राक्षसास्तुर्ण देवलोकं प्रयत्नतः ।**

**रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥ ५२ ॥**

उस समय लड़ा में जितने भयदर्शी प्राणी थे, वे सब उदास हो गये । श्रेष्ठ रथों पर स्वार हो सैकड़ों हज़ारों राक्षस अति सावधानी से देवलोक के लिये चल पड़े । लड़ावासी देवता भी उसी मार्ग से चले जिस मार्ग से राक्षस चढ़ाई करने गये थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

**भौमाश्चैवांतरिक्षाश्च कालाङ्गसा भयावहाः ।**

**उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभवाय समुत्थिताः ॥ ५३ ॥**

उस समय धरती पर और आकाश में ऐसे बड़े बड़े उत्पात ( अशकुन ) हुए, जो बड़े भयझुर थे और काल से प्रेरित राक्षसनाथ के नाश की सूचना देने वाले थे ॥ ५३ ॥

**अस्थीनि मेघा वृषुरुर्ण शोणितमेव च ।**

**वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ॥ ५४ ॥**

**अद्वासान्विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ।**

**घाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ॥ ५५ ॥**

बादलों से हड्डियों और गर्म गर्म लोहू की वर्षा हुई, समुद्र अपनी अपनी मर्यादाएँ क्लोड बड़ी बड़ी लहरों से लहराने लगे ।

पहाड़ काँप उठे । भयानक रूप वाली सियारनें मेघगर्जन की तरह अह्वास करतीं हुईं, बड़े ज़ोर से चिल्हाने लगीं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

सम्पन्तन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथाक्रमम् ।

गृध्रचक्रं महाच्चात्र प्रज्वालोदगारिभिर्मुखैः ॥ ५६ ॥

रक्षोगणस्योपरिष्टात्परिभ्रमति कालवत् ।

कपोता रक्तपादाश्च सारिका विद्रुता ययुः ॥ ५७ ॥

भयानक भूत (प्रेत) यथाक्रम पक्त्र हो गये अथवा पञ्चभूत—जल, तेज, वायु, आकाश, पृथिवी यथाक्रम विचलित होते हुए से देख पड़े । गोधों के कुरुण मुँह से अग्नि की ज्वाला निकालते हुए काल की तरह राक्षसी सेना के ऊपर चारों ओर धूमने लगे । कबूतर, हंस और मैताएँ घबड़ा कर भाग गयीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

काका वाश्यन्ति तत्रैव विडालाय द्विपादिकाः ।

उत्पातांस्ताननादत्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ ५८ ॥

कौपँ चिल्हाने लगे और दो पैर के विडाल (विशेष) प्रकट हुए । किन्तु इन सब अपशकुनों की कुछ भी परवाह न कर, क्योंकि वे तो अपने बल के अहंकार में चूर हो रहे थे ॥ ५८ ॥

यान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः ।

माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलः ॥ ५९ ॥

पुरस्सरा राक्षसानां ज्वलिता इव पावकाः ।

माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ॥ ६० ॥

निशाचरा आश्रयन्ति धातारमिव देवताः ।

तद्वलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ॥ ६१ ॥

वे आगे ही बढ़ते चले गये, लौटे नहीं। उनके सिरों पर तो काल मँडरा रहा था। महाबली माल्यवान्, सुमाली और माली धधकती हुई आग की तरह सेना के आगे आगे जा रहे थे। पर्वत के समान माल्यवान् का ये सब रात्रि स अनुसरण वैसे ही कर रहे थे, जैसे देवता लोग ब्रह्मा जी का अनुसरण करते हैं। वह रात्रि स वीरों की सेना महामेघ की तरह गर्जती हुई, ॥ ५६ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

जयेष्यथा देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् ।

राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ॥ ६२ ॥

देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ।

स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ॥ ६३ ॥

माली के अधीन में जय की अभिलाषा से देवताओं के लोक में गयी। देवदूत के मुख से रात्रियों की चढ़ाई का वृत्तान्त सुन कर, भगवान् नारायण ने भी रात्रियों से युद्ध करने की ठानी। सब आयुधों से सज और तरकस धारण कर, वे गरुड़ जी के ऊपर सवार हुए ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

\*आसाद्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ।

आवध्य शरसम्पूर्णे इषुधी विमले तदा ॥ ६४ ॥

श्रोणिसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः ।

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गांश्चैव वरायुधान् ॥६५॥

उन्होंने सहस्र सूर्य के समान चमचमाता कवच धारण कर और बाणों से भरे दो तरकस लिये। कटिसूत्र धारण किये हुए कमलनयन नारायण ने एक चमचमाता बङ्ग लिया। इसके

\* पाठान्तरे—“आसज्य”।

अतिरिक्त उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्ख, सुदर्शनचक्र, कौमोदकी गदा, नन्दकी खड्ड और शार्ङ्ग धनुष लिया। ये उनके आयुध बड़े श्रेष्ठ थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सम्पूर्ण गिरिसङ्काशं वैनतेयमथास्थितः ।

राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥ ६६ ॥

फिर पर्वताकार गरुड़ पर सवार हो, समस्त राक्षसों का नाश करने के लिये वे बड़ी शीघ्रता से चले ॥ ६६ ॥

सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ।

काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥ ६७ ॥

श्याम स्वरूप, पीताम्बर पहिने और गरुड़ की पीठ पर सवार श्रीनारायण, सुमेहपर्वतस्थित बिजलीसहित मेघ के समान शोभित हो रहे थे ॥ ६७ ॥

स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च  
गन्धर्वयक्षैरूपगीयमानः ।

समाससादासुरसैन्यशत्रु-  
श्चक्रासि शार्ङ्गायुध शङ्खपाणिः ॥ ६८ ॥

असुरों की सेना के बैरी भगवान् विष्णु, सुदर्शन चक्र, नन्दकी खड्ड, शार्ङ्ग धनुष और पाञ्चजन्य शङ्ख धारण किये हुए, तुरन्त वहाँ जा उपस्थित हुए। सिद्ध, देवर्षि, महानाग, गन्धर्व तथा यक्ष इस समय उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ६८ ॥

सुपर्णपक्षानिलनुब्रपक्षं

भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।

चचालतद्राक्षसराजसैन्यं

चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम् ॥ ६९ ॥

गरुड़ जी के पंखों के पवन से राज्ञसी सेना की पताकाएँ फट गयीं—सैनिकों के हाथों से हथियार छूट पड़े और राज्ञसराज की सेना के राज्ञस वीर वैसे ही काँप उठे, जैसे नीलवर्ण पर्वत का शिखर काँपने लगता है ॥ ६९ ॥

ततः शितैःशोणितमांसरूषितैः

युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।

निशाचराः सम्परिवार्य माधवं

वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ॥ ७० ॥

इति षष्ठः सर्गः ॥

तदनन्तर हज़ारों राज्ञस माधव को, चारों ओर से घेर कर, रुधिर और मांस से सने, प्रलयकालीन अश्वि के समान चमचमाते, वैन और श्रेष्ठ आयुधों से मारने लगे ॥ ७० ॥

उत्तरकाण्ड का छठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—: \* :—

सप्तमः सर्गः

—: o :—

नारायणगिरि ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।

अर्दयन्तोऽङ्गवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ १ ॥

गर्जते हुए मेघरूपी राक्षस, पर्वतरूपी श्रीनारायण के ऊपर अखरूपी जल की बैसे ही वर्षा करने लगे, जैसे मेघ जल की वर्षा पर्वत के ऊपर करते हैं ॥ १ ॥

**श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः ।**

**वृतोङ्गनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः ॥ २ ॥**

श्याम एवं निर्मलवर्ण वाले श्रीनारायण, नीले रंग की कान्ति-वाले राक्षसों से घेरे जा कर, ऐसे जान पड़े, मानों वर्षा करते हुए मेघों द्वारा अंजन का पर्वत ढक गया हो ॥ २ ॥

**शलभा इव केदारं मशका इव पावकम् ।**

**यथाऽमृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥ ३ ॥**

**तथा रक्षोधनुरुम्भुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।**

**हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥**

जिस प्रकार खेतों के ऊपर टोहियाँ, आग के ऊपर मच्छर, शहद के घड़े पर डाँस और समुद्र में मगर गिरते हैं, उसी प्रकार राक्षसों के होड़े हुए वायु और मन के समान वेगवान् और वज्र के तुल्य कठोर बाण, नारायण के शरीर में बैसे ही घुसने लगे, जैसे प्रलयकाल में जीव भगवान् के शरीर में समा जाते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

**स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगाः\* ।**

**अश्वारोहास्तथाऽश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥५॥**

**राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः ।**

**निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायाम इव द्विजम् ॥ ६ ॥**

\* पाठान्तरे—“गजपृष्ठगाः” ।

राज्ञसो सेना के पर्वताकार योद्धाओं ने रथों पर चढ़ कर, हाथियों और बोड़ों पर सवार हो कर, पाँव प्यादे तथा आकाश में खड़े हो कर, बाणों, शक्तियों, यश्छियों और तोमरों की वर्षा कर उनसे नारायण को ढक दिया। शख्तों से राज्ञसों ने नारायण को ऐसा ढका कि, वे वैसे ही श्वास रहित से हो गये, जैसे प्राणायाम करते समय ब्राह्मण श्वासरहित सा जान पड़ता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

**निशाचरैस्ताङ्गमाने मीनैरिव महोदधिः ।**

**शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥**

श्रीनारायण उनके प्रहारों को वैसे ही सह रहे थे, जैसे मछलियों के वेग को समुद्र सह लेता है। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने शार्ङ्ग धनुष हाथ में ले, राज्ञसों के ऊपर बाण चलाना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

**शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रकल्पैर्मनोजवैः ।**

**चिच्छेद विष्णुर्निश्चितैः शतशोथ सहस्रशः ॥ ८ ॥**

वज्र के समान कठोर, और मन के समान वेगवान् पैने बाणों से भगवान् विष्णु ने, सैकड़ों हज़ारों राज्ञसों को मार डाला ॥ ८ ॥

**विद्राव्य शरवर्षेण वर्ष वायुरिवोत्थितम् ।**

**पाञ्चजन्यं महाशङ्कं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥**

जैसे पवन बादलों को उड़ाता है, वैसे ही भगवान् विष्णु ने बाणों की मार से सब राज्ञसों को भगा कर अपना पाञ्चजन्य महाशङ्क बजाया ॥ ९ ॥

सोम्बुजो हरिणा धमातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ।

ररास भीमनिःहृदस्त्वैलोक्यं व्यथयन्निव ॥ १० ॥

जब जल से निकले हुए उस शङ्खश्रेष्ठ को भगवान् विष्णु ने बड़े ज़ोर से बजाया, तब उस शङ्खराज का नाद तीनों लोकों में व्याप्त हो गया और उसने उन तीनों लोकों के रहने वालों को दुःखी सा कर डाला ॥ १० ॥

शङ्खराजरवः सोथ त्रासयामास राक्षसान् ।

मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥ ११ ॥

उस शङ्खश्रेष्ठ के नाद को सुन, राक्षस वैसे ही भयभीत हुए, जैसे वन में सिंहनाद से मतवाले हाथो भयभीत होते हैं ॥ ११ ॥

नशेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराभवन् ।

स्यन्दनेभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावित दुर्बलाः ॥ १२ ॥

उस समय घोड़े वहाँ खड़े न रह सके ( भड़के और भाग खड़े हुए ) हाथियों की मस्ती दूर हो गयी । उस शङ्खश्वनि को सुन राक्षस बलहीन हो रथों से नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥

शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः ।

विदार्य तानि रक्षांसि सुपुण्डा विविशुः क्षितिम् ॥ १३ ॥

शार्ङ्ग धनुष से कुटे हुए, वज्र के समान मुखवाले तथा अच्छे फोंखदार बाण राक्षसों के शरीरों के आर पार हो, पृथिवी में घुस गये ॥ १३ ॥

भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायणकरच्युतैः ।

निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥ १४ ॥

इस प्रकार उस युद्ध में भगवान् के वाणों से द्विन्न भिन्न हो कर, सब राज्ञस, वज्राहत पर्वतों को तरह, पृथिवी पर गिर गये ॥ १४ ॥

**ब्रणानि परगत्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि हि ।**

**असृक्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ॥ १५ ॥**

राज्ञसों के शरीर चक्र के प्रहार से धायल हो गये थे । उन धावों से बहता हुआ रक्त ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वतों से स्वर्ण की धाराएँ बहती हो ॥ १५ ॥

**शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ।**

**राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः ॥ १६ ॥**

शङ्खराज की ध्वनि, शार्ङ्ग धनुष की टंकार, तथा भगवान विष्णु के सिहनाद ने राज्ञसों के गर्जन को दबा दिया ॥ १६ ॥

**तेषां शिरोधरान्धूताञ्छरध्वजधनूषि च ।**

**रथान्पताकास्तूणीरांश्चिच्छेद स हरिः शरैः ॥ १७ ॥**

भगवान् विष्णु राज्ञसों की काँपती हुई गर्दनों, वाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं और तरकसों को अपने पैने वाणों से काट रहे थे ॥ १७ ॥

**सूर्यादिव करा घोरा ऊर्मयः सागरादिव ।**

**पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात् ॥ १८ ॥**

**तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः ।**

**निर्धावन्तीष्वस्तूर्णं शतशोथ सहस्रशः ॥ १९ ॥**

जैसे सूर्य से प्रकाश की किरणें और समुद्र से जल की तरंगे उठती हैं, वैसे ही भगवान् विष्णु के शार्ङ्गधनुष से सैकड़ों हज़ारों वाण बड़ी तेज़ी से निकल रहे थे ॥ १८ ॥ १९ ॥

शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा ।  
 द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥२०॥  
 द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारका यथा ।  
 मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाऽखवाः ॥ २१ ॥  
 तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।  
 द्रवन्तिद्राविताश्वान्ये शायिताश्च महीतले ॥ २२ ॥

जैसे शरभ से सिंह, सिंह से हाथी और हाथी से व्याघ्र, व्याघ्र से चीता, चीते से कुत्ता, कुत्ता से बिल्ली, बिल्ली से सर्प और सर्प से चूहे भागते हैं, वैसे ही भगवान् विष्णु से भयभीत हो, वे राक्षस भागे और उनमें से बहुत से निर्जीव हो, पृथिवी पर से गये ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।  
 वारिजं<sup>१</sup> पूरयामास तोयदं सुररादिव ॥ २३ ॥

इस प्रकार भगवान् मधुसूदन ने वैसे ही हजारों राक्षसों को मार कर अपना शङ्ख बजाया, जैसे इन्द्र के बादल गर्जते हैं ॥ २३ ॥

नारायण शरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्लम् ।  
 ययौ लङ्घामभिमुखं प्रभग्रं राक्षसंबलम् ॥ २४ ॥

भगवान् विष्णु के बाणों की मार से भयभीत हो तथा शङ्खच्चनि से घबड़ा कर, राक्षसी सेना लङ्घा की ओर मुख कर और तितर बितर हो, भाग खड़ी हुई ॥ २४ ॥

१ वारिजं—शङ्ख । ( शि० )

प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते ।

सुमाली शरवर्षेण निवार रणे हरिम् ॥ २५ ॥

तब अपनी सेना को तितर बितर हो भागते देख, सुमाली ने बाणों की वर्षा कर, भगवान् विष्णु को युद्ध से निवृत्त करना चाहा ॥ २५ ॥

स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम् ।

राक्षसाः सत्वसम्पन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः ॥ २६ ॥

उसने बाणों की वर्षा कर, भगवान् विष्णु को ऐसे ढक दिया, जैसे कुहरा सूर्य को ढक देता है। सुमालो का ऐसा पराक्रम देख, बलवान् राक्षस सैनिकों को धीरज बँधा ॥ २६ ॥

अथ सोभ्यपतद्रोषाद्राक्षसो बलदर्पितः ।

महानादं प्रकुर्वणो राक्षसाङ्गीवयन्विव ॥ २७ ॥

सुमाली को अपने बल का बड़ा अहंकार था, अतएव वह राक्षस बड़े ज़ोर से गर्जता हुआ, मानों उन ( मृतप्राय ) राक्षसों को फिर जिला रहा था ॥ २७ ॥

उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन्करमिव द्विपः ।

ररास राक्षसो हर्षात्सतडितोयदा यथा ॥ २८ ॥

सूँड उठाये हुए हाथी की तरह, भूषणों से भूषित हाथ ऊपर को उठाये और हर्षित हो, वह वैसे ही गर्जा, जैसे विजलीयुक्त मेघ गर्जता है ॥ २८ ॥

सुमालेन्दर्तस्तस्य शिरो ज्वलितकुंडलम् ।

चिन्छेद यन्तुरश्वाश भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥ २९ ॥

जब सुमाली गर्जने लगा, तब भगवान् विष्णु ने उसके सारथी का कुण्डलों से झलमल करता हुआ सिर काट डाला। सारथी के मारे जाने पर, सुमाली के रथ के घोड़े अपनी इच्छानुसार रथ खींचते हुए, रणभूमि में इधर उधर घूमने लगे ॥ २६ ॥

तैरश्वैभ्राम्यते भ्रान्तैः सुमालो राक्षसेश्वरः ।  
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥३०॥

जिस प्रकार असंयमी नर की इन्द्रियाँ उसके वश में न रह कर, यथेष्ट कर्मों में प्रवृत्त हो जाया करती हैं; उसी प्रकार सुमाली के सारथीहीन रथ को घोड़े अपनी इच्छानुसार लिये हुए इधर उधर घूमने लगे। अथवा उन घोड़ों के इधर उधर घूमने से रथ में बैठा सुमाली भी घूमने लगा, जैसे इन्द्रिय रूपी घोड़ों के घूमने से असंयमी पुरुष भ्रान्त हो इधर उधर घूमा करता है ॥ ३० ॥

ततो विष्णुं महाबाहुं प्रापतन्तं रणाजिरे ।  
हृते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रति ।  
माली चाभ्यद्रवद्युक्तः प्रगृह्य सशरासनम् ॥ ३१ ॥

जब सुमाली के घोड़े उसका रथ भगवान् विष्णु के सामने ले गये, तब अत्यन्त तपते हुए महाबाहु भगवान् विष्णु को रणभूमि में देख, सुमाली का भाई माली धनुष ले भगवान् विष्णु की ओर झटपटा ॥ ३१ ॥

मालेर्धनुच्युता वाणाः कार्तस्वरविभूषिताः ।  
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चपत्ररथा इव ॥ ३२ ॥

माली के धनुष से छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण, भगवान् विष्णु  
के शरीर में घुसने लगे, मानों क्रौचाचल में पक्षी घुसते हों ॥ ३२ ॥

अर्द्धमानः शरैः सोथ मालिमुक्तैः सहस्रशः ।

चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ॥ ३३ ॥

माली के चलाये हज़ारों बाणों के लगने पर भी भगवान् विष्णु  
युद्ध में ज़रा भी लुब्ध न हुए, जैसे जितेन्द्रिय पुरुष मानसिक  
चिन्ताओं से कभी लुब्ध नहीं होते ॥ ३३ ॥

अथ मौर्वीस्यनं कृत्वा भगवान्भूतभावनः ।

मालिनं प्रति बाणौघान ससर्जासिगदाधरः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर गदाधारी, खड़गधारी, भूतभावन भगवान् विष्णु ने  
धनुष को ठंकार कर, माली के ऊपर बहुत से बाण छोड़े ॥ ३४ ॥

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः ।

पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम् ॥ ३५ ॥

वे बाण विजली और वज्र के समान चमत्रमाते थे । उन बाणों  
ने माली के शरीर में घुस, उसका रक्त वैसे ही सोख लिया ; जैसे  
नाग सुधारस पी जाते हैं ॥ ३५ ॥

मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ।

मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ॥ ३६ ॥

शङ्ख-चक्र-गदा-धारी भगवान् विष्णु ने माली को युद्ध से  
विमुख कर, उसका मुकुट, ध्वजा और धनुष को काट कर, उसके  
रथ के घोड़ों को भी मार कर गिरा दिया ॥ ३६ ॥

विरथस्तु गदा॒ं गृह्ण माली॑ नक्तंचरोत्तमः ।

आपुष्कुवे॑ गदापाणिर्गिर्यग्रादिव॑ केसरी ॥ ३७ ॥

रथ के नष्ट हो जाने पर निशाचरोत्तम माली हाथ से गदा ले रथ से ऐसे कूदा, जैसे पर्वतशिखर से सिंह कूदे था उछले ॥ ३७ ॥

गदया॑ गरुडेशानमीशानमिव॑ चान्तकः ।

ललाट॑ देशेऽभ्युहनद्वज्जेणेन्द्रो॑ यथाऽचलम् ॥ ३८ ॥

जैसे शिव जी के ऊपर यमराज ने अख्यप्रहार किया था अथवा जैसे इन्द्र ने पर्वतों पर वज्रप्रहार किया था, वैसे ही माली ने गरुड़ जी के ललाट पर गदा का प्रहार किया ॥ ३८ ॥

गदयाभिहतस्तेन॑ मालिना॑ गरुडो॑ भृशम् ।

रणात्पराङ्गुखं॑ देवं॑ कुतवान्वेदनातुरः ॥ ३९ ॥

उस गदा के प्रहार की पीड़ा से विकल हो, गरुड़ जी वहाँ न ठहर सके और भगवान् विष्णु को उन्होंने युद्ध से विमुख कर दिया ॥ ३९ ॥

पराङ्गुखे॑ कुते॑ देवे॑ मालिना॑ गरुडेन॑ वै ।

उदतिष्ठन्महाञ्छब्दो॑ रक्षसामभिनर्दताम् ॥ ४० ॥

माली की गदा के प्रहार से विकल गरुड़ द्वारा, भगवान् विष्णु के युद्ध से विमुख होने पर, राक्षसों ने बड़ा नाद किया ॥ ४० ॥

रक्षसां॑ रुतां॑ रावं॑ श्रुत्वा॑ हरिहयानुजः॑ ।<sup>१</sup>

तिर्यगास्थाय॑ संक्रुद्धः॑ पक्षीशे॑ भगवान्हरिः ॥ ४१ ॥

<sup>१</sup> हयानुजः—हन्द्रानुजः । ( गो० )

गर्जते हुए उन राज्ञियों का वह सिंहनाद इन्द्रानुज ने सुना और उसे सुन वे क्रुद्ध हुए। तब पक्षिराज गृहड़ की पीठ पर पूँछ की ओर मुख कर भगवान् विष्णु ने ॥ ४१ ॥

**पराड्मुखोऽप्युत्सर्ज मालेश्चकं जिघांसया ।**

**तत्सूर्यं मण्डला भासं स्वभासा भासयन्नभः ॥ ४२ ॥**

गृहड़ जी द्वारा युद्ध से विमुख किये जाने पर भी, माली का वध करने के लिये चक चलाया। सूर्य की तरह प्रकाशमान और अपने प्रकाश से आकाश को प्रकाशित करते हुए ॥ ४२ ॥

**कालचक्रनिर्भं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ।**

**तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृतं विभीषणम् ।**

**पपात रुधिरोदगारि पुरा राहुशिरो यथा ॥ ४३ ॥**

कालचक्र के समान प्रभावान् सुदर्शन चक्र ने माली का सिर काट कर धड़ से अलग कर दिया। राज्ञियों का वह अत्यन्त भयझूर मस्तक चक्र से कट कर, रुधिर उगलता हुआ, भूमि पर वैसे ही गिर पड़ा; जैसे पूर्वकाल में राहु का सिर चक्र से कट कर गिरा था ॥ ४३ ॥

**ततः सुरैः सम्प्रहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ।**

**सिंहनादरवो मुक्तः साधु देवेतिवादिभिः ॥ ४४ ॥**

यह देख देवता अत्यन्त हर्षित हो “धन्य हो महाराज”—कह कर और सब मिल कर बड़े ज़ोर से सिंहनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

**मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ।**

**सबलौ शोकसन्तसौ लङ्घामेव प्रधावितौ ॥ ४५ ॥**

माली का इस प्रकार मोरा जाना देख, सुमाली और माल्यवान  
भी शोकसन्तप्त हो, सेना सहित लड़ा को भाग गये ॥ ४५ ॥

**गरुडस्तु समाश्वस्तः सन्निवृत्य यथा पुरा ।**

**राक्षसान्द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥ ४६ ॥**

इतने में गरुड़ जी भी स्वस्थ हो गये और पूर्ववत् पुनः रणभूमि  
में आ कर और क्रोध में भर, अपने पंखों के पक्षन से राक्षसों को  
भगाने लगे ॥ ४६ ॥

**चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः ।**

**लाङ्गलग्लापितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥ ४७ ॥**

भगवान् विष्णु ने बहुत से राक्षसों के मुखकमल चक्र से  
काटे, किसी की छाती को गदा से चूर्ण कर दिया, किसी की गर्दन  
में हल डाल कर उसे खींचा और उसको मार डाला, बहुतों के सिर  
मूसल के प्रहार से चूर कर डाले ॥ ४७ ॥

**केचिच्चैवासिना च्छिन्नास्तथान्ये शरतादिताः ।**

**निषेतुरम्बरात्तर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥ ४८ ॥**

बहुत को तलवार से काट डाला, बहुतों को बाणों से छेद  
डाला । इस प्रकार राक्षसों को धायल कर दिया और वे ग्राण  
रहित हो आकाश से तुरन्त समुद्र के जल में जा गिरे ॥ ४८ ॥

**नारायणोऽपीषुवराशनीभिः**

**विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ।**

**नक्तंचरान्धूतविमुक्तकेशान्**

**यथा शनीभिः सतडिन्महाभ्रः ॥ ४९ ॥**

बिजली सहित महामेघ जिस तरह घञ्चप्रहार से फट जाता है, उसी तरह भगवान् विष्णु भी अपने धनुष से छोड़े हुए पैने तीरों की मार से सिर के बाल खोले हुए राक्षसों को विदीर्ण करने लगे ॥ ४६ ॥

भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रं  
शरैरपध्वस्तविनीतवेषम् ।

विनिःसृतान्त्रं भयलोलनेत्रं  
बलं तदुन्मत्ततरं बभूव ॥ ५० ॥

मरने से बचे हुए राक्षसों की बड़ी दुर्गति हुई। किसी किसी की छाती फट गयी, कितनों ही के हाथों से हथियार छूट पड़े, बहुतों की सूरते ही बिगड़ गयीं। बहुतों की आंते निकल पड़ीं और बहुतों की आँखें मारे घबड़ाहट के उलट गयीं। सारीश यह कि, राक्षसी सेना पागल सी हो गयी ॥ ५० ॥

सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां  
निशाचराणां सह कुञ्जराणाम् ।

रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः  
पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥ ५१ ॥

नृसिंह भगवान् द्वारा मर्दित हाथीरूपी राक्षसों का धोर शब्द तथा हाथियों की चिंघार और वेग एक ही साथ उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥

ते वार्यमाणा हरिवाणजालैः  
स्ववाणजालानि समुत्सृजन्तः ।

## धवन्ति नक्तंचरकालमेघा

वयुप्रणुन्ना इव कालमेघाः ॥ ५२ ॥

जैसे काली मेघघटा पवन से तितर बितर हो उड़ जाती है,  
वैसे ही रात्रसरूपी काले बादल भगवान् विष्णु के बाणों से द्विष्ट  
भिन्न हो, अपने बाणों को छोड़ते हुए, (लङ्घा की ओर)  
भागे ॥ ५२ ॥

चक्रप्रहारैर्विनिकृतशीर्षाः

संचूर्णितांगाश्च गदाप्रहारैः ।

असिप्रहारैर्द्विविधा विभिन्नाः

पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥ ५३ ॥

वे राक्षसेन्द्र भागते हुए रास्ते में पहाड़ की तरह गिरे पड़े  
थे, उनमें से किसी किसी के सिर चक्र से कट गये थे, किसी  
किसी के तलवार से दो दो ढुकड़े हो गये थे ॥ ५३ ॥

विलम्ब मानैर्मणिहारकुण्डलैः

निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।

निपात्यमानैर्दद्वशे निरन्तरं ।

निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥ ५४ ॥

इति सप्तमः सर्गः ॥

मणियों, हारों और कुण्डलों से शोभित बड़े बड़े नील बादलों  
की तरह, वे विशाल राक्षस बड़े बड़े नीलपर्वतों की तरह चूर्ण हो  
कर निरन्तर गिरते हुए देख पड़ते थे ॥ ५४ ॥

उत्तरकाशड का सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## अष्टमः सर्गः

—०—

हन्यमाने बले तस्मिन्पद्मनाभेन पृष्ठतः ।

माल्यवान्सन्निवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः ॥ १ ॥

भगवान् पद्मनाभ जब उस राक्षसी सेना को मारते औ खदेहते ही चले गये, तब माल्यवान् लङ्घापुरी तक पहुँच कर, पुनः वैसे ही लौटा, जैसे समुद्र, अपने तट पर पहुँच कर, पीछे लौटता है ॥ १ ॥

संरक्षनयनः क्रोधाच्चलन्मौलिनिशाचरः ।

पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

माल्यवान् राक्षस क्रोध में भर तथा लाल लाल नेत्र कर और सिर कँपाता हुआ भगवान् पुरुषोत्तम पद्मनाभ से यह बोला ॥ २ ॥

नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् ।

अयुद्धमनसो भीतानस्मान्हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥

हे नारायण ! तुम पुरातन क्षात्रधर्म को नहीं जानते । क्योंकि युद्ध से लौटे हुए और डरे हुए हम लोगों को तुम क्षुद्रजन की तरह मार रहे हो ॥ ३ ॥

पराङ्मुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर ।

स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥

हे सुरेश्वर ! युद्ध से मुख मोड़े हुए को जो मारता है, वह पाप करता है । उसे पुण्यात्मा लोगों से प्राप्त स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥

युद्धश्रद्धाऽथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर ।

अहं स्थितोस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत्तत् ॥ ५ ॥

हे शङ्ख-चक्र-गदा-धारी ! यदि तुम्हारी इच्छा लड़ने ही की है, तो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ । मुझ पर तुम अपना बल आज़मा लो ॥ ५ ॥

माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम् ।

उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥

माल्यवान् पर्वत को तरह माल्यवान् राक्षस को अटल खड़ा देख, उस राक्षसेन्द्र से भगवान् विष्णु ने कहा ॥ ६ ॥

युष्मतो भयभीतानां देवानां वै मयाऽभयम् ।

राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥

तुम लोगों के भय से ब्रह्म देवताओं को, मैंने राक्षसनाशरूप अभयदान दिया है, सो मैं इस समय राक्षसों का विनाश कर, उस अपनी प्रतिष्ठा को पूर्ण कर रहा हूँ ॥ ७ ॥

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ।

सोहं वो निश्चन्द्र्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥

क्योंकि मुझे अपने प्राणों को बाज़ी लगा कर भी, देवताओं का प्रियकार्य करना स्वीकार है । अतः मैं तुम लोगों को अवश्य मारूँगा । भले ही तुम रसातल ही मैं ज्यों न चले जाओ । ( वहाँ भी मैं तुम्हारा पीछा करूँगा ॥ ८ ॥ )

देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरहलोचनन् ।

शक्त्या विभेद संकुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥

लाल कमल के समान नेत्र वाले, देवताश्रों के भी देवता  
भगवान् विष्णु जी इस प्रकार कह ही रहे थे कि, राज्ञसशेष  
माल्यवान् ने क्रोध में भर उनकी छाती में एक शक्ति मारी ॥ ६ ॥

**माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।**

**हरेरसिवभ्राज मेघस्थेव शतहदा ॥ १० ॥**

माल्यवान के हाथ से छूटी हुई वह शक्ति धंटियों का शब्द  
करती हुई, भगवान् विष्णु की छातो में लग ऐसी शोभित हुई, जैसे  
श्याममेघ में बिजुली शोभित होती है ॥ १० ॥

**ततस्तामेव चोत्कृष्ण शक्तिं 'शक्तिरधरप्रियः ।**

**माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥ ११ ॥**

सुब्रह्मण्यप्रिय कमलनयन भगवान् ने तत्काल ही उस  
शक्ति को अपनी छाती से निकाल कर उसीसे माल्यवान को  
मारा ॥ ११ ॥

**स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गेविन्दकरनिःसृता ।**

**काङ्गन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाज्ञनाचलम् ॥ १२ ॥**

भगवान् गेविन्द के हाथ से छूटी हुई वह शक्ति स्वामिकार्तिक  
के समान राज्ञस का संहार करने के लिये ऐसी लपकी, जैसे  
कज्जलगिरि पर उल्का झपट कर आयी हो ॥ १२ ॥

**सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभारावभासिते ।**

**अपतद्राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥ १३ ॥**

वह शकि माल्यवान की हार विभूषित चौड़ी छाती में वैसे ही जा कर लगी ; जैसे इन्द्र का चलाया बज्जे पर्वत के लगता है ॥ १३ ॥

**तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद्विपुलं तमः ।**

**माल्यवान्पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥**

उस शकि के लगने से माल्यवान का कबच टूट गया और वह मूर्छित हो गया । फुछ काल पीछे वह सचेत हुआ । वह किर पर्वत की तरह निश्चल हो सामने खड़ा हो गया ॥ १४ ॥

**ततः \*कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चित्म् ।**

**प्रगृह्णाभ्यहनहेवं स्तनयोरारन्तरे दृढम् ॥ १५ ॥**

और उसने बहुत काँड़ोदार लेहे का एक शूल बड़े ज़ोर से भगवान् विष्णु की छाती में मारा ॥ १५ ॥

**तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ।**

**ताढयित्वा धुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥ १६ ॥**

फिर ऊपर से उस रणप्रिय निशाचर ने भगवान् की छाती में एक घूँसा भी मारा और घूँसा मार कर वह चार हाथ पीछे हट गया ॥ १६ ॥

**ततोऽम्बरे महाञ्छब्दः साधुः साधिवति चोत्थितः ।**

**आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताढयत् ॥ १७ ॥**

उसका ऐसा साहस देख कर आकाश में “वाह वाह” का बड़ा शब्द हुआ अर्थात् सुन पड़ा । माल्यवान ने भगवान् विष्णु पर प्रहार कर गरुड़ जी पर भी प्रहार किया ॥ १७ ॥

\* पाठान्तरे—“कार्णायसं” । † पाठान्तरे—“वृत्तम्” ।

वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ।  
व्यपोहद्वलवान्वायुः मुष्कपर्णचयं यथा ॥१८॥

तब बलवान गरुड़ जी ने क्रोध में भर, उस राक्षस को वहाँ से अपने पंखों के पवन के झोके से ऐसा उड़ाया; जैसे पवन सूखे पत्तों के हेर को सहज से उड़ा देता है ॥ १८ ॥

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ।

सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्घामभिमुखो ययौ ॥ १९ ॥

गरुड जी के पंखों के पवन से अपने बड़े भाई माल्यवान को भगाया हुआ देख, सुमाली अपनी सेना को साथ ले लङ्घा को भाग गया ॥ १९ ॥

पक्षवातवलोद्भूतो माल्यवानपि राक्षसः ।

स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्घा हिया वृतः ॥ २० ॥

गरुड जी के पंखों के पवन से उड़ाया हुआ राक्षस माल्यवान भी लज्जित हो, अपनी सेना को साथ ले, लङ्घा में लौट कर चला गया ॥ २० ॥

एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण ।

बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥ २१ ॥

हे राम ! इस प्रकार कमलनयन भगवान् विष्णु ने युद्ध में उन राक्षसों का अनेक बार मारा और उनके मुखियों का नाश किया ॥ २१ ॥

अशकुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोदुँ बलार्दिताः\* ।

त्यक्त्वा लङ्घां गता वस्तुं पातालं सहपत्रयः ॥ २२ ॥

\* पाठान्तरे—“भयार्दिताः” ।

जब वे राज्ञस भगवान् विष्णु का सामना न कर सके और सताये गये, तब वे अपने बाल बच्चों को साथ ले और लड़ा का निवास त्याग, पाताल में जा वसे ॥ २२ ॥

**सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम् ।**

**स्थिताः प्रख्यात वीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥ २३ ॥**

हे रघुश्रेष्ठ ! समस्त प्रसिद्ध पराक्रमी राज्ञस, सुमालो को राजा बना, वहीं सालकटंकटा के वंश में रहने लगे । अथवा विख्यात बलवीर्य वाले राज्ञस, सालकटंकटा के वंश वाले सुमाली के आश्रय में समय विताने लगे ॥ २३ ॥

**ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।**

**सुमाली माल्यवान्माली ये च तेषां पुरः सराः ।**

**सर्व एते महाभागा रावणाद्वलवत्तराः ॥ २४ ॥**

हे राम ! तुमने पुलस्त्य वंश वाले जिन समस्त राज्ञसों का संहार किया है, उन सब से महाभाग सुमाली, माल्यवान और माली प्रधान थे । अधिक ज्ञान कहैं—ये सब रावण से भी अधिक बलवान थे ॥ २४ ॥

**न चान्यो राक्षसान्हन्ता सुरारीन्देवकण्टकान् ।**

**ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २५ ॥**

शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु को छोड़ और कोई भी देवताओं को सताने वाले इन सुरशत्रु राज्ञसों का नाश नहीं कर सकता था ॥ २५ ॥

**भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः ।**

**राक्षसान्हन्तुमुत्पन्नो ह्यजयः प्रभुरव्ययः ॥ २६ ॥**

से। तुम ही चार भुजाओं वाले, सनातन, अजेय, अविनाशी,  
और साक्षत् नारायण हो। राक्षसों का नाश करने के लिये तुमने  
अवतार लिया है ॥ २६ ॥

\*नष्टधर्मव्यवस्थानां कालेकाले प्रजाकरः ।

उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः ॥ २७ ॥

जब कभी धर्म की अच्यवस्था होती है, तब आप उसकी सुच्यस्था  
करने तथा प्रजा की रक्षा के लिये तथा डाकुओं के मारने के लिये  
शरणागतवत्सलतावश जन्म लेते हैं ॥ २७ ॥

एषा मया तव नराधिप राक्षसाना-

मुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत् ।

भूयो निवोध रघुसत्तम रावणस्य

जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम् ॥२८॥

हे नरनाथ ! आज मैंने तुमको समस्त राक्षसों की उत्पत्ति की  
कथा ज्यों की त्यों सुनायो। हे रघुश्रेष्ठ ! अब मैं तुमको रावण  
और उसके पुत्रों का जन्मवृत्तान्त परं अतुल प्रभाव का समस्त  
वर्णन सुनाता हूँ ॥ २८ ॥

चिरात्सुमाली व्यचरद्रसातलं

सराक्षसो विष्णु भयार्दितस्तदा ।

पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली

ततस्तु लङ्घामवसद्धनेश्वरः ॥ २९ ॥

इति अष्टमः सर्गः ॥

जब श्रीविष्णु भगवान् के भय से पीड़ित हो, पुत्र पौत्रों व परिवार सहित सुमाली बहुत दिनों तक रसातल में विच्छरता रहा, तब कुवेर जी लङ्घा में जा कर रहने लगे ॥ २६ ॥

उत्तरकाण्ड का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—:\*:—

### नवमः सर्गः

—:o:—

कस्य चित्कथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ।  
रासातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ १ ॥

कुछ दिनों बाद वह सुमाली नामक राक्षस रसातल से निकल कर मनुष्य लोक में सर्वत्र घूमने लगा ॥ १ ॥

नीलजीमूतसङ्काशस्तसकाञ्चनकुण्डलः ।  
कन्यां दुहितरं गृह्ण विना पद्मिव श्रियम् ॥ २ ॥

नीले बादल की तरह उसके शरीर का श्यामवर्ण था ; वह विशुद्ध सुवर्ण के कुण्डल कानों में पहिने हुए था और कमल को त्यागे हुए लक्ष्मी के समान अपनी कुँवारी पुत्री को अपने साथ लिये हुए था ॥ २ ॥

राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन्वै महीतले ।  
तदा पश्यत्स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार पृथिवी पर घूमते घूमते उस राक्षसराज सुमाली ने पुष्पकविमान पर सवार कुवेर जी को देखा ॥ ३ ॥

गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यतनयं विभुम् ।  
तं हृष्टाऽमरसङ्काशं गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ ४ ॥

कुवेर जी अपने पिता और पुलस्त्य जी के पुत्र विश्रवा मुनि के दर्शन करने को जा रहे थे । देवता के समान और अग्नि की तरह उन्हें जाते देख ॥ ५ ॥

रसातलं प्रविष्टः सन्मर्त्यलोकात्सविस्मयः ।  
इत्येवं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ॥ ५ ॥

सुमाली विस्मित हो मर्त्यलोक ब्राह्म रसातल में चला गया । वह महामति राक्षस वहाँ जा कर अपने मन में सोचने लगा ॥ ५ ॥

किंकृतं श्रेय इत्येवं वर्धेयमहि कथं वयम् ।  
नीलजीमूत सङ्कास्तसकाश्चनकुण्डलः ॥ ६ ॥  
राक्षसेन्द्रः स तु तदा चिन्तयत्सु महामतिः ।  
अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ७ ॥

हम कौनसा ऐसा श्रेष्ठ करें, जिससे हम लोगों को बढ़ती हो । नीले बादल के समान और विशुद्ध सुवर्ण के कुण्डल पहिने हुए महामति राक्षसराज इस प्रकार सोचता हुआ अपनी कैकसी नामक बेटी से कहने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते ।  
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः परिगृह्यसे ॥ ८ ॥

हे बेटी ! अब तुम्हारे विवाह का समय हो चुका है । तुम्हारी यौवनावस्था निकली जा रही है । मैं कहीं नाहीं न कर दूँ, इस  
वा० रा० उ०—६

भय से कोई विवाहार्थी तुमको माँगने के लिये मेरे पास नहीं  
आता ॥ ८ ॥

त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः ।

त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ ९ ॥

हे बेटी ! तुम मात्रात् लक्ष्मी को नरह समस्त गुणों से भूषित  
हो ; अतः हम सब धर्मबुद्धि से बंध रहे हैं और तुम्हारे योग्य वर  
की खोज में हैं ॥ ९ ॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षणाम् ।

न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥ १० ॥

मानी लोगों के लिये कन्या बड़े दुःख का कारण होती है ।  
क्योंकि पहिले से कोई नहीं जान सकता कि, कन्या का विवाह  
कैसे वर से होगा ॥ १० ॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।

कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ ११ ॥

माता के कुल को, पिता के कुल को, लक्ष्मी के कुल को—इन  
तीन कुलों को कन्या सदा संशय में डाले रहती है ॥ ११ ॥

सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्धवम् ।

भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ १२ ॥

अतः अब तू ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा  
मुनि को स्वयं जा कर वर ले ॥ १२ ॥

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रिः न संशयः ।

तेजसा भास्करसमो यादृशोऽयं धनेश्वरः ॥ १३ ॥

हे बेटो ! विश्रवामुनि को पति बनाने से जैसे कुचेर हैं, वैसे ही सूर्य के समान तेजस्वी तेरे भी पुत्र होंगे ॥ १३ ॥

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।

\*तत्र गत्वा च सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ॥ १४ ॥

वह कन्या अपने पिता के इन वचनों को सुन और पिता का गौरव मान, वह बहाँ जा कर खड़ी हो गया, जहाँ विश्रवा मुनि तपस्या कर रहे थे ॥ १४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ।

अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥ १५ ॥

हे राम ! उस समय पुलस्त्यपुत्र ब्राह्मणश्चेष्ट विश्रवामुनि चतुर्थ अग्नि की तरह सायङ्काल को अग्निहोत्र कर रहे थे ॥ १५ ॥

अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणां पितृ गौरवात् ।

उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥ १६ ॥

कैकसी उस दारुण प्रदोषकाल का कुकु विचार न कर, पिता के गौरव के मारे, मुनि के सामने जा खड़ी हुई और अपने पैरों की ओर देखती हुई, ॥ १६ ॥

विलिखन्ती मुहुर्भूमिमंगुष्टाग्रेण भामिनी ।

स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिधाननाम् ॥ १७ ॥

वह भामिनी बारंबार अपने पैर के अंगूठे के अग्रभाग से ज़मीन कुरेदने लगी । उस समय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली परम सुन्दरी को देख ॥ १७ ॥

\* पाठान्तरे—“ तत्रोपागम्य सा तस्थौ ” ।

अब्रवीत्परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा ।

भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ।

किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १८ ॥

परम-उदार-स्वभावं वाले और अपने तेज से हीतिमान् विश्ववा  
भुनि उस कन्या से बोले कि, हे भद्रे ! तुम किसकी बेटी हो और  
वहाँ किस लिये आयी हो ॥ १८ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।

आत्मप्रभावेन मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥ १९ ॥

जब मुनि ने यह पूँछा, तब वह लड़की हाथ जोड़ कर बोली—  
हे महाराज ! आप तो अपने तपःप्रभाव ही से मेरे मन की बात  
जान सकते हैं ॥ १९ ॥

किन्तु मां विद्धि ब्रह्मर्थे शासनात्पितुरागताम् ।

कैकसी नाम नाम्नाऽहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ २० ॥

किन्तु हे महर्षे ! ( इतना मैं बतलाये देतो हूँ कि, ) मैं अपने  
पिता की आज्ञा से यहाँ आयो हूँ और मेरा नाम कैकसो है । शेष  
वृत्तान्त आप स्वयं जान सकते हैं ( अथवा मेरे यहाँ आने का जो  
अभिप्राय है, उसे मैं अपने मुँह से न कहूँगी । उसे आप स्वयं जान  
लें ) ॥ २० ॥

स तु गत्वा मुनिध्यानं वाक्यमेतदुवाच् ह ।

विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥ २१ ॥

तब मुनि विश्ववा ने व्यान किया और उसके आने का प्रयोजन  
जान उससे कहा—हे भद्रे ! मैंने तेरे मन की बात जान ली ॥ २१ ॥

सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गामिनि ।

दारुणायां तु बेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता ॥ २२ ॥

हे मत्तगजेन्द्रगामिनी ! मुझसे पुत्रात्पादन कराने की तेरी अभिलाषा है, किन्तु तू दारुण नमय ( कुसमय ) में मेरे पास आयी है ॥ २२ ॥

शृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादशाङ्गनयिष्यसि ।

दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ॥ २३ ॥

अतः हे भद्रे ! अब तू यह सुन कि, तू किस प्रकार के पुत्र जनेगो । तेरे पुत्र बड़े क्रूरकर्म करने वाले होंगे, उन भयङ्कर राज्ञसों की सूरत भी भयानक होगी और उनकी प्रीति भी क्रूरकर्म करने वाले बन्धुवान्धवों ही से होगी ॥ २३ ॥

प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान्क्रूरकर्मणः ।

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ २४ ॥

हे सुश्रोणि ! तू क्रूरकर्म करने वाले राज्ञसों को जनेगो । विश्रवा मुनि के ये वचन सुन, कैकसी उनको प्रणाम कर बोली ॥ २४ ॥

भगवन्नीदशान्पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः ।

नेच्छामि सुदुराचारान्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

हे भगवन् ! आप जैसे ब्रह्मवादी द्वारा मैं ऐसे दुराचारी पुत्रों को नहीं चाहतो । अतः आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २५ ॥

कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।

उवाच कैकसी भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ॥ २६ ॥

मुनि थ्रेषु विश्वा जी उस कन्या के ये वचन सुन कर, कैकसी से फिर वैसे ही कहने लगे ; जैसे चन्द्रमा रोहिणी से कहता है ॥ २६ ॥

पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने ।

मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च\* न संशयः ॥ २७ ॥

हे शुभानने ! अच्छा तेरा पिछला पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।

जनयामास वीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥ २८ ॥

हे राम ! विश्वामुनि ने उस कन्या से इस प्रकार कहा । तदनन्तर कुछ काल बाद उसने बड़ा भयझुक और वीभत्स राज्ञस-रूपी पुत्र जना ॥ २८ ॥

दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।

ताप्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥ २९ ॥

उसके सिर दस थे, और दृति बड़े बड़े थे । उसके शरीर का रंग काला और आकार पहाड़ के ममान था । उसके ओष्ठ लाल थे, उसके बीस भुजाएँ थीं । उसका मुँह बड़ा और सिर के बाल चमकीले थे ॥ २९ ॥

तस्मिञ्जाते ततस्तस्मिन् सज्जालकबलाः शिवाः ।

क्रच्यादाश्वापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ ३० ॥

उसके जन्मते ही गीदङ्गियाँ ज्वाला उगलने लगीं, मांसाहारी जीवजन्तु बाई और को प्रदक्षिणा करते हुए मँडराने लगे ॥ ३० ॥

\* पाठान्तरे—“भविष्यति” ।

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिस्वनाः ।

प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काशापतन्भुवि ॥ ३१ ॥

देवताओं ने रक्त की वर्षा की । मेघ बड़े ज़ोर से गजें, सूर्य का प्रकाश मंद पड़ गया । आकाश से बड़ी बड़ी उल्काएँ पृथिवी पर गिरने लगीं ॥ ३१ ॥

चक्रम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः ।

अक्षेभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३२ ॥

पृथिवी हिलने लगी, दारुण हृषा चलने लगी, अचल नदी-पति समुद्र भी खलंबला गया ॥ ३२ ॥

अथ नामाकरोत्तस्य पितामहसमः पिता ।

दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३३ ॥

तदनन्तरं पितामह ब्रह्मा जी के समान उसके पिता ने उसका नामकरण किया । ( नामकरण करते समय उसके पिता ने कहा ) यह लड़का दस सिर वाला उत्पन्न हुआ है, अतः इसका नाम दशग्रीव रखना चाहिये ॥ ३३ ॥

तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।

प्रमाणाद्यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ ३४ ॥

तदनन्तर कैकसी के गर्भ से कुम्भकर्ण का जन्म हुआ । उसके समान लंबा और चौड़ा दूसरा कोई प्राणी न था ॥ ३४ ॥

ततः शूर्पणखा नाम संजडे विकृतानना ।

विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर बुरी सूरत की सूपनखा उत्पन्न हुई। सब के पोछे कैकसी के सब से त्रोटे पुत्र धर्मात्मा विभीषण उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

तस्मिञ्चाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपातह ।

नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा ।

वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत्तदा ॥ ३६ ॥

धर्मात्मा विभीषण जिस समय उत्पन्न हुए, उस समय आकाश से पुष्पों को वर्षा हुई और देवताओं ने दुन्दभो बजायी और आकाश में बारंबार धन्य धन्य का गच्छ लुन पड़ा ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये वृथाते महौजसौ ।

कुम्भकर्णः दशग्रीवौ लोकोद्वेग करौ तदा ॥ ३७ ॥

अब लोकों को विकल करने वाले रावण और कुम्भकर्ण उस वन में धीरे धीरे बढ़ने लगे ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन्धर्मवत्सलान् ।

त्रैलोक्यं भक्षयन्नित्यासन्तुष्टो विच्चार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकर्ण प्रमत्त हो, धर्मात्मा महर्षियों को पकड़ पकड़ कर खा जाता था और जहाँ चाहता वहाँ घूमा करता था; किन्तु उसका ऐट कभी नहीं भरता था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मे व्यवस्थितः ।

स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥

विभीषण सदा धर्म पर आरूढ़, स्वाध्याय और नियताहार में तत्पर रहते तथा जितेन्द्रिय हो कर समय बिताया करते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।

आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ ४० ॥

कुछ दिनों बाद एक दिन पुष्पकविमान में बैठ कर वैश्रवण कुवेर जी अपने पिता विश्ववा जी के दर्शन करने आये थे ॥ ४० ॥

तं हृष्टा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।

आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाचह ॥ ४१ ॥

कुवेर जी को अपने तेज से प्रकाशित देख, कैकसो ने अपने पुत्र दशग्रीव से कहा ॥ ४१ ॥

पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसावृतम् ।

भ्रातुभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥

हे पुत्र ! अपने भाई वैश्रवण कुवेर का देखा, वह तेज से कैसा प्रज्वलित है । तुम भी एक उसके भाई ही हो, किन्तु देखा तुममें और उसमें कितना अन्तर है ॥ ४२ ॥

दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।

यथा त्वमपि मे पुत्र भव वैश्रवणोपमः ॥ ४३ ॥

अतः हे दशग्रीव ! तुम ऐसा यज्ञ करो जिससे तुम भी वैश्रवण के समान हो जाओ ॥ ४३ ॥

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।

अर्घ्यमतुलं लेखे प्रतिज्ञां चाकरोत्तदा ॥ ४४ ॥

प्रतापी दशग्रीव को माता के ये वचन सुन, भाई के ऐश्वर्य से बड़ा हुआ और उसने उसी समय यह प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातुरुलयोऽधिकोऽपि वा ।

भविष्याम्योजसा चैव सन्तापंत्यज हृदगतम् ॥४५॥

हे माता ! मैं तुमसे सच्च सच्च कहता हूँ कि, मैं भी अपने पराक्रम से वैश्वण के समान श्रथवा उससे भी श्रधिक हो जाऊँगा । अतः तुम अपने मन का सन्ताप दूर कर दो ॥ ४५ ॥

ततः क्रोधेन ते नैव दशग्रीवः सहानुजः ।

चिकीषुर्दुष्करं कर्म तपसे धृतमानसः ॥ ४६ ॥

अब उसी क्रोध के कारण मन में तप करने की ठान, दशग्रीव अपने होटे भाइयों को साथ ले कठिन तप करने के लिये उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥

प्राप्स्यामि तपसा काम-

मिति कृत्वाऽध्यवस्थ च ।

आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थ

गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥ ४७ ॥

उसने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि, मैं तप द्वारा अपने अभोष को प्राप्त करूँगा । अतः सिद्धिप्राप्ति के लिये वह गोकर्ण नामक शुभ आश्रम में आया ॥ ४७ ॥

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा

तपश्चारातुलमुग्रविक्रमः ।

अतोषयच्चापि पितामहं विभुं

ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥ ४८ ॥

इति नवमः सर्गः ॥

दशग्रीव ने भाइयों सहित बड़ा उपर्युक्त किया और अपने तप के बल ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया, जिससे ब्रह्मा जी ने उसे जय देने वाले अभीष्ट वरदान दिये ॥ ४८ ॥

उत्तरकाण्ड का नवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



### दशमः सर्गः

— : ० : —

अथाब्रवीन्मुनिं रामः कर्थं ते भ्रातरो वने ।

कीदृशं तु तदा ब्रह्मस्तपस्तेपुर्महाबलाः ॥ १ ॥

इतना सुन श्रीरामचन्द्र जी अगस्त्य जी से बोले—हे ब्रह्मन् !  
उन तीनों महाबली भाइयों ने कैसी तपस्या की, सो कहिये ॥ १ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीत्तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ।

तांस्तान्धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥

यह सुन अगस्त्य जी प्रसन्न हो कर, श्रीरामचन्द्र जी से बोले कि, उन तीनों भाइयों ने वहाँ ( गोकर्णाश्रम में ) जा तप के समस्त विधान किये ॥ २ ॥

कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ।

तताप ग्रीष्मकाले तु पञ्चाश्रीन्परितः स्थितः ॥ ३ ॥

कुम्भकर्ण तपःधर्म के नियमानुसार ( अथवा धर्ममार्ग पर स्थित हो, ) गर्भी में अपने चारों ओर आग जला कर, पञ्चाश्री तापता था ॥ ३ ॥

( नोट—चारों ओर चार आग और पाँचवाँ सूर्य पञ्चाश्री है । )

मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत ।

नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥ ४ ॥

वर्षाक्रम्भूतु में वीरासन से बैठ कर जल की वृष्टि को खेलता  
और शीतकाल में जल में बैठता था ॥ ४ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यातिचक्रमुः ।

धर्मे प्रयत्नानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥

इस प्रकार तप करते करते उसने इस हज़ार वर्ष बिता डाले ।  
इतने दिनों तक वह सदैव तपःधर्म के नियमानुसार तथा धर्ममार्ग  
पर आरुढ़ रहा और केवल तप ही करता रहा ॥ ५ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।

पञ्च वर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥

धर्मात्मा विभीषण नित्य धर्म में तत्पर और पवित्र हो पांच  
हज़ार वर्ष तक एक पैर से ज़मीन पर खड़े रह कर, तप करते  
रहे ॥ ६ ॥

समाप्ते नियमे तस्य ननुतुश्चाप्सरोगणाः ।

पपात पुष्पर्वष च \*तुष्टुबुश्चापि देवताः ॥ ७ ॥

जब विभीषण जी का अनुष्ठान पूरा हुआ, तब अप्सरायें नाचने  
लगीं, फूलों की वर्षा हुई और देखता स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

पञ्च वर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्वर्तत ।

तस्थौ चोर्ध्वं शिरोबाहुः स्वाध्याये धृतमानसः ॥८॥

\* पाठान्तरे—“शुभिताश्चापि” ।

फिर विभीषण पाँच हज़ार वर्ष तक ऊपर को दोनों भुजा उठाये और ऊपर को सिर कर, सूर्य नारायण को देखते रहे और वेदपाठ करते रहे ॥ ८ ॥

एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।

दश वर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥

इस प्रकार तप करते हुए विभीषण जी के दस हज़ार वर्ष वैसे ही बीते, जैसे स्वर्गनिवासी को नन्दनवन में बीतते हैं ॥ ९ ॥

दश वर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।

पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चायौ जुहाव सः ॥ १० ॥

दशग्रीव ने भी निराहार रह कर, दस हज़ार वर्षों तक तप किया । जब तप करते उसे एक हज़ार वर्ष पूरे होते, तब वह अपना एक सिर काट कर आग में होम देता था ॥ १० ॥

एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।

शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार तप करते करते उसने नौ हज़ार वर्ष विता दिये और अपने नौ सिर भी आग में होम दिये ॥ ११ ॥

अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।

छेत्रुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥

जब दसवाँ हज़ार पूरा हुआ ; तब उसने अपना दसवाँ सिर भी काट कर अग्नि में होमना चाहा, तब उसके सामने ब्रह्मा जी प्रकट हुए ॥ १२ ॥

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरूपस्थितः ।  
तव तावदशग्रीव प्रीतोस्मीत्यभ्य भाषत ॥ १३ ॥

ब्रह्मा जी प्रसन्न हो कर, सब देवताओं को साथ लिये उसके पास जा बोले—हे दशग्रीव ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ १३ ॥

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेभिकाङ्गितः ।  
कं ते कामं करोम्यन्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ १४ ॥

हे धर्मज्ञ ! तुझे जो वर माँगना हो शीघ्र माँग । हम तेरे लिये क्या करें, जिससे तेरा परिश्रम व्यर्थ न जाय ॥ १४ ॥

अथाब्रवोदशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।  
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥

यह सुन रावण हर्षित हुआ और सिर नवा एवं प्रणाम कर हर्ष से गद्गद हो बाला ॥ १५ ॥

भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्यम् ।  
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! प्राणियों को सदा मृत्यु का भय जितना सताया करता है, उतना कोई भय उन्हें नहीं सताता, क्योंकि मृत्यु से बढ़ कर प्राणियों का और दूसरा शत्रु नहीं है । अतः मृत्यु भय से बचने के लिये मुझे आप वरदान में अमरत्व दें ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।  
नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥ १७ ॥

यह सुन ब्रह्मा जी बोले कि, ऐसा नहीं हो सकता अर्थात् पूरा पूरा अमरत्व तुम्हें नहीं मिल सकता । इसलिये तू और कोई वरदान माँग ॥ १७ ॥

एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।

दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ॥ १८ ॥

हे राम ! लोककर्त्ता ब्रह्मा जी ने जब यह कहा ; तब रावण उनके सामने खड़ा हो और हाथ जोड़ कर बोला ॥ १८ ॥

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।

अवध्योहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ १९ ॥

हे प्रजाध्यक्ष ! गरुड़, सर्प, यज्ञ, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओं से सदा के लिये मुझे अवध्य कर दीजिये ॥ १९ ॥

न हि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमर पूजित ।

तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ २० ॥

हे देवपूजित ! इनके अतिरिक्त अन्य प्राणियों की मुझे चिन्ता या उनसे भय नहीं है । मनुष्यादिकों को तो मैं तृणवत् समझता हूँ ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।

उवाच वचनं देवः सह देवैः पितामहः ॥ २१ ॥

जब राक्षस दशग्रीव ने यह कहा, तब देवताओं सहित खड़े हुए पितामह ब्रह्मा जी बोले ॥ २१ ॥

भविष्यत्येवमेतत्ते वचो राक्षसपुज्ज्ञवः ।

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २२ ॥

हे राज्ञसश्रेष्ठ ! अच्छा ऐसा हो होगा । हे राम ! ब्रह्मा जी उस दशग्रीव से यह कह कर ॥ २२ ॥

शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम ।

हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयाऽनघ ॥ २३ ॥

उससे फिर बोले - हे अनघ ! मैं तेरे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः मैं अपनो और से भी तुझे वर देता हूँ कि, जिन अपने सिरों को काट रह, तूने आग में होम दिया है ॥ २३ ॥

पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ।

वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥ २४ ॥

हे राज्ञस ! वे सिर फिर तेरे पूर्ववत् हो जायगे । हे सौम्य ! एक और भी दुर्लभ वर मैं तुझको देता हूँ ॥ २४ ॥

छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम् ।

एवं पितामहोक्तं च दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ २५ ॥

(वह यह है कि) जिस समय तू जैसा रूप धारण करना चाहेगा, वैसा ही रूप तंरा हो जायगा । ब्रह्मा जी के यह कहते ही राज्ञस दशग्रीव कं ॥ २५ ॥

अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युत्थितानि वै ।

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २६ ॥

आग में होमे हुए सिर पूर्ववत् निकल आये । हे राम ! ब्रह्मा जी इस प्रकार दशग्रीव से कह कर ॥ २६ ॥

विभीषणमथेवाच वाक्यं लोकपितामहः ।

विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ॥ २७ ॥

परितुष्टोस्मि धर्मात्मन्वरं वरय सुव्रत ।

विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ॥ २८ ॥

ब्रह्मा जी विभीषण से बोले—हे वत्स विभीषण ! मैं तुम्हारी धर्मबुद्धि से प्रसन्न हूँ। अतः हे धर्मात्मन् ! हे सुव्रत ! तुम वर मांगो। तब धर्मात्मा विभीषण ने हाथ जोड़ कर कहा ॥ २७ ॥ २८ ॥

वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ।

भगवन्कृतकृत्योहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ॥ २९ ॥

हे भगवन् ! जब सब लोकों के गुरु ब्रह्मा जी मुझ पर स्वयं सन्तुष्ट हुए हैं, तब मैं कृतार्थ हो गया और वैसे ही सर्वगुणों से युक्त हो गया जैसे चन्द्रमा किरणों से युक्त होता है ॥ २६ ॥

प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ।

परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥ ३० ॥

हे सुव्रत ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर ही देना चाहते हैं, तो आप मुझे यह वर दें कि, दारुण विपत्ति पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म ही में बनी रहे ॥ ३० ॥

अशिक्षितं च ब्राह्मस्तं भगवन्प्रतिभातु मे ।

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ॥ ३१ ॥

सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तु धर्मं च पालये ।

एष मे परमोदार वरः परमको मतः ॥ ३२ ॥

और हे भगवन् ! विना किसी के सिखलाये ही मुझे ब्रह्माद्य का प्रयोग करना आ जाय और जिस आश्रम में मैं रहूँ, उस आश्रमोचित धर्मों के पालन में मेरी निष्ठा बढ़े अथवा मैं उनका

यथाविधि पालन करूँ । हे परमोदार ! अर्थात् परमदाता ! यही  
मेरा सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

न हि धर्माभिरक्तानां लोके किञ्चन दुर्लभम् ।

पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ॥ ३३ ॥

क्योंकि जिन का धर्म में अनुराग है या जो धर्मनिष्ठ हैं उनके लिये  
कुछ भी दुर्लभ नहीं है । यह सुन ब्रह्मा जी प्रसन्न हो फिर विभीषण  
से बोले ॥ ३३ ॥

धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद्विष्यति ।

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥ ३४ ॥

हे वत्स ! धर्मिष्ठ तो तुम हो ही ! इसके अतिरिक्त तुम जैसा  
होना चाहते हो, वैसे हो हो जावोगे । हे शत्रुनाशी ! राक्षसकुल  
में उत्पन्न हो कर भी ॥ ३४ ॥

नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।

इत्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमुपस्थितम् ॥ ३५ ॥

तुम्हारी अधर्म में बुद्धि नहीं है । अतः मैं तुमको अमर होने का  
भी वर देता हूँ । विभीषण से इस प्रकार कह, ब्रह्मा जी कुम्भकर्ण  
को वरदान देने को तैयार हुए ॥ ३५ ॥

प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।

न तावत्कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ॥ ३६ ॥

उस समय उनके साथ जो देवता थे, वे हाथ जोड़ कर उनसे  
बोले—हे ब्रह्मन् ! आप कुम्भकर्ण को वर न दें ॥ ३६ ॥

जानीषे हि यथालोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ।

नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ॥ ३७ ॥

क्योंकि आप जानते ही हैं कि, वर पाये विना ही यह दुष्ट तीनों  
लोकों को सताया करता है। नन्दनवन में सात अप्सराओं और  
इन्द्र के दस ठहलुओं का ॥ ३७ ॥

अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा ।

अलब्धवरपूर्णेन यत्कृतं राक्षसेन तु ॥ ३८ ॥

इसने खा डाला। इसके छाये हुए ऋषियों और मनुष्यों की  
तो गिनती हो ही नहीं सकती। विना वर पाये ही जब इसकी  
ऐसी करतूतें देखने में आती हैं ॥ ३८ ॥

यद्येष वरलब्धः स्याद्भयेदुवनत्रयम् ।

वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ॥ ३९ ॥

तब वर पाने पर तो यह तीनों भुवनों को खा डालेगा। अतः  
हे अमितप्रभ ! वर के बहाने इसे अज्ञान प्रदान कीजिये ॥ ३९ ॥

लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद्वेदस्य च सम्मतिः ।

एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माऽचिन्तयत्पद्मसम्भवः ॥ ४० ॥

इससे लोकों का कल्याण होगा और इसका भी मान बना  
रहैगा। जब देवताओं ने इस प्रकार कहा, तब पद्मसम्भव ब्रह्मा  
जी ने सरस्वती देवी का स्मरण किया ॥ ४० ॥

चिन्तिता चोपतत्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती ।

प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ॥ ४१ ॥

स्मरण करते ही सरस्वती जी ब्रह्मा जी के पास आ उपस्थित हुई और पास खड़ी हो हाथ जोड़े हुए ब्रह्मा जी से बोलीं ॥ ४१ ॥

इयमस्म्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम् ।

प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥४२॥

हे देव ! मैं यहाँ आ गयी हूँ, कहिये क्या आज्ञा है ? सरस्वती को उपस्थित देख ब्रह्मा जी ने उनसे कहा ॥ ४२ ॥

वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेष्विता\* ।

तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ ४३ ॥

हे भारती ! देवताओं की कामना के अनुसार, तुम इस राक्षस की जिह्वा पर बैठ कर इससे तदनुसार कहलाओ । “जो आज्ञा” कह कर, देवी सरस्वती कुम्भकर्ण के मुख में पैठ गयीं । तब ब्रह्मा जी ने कुम्भकर्ण से कहा ॥ ४३ ॥

कुम्भकर्ण महावाहो वरं वरय यो मतः ।

कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

हे महावलवान् कुम्भकर्ण ! तुम जो वर चाहते हो सो माँग लो । ब्रह्मा जी का यह वचन सुन कुम्भकर्ण बोला ॥ ४४ ॥

स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेष्वितम् ।

एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद्ब्रह्मा सुरैस्समम् ॥४५॥

हे देवदेव ! मैं यह चाहता हूँ कि, मैं अनेक वर्षों तक सोया करूँ । ब्रह्मा जी ने कहा “तथास्तु” ( अर्थात् ऐसा ही होगा ) और वे देवताओं को साथ ले चल दिये ॥ ४५ ॥

\* पाठान्तरे—“वाणित्वं राक्षसेन्द्रस्ये भव या देवतेष्विता” ।

देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः ।

ब्राह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ॥४६॥

सरस्वती देवो भी उसके मुख से निकल आयीं । देवताओं के साथ ब्रह्मा जी भी आकाशमण्डल में चले गये ॥ ४६ ॥

विमुक्तोसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञा च ततो गतः ।

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥४७॥

जब सरस्वती ने कुम्भकर्ण को छोड़ दिया, तब उसे चेत हुआ । तब तो वह दुष्ट कुम्भकर्ण दुःखी हो सकने लगा ॥ ४७ ॥

ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्चयुतम् ।

अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ॥ ४८ ॥

कि हाय मेरे मुख से ऐसा बचन क्यों निकला । मुझे जान पड़ता है कि, उस समय देवताओं ने आ कर मुझे मोहित कर दिया था ॥ ४८ ॥

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्तेजसः ।

श्लेष्मान्तकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥४९॥

इति दशमः सर्गः ॥

इस प्रकार तेजस्वी सब भाई वर प्राप्त कर, उस श्लेष्मान्तक\* वन में, जहाँ उनके पिता तप किया करते थे, चले गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४९ ॥

उत्तरकाण्ड का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—:\*:—

\* श्लेष्मान्तक—लसोडा अथवा बहेडा का वन ।

## एकादशः सर्गः

—:०:—

सुमाली वरलब्ध्वांस्तु ज्ञात्वा चैतानिशाचरान् ।

उदतिष्ठद्यं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥ १ ॥

उधर सुमालो इन तीनों भाइयों के वर पाने का समाचार सुन, निर्भय हो अपने अनुचरों सहित पाताल से निकला ॥ १ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।

उदतिष्ठन्सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥

मारीच, महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष—ये सुमाली के सचिव थे ।  
ये भी उसके साथ अत्यन्त उत्साहित हो निकले ॥ २ ॥

सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षस पुङ्गवैः ।

अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

सुमाली अपने अपने राक्षसश्रेष्ठ मंत्रियों को साथ ले दशग्रीव के निकट गया और उसे गले लगा उससे बोला ॥ ३ ॥

दिष्ट्या ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।

यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमुक्तम् ॥ ४ ॥

हे वत्स ! बड़े सौभाग्य की बात है कि, यह वाञ्छित मनोरथ पूरा हुआ । तुमने त्रिभुवननाथ से उत्तम वर पा लिया ॥ ४ ॥

यत्कृते च वयं लङ्का त्यक्त्वा याता रसातलम् ।

तदगतं नो महावाहो महाद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥

जिस भय से हम सब को लड़ा को छोड़ कर रसातल में  
भाग जाना पड़ा था, हे महाबाहो ! वह विष्णु का बड़ा भय दूर  
हो गया ॥ ५ ॥

असकृतद्याद्याः\* परित्यज्य स्वमालयम् ।

विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥ ६ ॥

उनके भय से हम सब लोगों को अनेक बार दुखी हो अपना  
घर द्वार छोड़ कर भागना पड़ा और रसातल में जाना पड़ा ॥ ६ ॥

अस्मदीया च लङ्घेयं नगरी राक्षसोचिता ।

निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥

यह लड़ा हमारी ही है, हम सब राक्षस उसीमें रहते थे ।  
किन्तु अब उसे तुम्हारे बुद्धिमान भाई कुबेर ने अपने अधिकार में  
कर लिया है ॥ ७ ॥

यदि नामात्र शक्यं स्यात्साम्ना दानेन वाऽनघ ।

तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥ ८ ॥

हे अनघ ! हे महाबीर ! यदि कहीं साम, दाम, अथवा युद्ध  
द्वारा ही लड़ा अपने अधिकार में तुम कर सको, तो बड़ा काम  
बन जाय ॥ ८ ॥

त्वं तु लङ्घेश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।

त्वया राक्षसवंशोयं निपन्नोपि समुद्भृतः ॥ ९ ॥

हे तात ! तुम निस्सन्देह लङ्घेश्वर होगे और इस प्रकार इबे  
हुए राक्षसकुल का तुम उद्धार करोगे ॥ ९ ॥

\* पाठान्तरे—“भीताः” ।

सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ।

अथाब्रवीदशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ॥ १० ॥

तथा हम सब के तुम स्वामी होगे । इतना सुन रावण अपने नाना सुमाली से बोला ॥ १० ॥

वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदशम् ।

साम्ना हि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ॥ ११ ॥

ज्येष्ठ भ्राता कुवेर जी मेरे पूज्य हैं, अतः आप ऐसी बात न कहिये । जब रावण ने अपने नाना को इस तरह समझा दिया ॥ ११ ॥

किञ्चिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ॥ १२ ॥

तब सुमाली उसके मन की बात जान कुछ न बोला । कुछ काल बाद वहाँ रहते हुए रावण से ॥ १२ ॥

प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह स रावणम्\* ।

दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदशम् ॥ १३ ॥

प्रहस्त ने रावण से विनम्र भाव से यह कहा—हे महाबहो ! हे दशग्रीव ! तुमको ऐसा न कहना चाहिये ॥ १३ ॥

सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ।

अदितिश दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हिते ॥ १४ ॥

शूरों के लिये भाईपन का विचार कोई विचार नहीं । सुनो मैं तुम्हें इसके सम्बन्ध में एक दृष्टान्त सुनाता हूँ । अदिति व दिती दोनों बहने थीं जो एक दूसरे की हितैषिणी थीं ॥ १४ ॥

\* पाठान्तरे—“सकारणम्” ।

भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ।

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ १५ ॥

दितिस्त्वजनयदैत्यान्कश्यपस्यात्मसम्भवान् ।

दैत्यानां किल धर्मज्ञं पुरेयं सवनार्णवा ॥ १६ ॥

सपर्वता मही वीरं तेऽभवन्प्रभविष्णवः

निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १७ ॥

ये दोनों बड़ी रूपवती थीं और कश्यप प्रजापति को व्याही थीं। अदिति ने श्रिभुवन के स्वामी देवताओं को जना और दिति ने कश्यप जी के श्रौतस से दैत्यों को। हे धर्मज्ञ ! पूर्वकाल में सागर, कानन और पर्वतों समेत यह सारी पृथिवी दैत्यों के अधिकार में थी। किन्तु प्रभावशाली विष्णु ने युद्ध में समस्त दैत्यों का संहार कर ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

देवानां वशमामानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ।

नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ॥ १८ ॥

ये अविनाशी तीनों लोक देवताओं के अधीन कर दिये। अतः आप विचार देखें कि, आप ही अपने भाई के साथ वैर भाव करेंगे सो बात नहीं है। अथवा आप ही ऐसा उलट पलट करने वाले अनौलिं न समझे जायगे ॥ १८ ॥

सुरासुरैराचरितं तत्कुरुष्व वचो मम ।

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १९ ॥

जो काम आज तक सुर और असुर सदा से करते चले आये हैं, वही काम आप भी मेरा कहना मान कर कीजिये। जब

प्रहस्त ने इस प्रकार समझाया, तब तो रावण ने हर्षित अन्तःकरण से ॥ १६ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोब्रवीत् ।  
सतु तेनैव इर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ॥ २० ॥

वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ।

त्रिकूटस्थः स तु ददा दशग्रीवो निशाचरः ॥ २१ ॥

एक मुहूर्त तक कुछ सोचा विचारा । तदनन्तर उसने कहा—  
बहुत अच्छा । अर्थात् प्रहस्त के कहने से वह राजा हो गया ।  
ऐसा कह हर्ष के मारे वीर्यवान् दशग्रीव उसो दिन निशाचरों के  
साथ लड़ा के समीप वाले वन में गया और त्रिकूट पर्वत पर टिक  
गया । फिर राज्ञस दशग्रीव ने ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रेषयामास \*दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ।

प्रहस्त शीघ्रं गच्छत्वं ब्रूहि नैऋतं पुज्ज्वम् ॥ २२ ॥

वचसा मम वित्तेशं सामं पूर्वमिदं वचः ।

इयं लङ्घापुरी राजन् राखसानां महात्मनाम् ॥ २३ ॥

वाक्यविशारद प्रहस्त को अपना दूत बना कर कुवेर के  
पास भेजा । (उसने प्रहस्त से कहा कि )—हे प्रहस्त ! तुम  
शीघ्र कुवेर के पास जाओ और उनसे मेरी ओर से समझा कर  
यह कहना कि—“हे राजन् ! यह लङ्घापुरी महाबलवान् राज्ञसों  
की है ॥ २२ ॥ २३ ॥

त्वया निवेशिता सौम्य नैतद्युक्तं तवानघ ।

तद्भवान्यदि नोहन्द दद्यादतुलविक्रम ॥ २४ ॥

\* पाठान्तरे—“दूत्येन” ।

कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मशैवानुपालितः ।

स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम् ॥ २५ ॥

सो हे सौम्य ! हे अनघ ! तुम्हारा इसमें रहना उचित नहीं है । हे श्रुतुल विक्रमकारी ! अब जो लङ्कापुरी आप हमें लौटा दें, तो आप यह काम हमारी परम प्रसन्नता का करेंगे और ऐसा करने से धर्म की रक्षा भी होगी” । कुबेरपालित लङ्का में प्रहस्त गया ॥ २४ ॥ २५ ॥

अब्रवीत्परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ।

प्रेषितोऽहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत ॥ २६ ॥

त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतांवर ।

वचनं मम वित्तेश यद्ब्रवीति दशाननः ॥ २७ ॥

और वहाँ जा कर परमोदार धनपाल कुबेर से यह बोला— हे सुव्रत ! मुझे तुम्हारे भाई रावण ने तुम्हारे पास भेजा है । हे महाबाहो ! हे शशधारियों में श्रेष्ठ ! दशग्रीव ने जो संदेश कहा है, उसे आप मेरे मुख से सुनें ॥ २६ ॥ २७ ॥

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा ।

भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ २८ ॥

हे विशालाक्ष ! पूर्वकाल में यह रमणीक सुप्रसिद्ध लङ्कापुरी द्वार पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसों के अधिकार में थी ॥ २८ ॥

तेन विज्ञाप्यते सोयं साम्प्रतं विश्रवात्मज ।

तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥ २९ ॥

हे तात ! हे विश्रवात्मज ! अतः इसे अब आप दे दें । हम आपसे प्रार्थनापूर्वक याचना करते हैं ॥ २६ ॥

प्रहस्तादपि संश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः ।

प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ३० ॥

वचन बेलने में चतुर धननाथ कुबेर ने प्रहस्त के ऐसे वचन सुन कर कहा ॥ ३० ॥

दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्घा शून्या निशाचरैः ।

निवेशिताच मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणैः ॥ ३१ ॥

यह लङ्घा नगरी खाली पड़ी थी । इसमें कोई भी राज्ञस नहीं रहता था । इसे खाली देख कर पिता ने मुझे यह रहने के लिये दी है । मैंने दान मानादि से अनेक लोगों को इसमें बसा इसे आवाद किया है ॥ ३१ ॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम ।

तत्राप्येतन्महावाहो भुञ्ज्व राज्यमकण्टकम् ॥ ३२ ॥

सो तुम मेरी और से जा कर दशग्रीव से कह देना कि, यह नगरी और राज्य जो कुछ मेरे पास है सो सब तुम्हारा ही है, अतः तुम चाही तो हे महावाहो ! अकण्टक राज्य मेंगो ॥ ३२ ॥

अविभक्तं त्वया सार्थं राज्यं यज्ञापि मे वसु ।

एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३३ ॥

क्योंकि यह राज्य और धनादि ऐश्वर्य हमारा और तुम्हारा अलग अलग नहीं है, एक ही है । प्रहस्त से इस प्रकार कह कर, कुबेर जो अपने पिता के निकट गये ॥ ३३ ॥

अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् ।

एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान्मम ॥ ३४ ॥

और पूज्य पिता जी को प्रणाम कर दशग्रीव के अभीष्ट को जनाते हुए कहा । हे पिता ! दशग्रीव ने अपना एक दूत मेरे पास भेजा है ॥ ३४ ॥

दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता ।

मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्षव सुव्रत ॥ ३५ ॥

और उसके द्वारा मुझसे कहलाया है कि लङ्का मुझे दे दो, क्योंकि वहले इसमें राज्ञस ही रहा करते थे । हे सुव्रत ! इस समय मुझे क्या करना चाहिये सो आप आज्ञा करें ॥ ३५ ॥

ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।

प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३६ ॥

इस पर मुनिपुङ्गव ब्रह्मर्षि विश्रवा जी, हाथ जोड़े सामने खड़े हुए कुबेर से बोले, हे पुत्र ! मैं जो कहता हूँ सो सुनो ॥ ३६ ॥

दशग्रीवो महावाहुरुक्तवान्मम सन्निधौ ।

मया निर्भर्त्सतश्चासीद्विशोक्तः सुदुर्मतिः ॥३७॥

दशग्रीव ने यह बात मुझसे भी कही थी, परन्तु मैंने तो उस दुष्ट को बहुत फटकारा ॥ ३७ ॥

स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंससे च पुनः पुनः ।

श्रेयोभियुक्तं धर्मं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३८ ॥

और रोष में भर भैंने बार बार (यह कह कर उसको धमकाया भी) कि तू नष्ट हो जायगा । हे पुत्र ! अब तुम मेरे कल्याणकारी धर्म युक्त वचन सुनो ॥ ३८ ॥

**वरप्रदानसंमूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः ।**

**न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥३९॥**

जब से उसे वर मिला है तब से वह बड़ा ही दुष्कृद्धि हो गया है । उसके लेखे मान्य और अमान्य कुछ है ही नहीं । मेरे शाप से उसका स्वभाव बड़ा दारुण हो गया है ॥ ३९ ॥

**तस्माद्गच्छ महावाहो कैलासं धरणीधरम् ।**

**निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्घां सहानुगः ॥४०॥**

अतएव अब तुम अपने अनुयायियों सहित कैलास पर्वत पर जा कर बसो और वहीं अपने लिये पुरी बनाओ । लङ्घा को खाली कर दो ॥ ४० ॥

**तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी ।**

**काञ्चनैः सूर्यसङ्काशैः पङ्कजैः संवृत्तोदका ॥ ४१ ॥**

कैलास पर सब नदियों से उत्तम और रम्य मन्दाकिनी नदी बहती है । उसके जल में सूर्य जैसे चमकीले कमल के फूल खिल रहे हैं ॥ ४१ ॥

**कुमुदैरुत्पलैश्चैव अन्यैश्चैव सुगन्धिभिः ।**

**तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ॥ ४२ ॥**

**विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः ।**

**नहि क्षमं तवानेन वैरंधनद रक्षसा ।**

**जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः ॥४३॥**

कुईं सफेदकमल तथा अन्य महकदार फूलों से वह स्थान  
सुवासित है । वहाँ विहारशील देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ और  
किन्धर सदैव बने रहते हैं और विहार किया करते हैं । हे  
धनद ! इस राज्ञस से तुम्हारा वैर करना उचित नहों । क्योंकि  
यह तो तुम्हें मालूम ही है कि, इसे सर्वोत्कृष्ट वर प्राप्त हो चुका  
है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

**एवमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वचः पितृगौरवात् ।**

**सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः ॥ ४४ ॥**

यह सुन कुबेर जी पिता की आज्ञा मान अपने बाल बच्चों,  
मंत्रियों, बाहन और धन को साथ ले, कैलास पर्वत पर चले  
गये ॥ ४४ ॥

**प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत् ।**

**प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ॥ ४५ ॥**

प्रहस्त ने हर्षित अन्तःकरण से अनुज और मंत्रियों के साथ  
बैठे हुए महाबली दशग्रीव के पास जा कर कहा ॥ ४५ ॥

**शून्या सा नगरी लङ्घा त्यक्त्वैनां धनदो गतः ।**

**प्रविश्य तां सहस्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय ॥ ४६ ॥**

कुबेर लङ्घा को खाली कर चले गये हैं । अब वह खाली पड़ी  
है । अतः अब आप हम लोगों के साथ वहाँ चलिये और राज्य  
कीजिये ॥ ४६ ॥

**एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः ।**

**विवेश नगरीं लङ्घां भ्रातृभिः सबलानुगैः ॥ ४७ ॥**

महाबलवान रावण प्रहस्त के ऐसे वचन सुन कर, अति हर्षित हुआ और अपने भाई, सेना और अनुचरों सहित उसने लङ्घा में प्रवेश किया ॥ ४७ ॥

धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम् ।

आरुरोह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा ॥ ४८ ॥

कुबेर की त्यागी हुई और सुन्दर सड़कों से युक्त लङ्घापुरी में देवताओं के शत्रु रावण ने उसी प्रकार प्रवेश किया ; जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग में प्रवेश करते हैं ॥ ४८ ॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा

निवेशयामास पुरीं दशाननः ।

निकामपूर्णा च वभूव सा पुरी

निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥ ४९ ॥

लङ्घापुरी में पहुँचते ही राज्ञों ने रावण के राजतिलक किया । फिर रावण ने पुरी को बसाया । नीले मेघों के समान देह वाले निशाचरों के भुंड के भुंड लङ्घापुरी में बस गये ॥ ४९ ॥

धनेश्वरस्त्वथपितृवाक्यगौरवात्

न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम् ।

स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां

पुरन्दरः स्वरिव यथामरावतीम् ॥ ५० ॥

इति एकादशः सर्गः ॥

कुबेर ने भी अपने पिता की आङ्गार मान, कैलास पर्वत पर अति सुन्दर एवं शोभायमान् मन्दिरों सहित अति मनोहर अलकापुरी बसाई, जो इन्द्र की अमरावती पुरी के समान थी ॥ ५० ॥

उत्तरकाशड का घ्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—: #: —

## द्वादशः सर्गः

—: ० : —

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभिः सहितस्तदा ।

ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥ १ ॥

रावण अभिषिक्त हो, अपने भाइयों सहित, अपनी बहिन सूपनखा के विवाह के लिये चिन्तित हुआ ॥ १ ॥

\*ददौ तां कालकेन्द्राय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ।

स्वासां शूर्पणखां नाम विद्युजिज्ञाय राक्षसः ॥ २ ॥

तदनन्तर रावण ने कालकेयवंशी दानवेन्द्र विद्युजिह्व के साथ अपनी बहिन सूपनखा का विवाह कर दिया ॥ २ ॥

अथ दत्त्वा स्वर्यं रक्षो मृगयामटते स्म तत् ।

तत्रापश्यत्ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥ ३ ॥

हे राम ! इस प्रकार अपनी बहिन का विवाह कर, दशग्रीव रावण ने शिकार खेलते खेलते, दिति के पुत्र मय को देखा ॥ ३ ॥

कन्या सहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः ।

अपृच्छत्को भवानेको निर्मनुष्यमृगे वने ॥ ४ ॥

\* पाठान्तरे—“स्वासां कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ददौ । शूर्पणखा नाम विद्युजिज्ञाय नामतः” ।

रावण ने मय को पक कन्या सहित देख कर पूँछा—आप कौन हैं ? और इस मनुष्यरहित एवं नाना प्रकार के जंगली जीवों से भरे हुए, वन में आप अकेले क्यों धूम रहे हैं ? ॥ ५ ॥

अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि ।

मयस्तदाब्रवीद्राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ॥ ५ ॥

और इस मृगनयनों को अपने साथ क्यों लिये हुए हैं ? हे राम ! रावण ने जब इस प्रकार पूँछा, तब मय ने उत्तर देते हुए कहा ॥ ५ ॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव\* ।

हेमा नामाप्सरास्तत्र श्रुतपूर्वा यदि त्वया ॥ ६ ॥

मैं अपना समस्त वृत्तान्त आपको ज्यों का त्यों सुनाता हूँ । आप सुनें । कदाचित् आपने हेमा नाम की अप्सरा का नाम सुना हो ॥ ६ ॥

दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः ।

तस्यां सक्तमना ह्यासं दशवर्षशतान्यहम् ॥ ७ ॥

जैसे इन्द्र को शची मिली थी, वैसे ही देवताओं ने उस हेमा को मुझे दिया । मैं हज़ार वर्षों तक उसमें आसक रहा ॥ ७ ॥

सा च दैवतकार्येण त्रयोदश समागताः ।

वर्षं चतुर्दशं चैव ततो हेममयं पुरम् ॥ ८ ॥

जब वह देवताओं का कार्य करने के लिये देवलोक को चली गयी, तब मैं उसके विरह में कातर हो, चौदह वर्ष तक अपनी सुवर्णमयी पुरी में रहा ॥ ८ ॥

\* पाठान्तरे—“मम” ।

वज्रवैदूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया ।

तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः ॥ ९ ॥

यह पुरो मैंने अपनी विनित्र निर्माणशक्ति से हीरों और पन्नों से जड़ कर बनायी थी । उस खो के विशेष में मैं दीन और अत्यन्त दुःखी हो कर, उसी अपने बनाये हुए नगर में रहने लगा ॥ ६ ॥

तस्मात्पुरादुहितरं गृहीत्वा वनमावतः ।

इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षी विवर्धिता ॥ १० ॥

मैं उसी नगर से इस लड़की को अपने साथ ले, यहाँ आया हूँ । हे राजन् ! यह लड़की उसी अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई है ॥ १० ॥

भर्तरिमनया सार्थमस्याः प्रासोऽस्मि मार्गितुम् ।

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम् ॥ ११ ॥

मैं इसको साथ लिये हुए, इसके लिये वर खोजने आया हूँ । ग्रायः सभी मानी पुरुषों के लिये कन्याएँ दुःखलपिणी हुआ करती हैं ॥ ११ ॥

कन्या हि द्वे कुलो नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ।

पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां सम्बभूव ह ॥ १२ ॥

ज्योंकि वे मातृकुल और पितृकुल दोनों को सन्देह में डाले रहती हैं हे । भद्र ! हेमा से मेरे दो पुत्र भी उत्पन्न हुए हैं ॥ १२ ॥

मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः ।

एवं ते सर्वमार्ख्यातं यथातध्येन पृच्छतः ॥ १३ ॥

उनमें से ज्येष्ठ का नाम मायावी है और छोटे का नाम दुन्दभी है। हे तात ! तुम्हारे पूँछने पर जो यथार्थ बात थी सो मैंने तुमसे कह दी ॥ १३ ॥

त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति ।

एवमुक्तं तु तद्रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

हे तात ! आप कौन हैं ? यह बात मुझे क्यों कर मालूम हो सकती है ? जब दानवेन्द्र ने इस प्रकार कहा तब रावण ने विनीत भाव से कहा ॥ १४ ॥

अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः ।

मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥ १५ ॥

मेरा दशग्रीव नाम है। मैं पुलस्त्य मुनि के बंश में उत्पन्न हुआ और विश्रवा का पुत्र हूँ। ये विश्रवा जी ब्रह्मा के पौत्र हैं ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः ।

महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो दानवपुङ्गवः ॥ १६ ॥

दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै ।

करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ॥ १७ ॥

प्रहसन्प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ।

इयं ममात्मजा राजन्हेमयाऽप्सरसा धृता ॥ १८ ॥

जब राक्षसेन्द्र दशग्रीव ने इस प्रकार कहा, तब दानवश्रेष्ठ मय, यह जान कि, दशग्रीव एक महर्षि का पुत्र है, अपनी कन्या उसे देने को तैयार हो गया। दशग्रीव के हाथ में अपनी कन्या का हाथ थमा, दैत्येन्द्र मय ने मुसक्खाते हुए दशग्रीव से यह कहा—

हे राजन् ! यह मेरी कन्या है और हेमा नाम की अप्सरा के गर्भ से यह उत्पन्न हुई है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्णताम् ।

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ॥ १९ ॥

इसका नाम मन्दोदरी है । इसे शाप पत्नी रूप से ग्रहण कीजिये । इस पर हे राम ! दशग्रीव ने कहा “ बहुत अच्छा ” ॥ १६ ॥

प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत्पाणिसङ्ग्रहम् ।

स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ॥ २० ॥

विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ।

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्गुताम् ॥ २१ ॥

और वहीं अग्नि जला उसने मन्दोदरी का पाणिग्रहण किया । हे राम ! यद्यपि मय को यह विदित था कि, तपस्वी विश्ववा जी दशग्रीव को शाप दे चुके हैं, तथापि उसे ब्रह्मा के कुल का समझ, उसने उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया और दशग्रीव को एक परम अद्भुत और अमोघ शक्ति भी दो ॥ २० ॥ २१ ॥

परेण तपसा लब्धांजिघ्रवाँलुक्ष्मणं यया ।

एवं स कृत्वा दारान्वै लङ्घाया ईश्वरः प्रभुः ॥ २२ ॥

वह शक्ति उसे तप करने पर मिली थी और दशग्रीव ने उसी शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया था । इस प्रकार भार्याग्रहण कर राजसराज दशग्रीव लङ्घा को चला गया ॥ २२ ॥

गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत् ।

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ॥ २३ ॥

तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ।  
 गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥२४॥  
 सरमा नाम धर्मज्ञां लेखे भार्यां विभीषणः ।  
 तीरे तु सरसो वै तु सज्जे मानसस्य हि ॥२५॥

अपनी पत्नी के सहित लड़ा में जा, दशश्रीव ने अपने दोनों  
 भाइयों का भी विवाह किया । वैराचन की पौत्री अर्थात् बलि की  
 बेटी की बेटी, जिसका नाम वज्रज्वाला था, कुम्भकर्ण को व्याही ।  
गन्धर्वराज शैलूष की लड़की विभीषण को व्याही । उसका नाम  
सरमा था और उह बड़ी धर्मज्ञा थी । सरमा मानससरोवर के  
 तट पर पैदा हुई थी ॥ २३ ॥ २४ ॥

सरस्तदा मानसं तु वृथे जलदागमे ।

मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ॥२६॥

वर्षाकाल में जब मानसरोवर का जल बढ़ने लगा, तब सरमा  
 की माता ने स्नेहवश चिल्हा कर यह कहा ॥ २६ ॥

सरो मा वर्धतेत्युक्तं ततः सा सरमाऽभवत् ।

एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ॥ २७ ॥

स्वां स्वां भर्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने ।

ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥ २८ ॥

“सरो मा वर्धत !” हे सर ! तू मत बढ़ । इसीसे उस लड़की  
 का नाम सरमा पड़ा । हे राम ! इस प्रकार वे राज्ञस विवाह कर  
 अपनी अपनी पत्नियों के साथ वैसे ही विहार करने लगे, जैसे  
 नन्दनवन में गन्धर्व विहार करते हैं । काल पा कर मन्दोदरी के  
 गर्भ से मेघनाद उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ २८ ॥

स एष इन्द्रजिन्नाम युध्याभिरभिर्धीयते ।

जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ॥ २९ ॥

रुदता सुमहान्मुक्तो नादा जलधरोपमः ।

जडीकृता च सा लङ्घा तस्य नादेन राघव ॥ ३० ॥

उसी मेघनाद को आप सब लोग इन्द्रजीत के नाम से पुकारते हैं। हे राम ! इस रावणपुत्र ने जन्म लेते ही मेघ के समान गर्जना की थी, जिससे समस्त लङ्घानिवासी स्तम्भित हो गये थे ॥ २६ ॥ ३० ॥

पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ।

सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ॥ ३१ ॥

अतएव उसके पिता दशग्रीव ने स्वयं उसका नाम मेघनाद रखा । हे राम ! मेघनाद राघव के शुभ रनवास में बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥

रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ।

मातापित्रोर्महाहर्षं जनयन् रावणात्मजः ॥ ३२ ॥

इति द्वादशः सर्गः ॥

श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा मेघनाद का लालन पालन हुआ । वह ईर्धन से ढकी हुई आग की तरह माता पिता को अत्यन्त हर्ष उपजाता हुआ बढ़ने लगा ॥ ३२ ॥

उत्तरकागड़ का बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## त्रयोदशः सर्गः

—:०:—

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।

निद्रा सम भवतीत्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥

कुक्कुट दिनों के बाद ब्रह्मा जी के खरदान के अनुसार कुम्भकर्ण को मूर्तिमती द्वेरा नींद ने आ देरा ॥ १ ॥

ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णो ब्रवीद्वचः ।

निद्रा माँ बाधते राजन् कारयस्व ममालयम् ॥२॥

उस समय समीप बैठे हुए अपने भाई रावण से कुम्भकर्ण ने कहा —हे राजन् ! मुझे नींद सता रही है । अतएव मेरे सोने के लिये मकान बनवा दीजिये ॥ २ ॥

विनियुक्तास्ततो राजा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।

विस्तीर्ण योजनं स्निग्धं ततो द्विगुणमायतम् ॥ ३ ॥

यह सुन रावण ने विश्वकर्मा के समान चतुर थवइयों (मैमारों) को आङ्गा दी । उन लोगों ने एक योजन चौड़ा और दो योजन लंबा एक बड़ा सुन्दर घर बना कर तैयार कर दिया ॥ ३ ॥

दर्शनीर्यं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ।

स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ॥४॥

कुम्भकर्ण के सोने का वह मकान देखने योग्य था और उसमें किसी प्रकार की वाधा पड़ने का भी खटका न था । उसमें सर्वत्र स्फटिक और सुवर्ण के रंगबिरंगे खंभे बने हुए थे ॥ ४ ॥

वैदूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा ।

दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ॥ ५ ॥

उस भवन की सीढ़ियों पर पच्चे जड़े हुए थे । उसके द्वारों में हाथीदाँत की बनी चौखटें जड़ी हुई थीं और उनमें छोटी छोटी घंटियाँ लगी हुई थीं । उस भवन में हीरों और सफटिक के चबूतरे बने हुए थे ॥ ५ ॥

मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः ।

सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ॥ ६ ॥

रावण का बनवाया हुआ यह भवन मेरुपर्वत की स्वच्छ गुफा की तरह सब अनुश्रूतों में सब के लिये सुखदायी और सुन्दर था ॥ ६ ॥

तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ।

बहुन्यब्द सहस्राणि शयानो न च बुध्यते ॥ ७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण नींद में मरा हज़ारों वर्षों तक वहाँ पड़ा पड़ा सोता रहा ; परन्तु जागा नहीं ॥ ७ ॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णो दशाननः ।

देवर्षियक्षगन्धवर्णसंजघ्ने हि निरङ्कुशः ॥ ८ ॥

जिन दिनों कुम्भकर्ण सो रहा था, उन दिनों रावण निरङ्कुश हो देवताओं, ऋषियों, यज्ञों और गन्धवर्णों को मारता फिरता था ॥ ८ ॥

उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च ।

तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनति स्म दशाननः ॥ ९ ॥

क्रोध में भर रावण अच्छै अच्छै बाग बगीचों और देवताओं  
के नन्दन आदि उद्यानों में जा कर उनको उजाइ ढालता था ॥ ६ ॥

नदीं गज इव क्रीडन् वृक्षान्वायुरिव क्षिपन् ।

नगान्वज्ज इवोत्सष्टो विध्वंसयति राक्षसः ॥ १० ॥

उन दिनों रावण नदी के तटों को हाथों की तरह, वृक्षों को  
वायु की तरह और पर्वतों को बज्ज की तरह ध्वंस करता हुआ  
धूमता फिरता था ॥ १० ॥

यथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः ।

कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥ ११ ॥

सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा ।

लङ्घां सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥ १२ ॥

किन्तु धर्मज्ञ धनेश्वर ने, रावण के इन चरित्रों को सुन कर  
अपने कुल की चाल और रीति भाँति का स्मरण कर, अपना  
भाईपन दिखलाने के लिये, लङ्घा में रावण के समीप अपना दूत  
भेजा ॥ ११ ॥ १२ ॥

स गत्वा नगरीं लङ्घामाससाद विभीषणम् ।

मानितस्तेन धर्मेण पृष्ठश्चागमनं प्रति ॥ १३ ॥

धनेश्वर का दूत लङ्घा में जा सब से प्रथम विभीषण से मिला ।  
विभीषण ने शिष्ठान्नारपूर्वक उसका सत्कार किया । तदनन्तर उससे  
आने का कारण पूँछा ॥ १३ ॥

पृष्ठा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः ।

सभायां दर्शयामासा तमासीनं दशाननम् ॥ १४ ॥

तथा धनपति कुबेर जी के परिवार का कुशल मङ्गल पूँछा ।  
फिर उसे राजसभा में ले जा कर सिंहासन पर बैठे हुए रावण से  
मिलाया ॥ १४ ॥

स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ।

जयेति वाचा सम्पूर्ज्य तूष्णीं समभिवर्तते ॥ १५ ॥

धनेश्वर के दूत ने तेज से दीप्त रावण को देख, कहा—  
“ महाराज की जय हो । ” तदनन्तर वह चुपचाप खड़ा रहा ॥ १५ ॥

स तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते ।

उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

बहुमूल्य विस्तरों से अच्छादित पलंग पर बैठे हुए दशग्रीव से  
वह दूत बोला ॥ १६ ॥

राजन्वदामि ते सर्वं भ्राता तव यद्ब्रवीत् ।

उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ १७ ॥

हे राजन् ! आपके भाई कुबेर ने माता और पिता के कुलों  
की रीति भाँति के अनुरूप जो संदेसा आपके लिये भेजा है, सो  
मैं आपसे कहता हूँ ॥ १७ ॥

साधु पर्याप्तमेतावत्कुतश्चारित्र संग्रहः ।

साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥ १८ ॥

आपने अब तक जो कुछ किया है, वह बहुत है । अब वस  
कीजिये और आगे जो कीजिये सो अच्छे ही काम कीजिये, जिससे  
आपका चरित्र सुधरे । आप धर्म के कामों में यथाशक्ति अपना मन  
लगावें ॥ १८ ॥

दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ।

देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन्मया श्रुतः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! आपके द्वारा उजड़े हुए नन्दनवन को मैंने अपने नेत्रों से देखा है, और ऋषियों के बध का संवाद सुना है। साथ ही मैंने आपके विरुद्ध देवताओं के उद्योग का समाचार भी सुना है ॥ १९ ॥

निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप ।

सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ २० ॥

हे राक्षसाधिप ! यद्यपि तुमने बारंबार मेरा निरादर किया है, तथापि निरादर करने वाले उस बालक की रक्षा करना ही उसके बन्धुओं को उचित है ॥ २० ॥

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ।

रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥

मैं तो हिमालय पर्वत पर जितेन्द्रिय हूँ। तथा तप के नियमों का पालन कर के, महादेव जी को प्रसन्न करने का व्रत धारण कर अपने काम में लगा हुआ था ॥ २१ ॥

तत्र देवो मया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः ।

सव्यं चक्षुर्मया दैवात्तत्र देव्यां निपातितम् ॥ २२ ॥

वहाँ मुझे पार्वती सहित शिव जी के दर्शन हुए। दैवयोग से पार्वती जी ने मेरे दहिने नेत्र को फोड़ डाला ॥ २२ ॥

कान्वेषेति महाराज न खल्वन्येन हेतुना ।

रूपं चानुपर्मं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

उस नेत्र से मैंने केवल यह देखना चाहा था कि, यह कौन है, इतना ही मेरा अपराध है। इसके अतिरिक्त मैंने और कोई अपराध नहीं किया। वहाँ पर पार्वती देवी अनुपम रूप बना चास करती हैं ॥ २३ ॥

देव्यादिव्य प्रभावेण दग्धं सव्यं यमेक्षणम् ।

रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥ २४ ॥

उन देवी के दिव्य प्रभाव से मुझे अपनी बाई आँख से हाथ धोने पड़े। धूल से ढके नक्षत्र की तरह मेरी वह आँख पीली पड़ गयी है ॥ २४ ॥

ततो हमन्यद्विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम् ।

तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समधारं महाव्रतम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर में उस पहाड़ के एक लंबे चैढ़े स्थान में, आठ सौ बर्षों तक मौन महाव्रत धारण कर बैठा रहा ॥ २५ ॥

समाप्ते नियमे तस्मिस्तत्र देवो महेश्वरः ।

ततः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥

जब मेरा नियम पूरा हुआ, तब भगवान् शिव जी ने प्रसन्न हो कर मुझसे यह कहा ॥ २६ ॥

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुव्रत ।

मया चैतद्व्रतं चीर्ण त्वया चैव धनाधिप ॥ २७ ॥

हे धर्मज्ञ ! हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे इस तप से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। हे धनाधिप ! या तो मैंने इस व्रत को पूर्ण किया या तुमने इसका निर्वाह किया ॥ २७ ॥

तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद्वतमीदृशम् ।

ब्रतं सुदुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ॥ २८ ॥

मुझे तो सरा कोई भी ऐसा पुरुष नहीं देख पड़ता, जो ऐसा ब्रत पालन करने में समर्थ हो । पूर्वकाल मैं मैंने ही इस दुष्कर ब्रत को निवाहा था ॥ २८ ॥

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर ।

तपसा निर्जितश्वैव सखा भव ममानघ ॥ २९ ॥

हे सौम्य ! हे धनेश्वर ! आज से तुम मेरे साथ मैत्री कर लो ।  
हे अनघ ! तप द्वारा तुमने मुझे जीत लिया है । अब तुम मेरे मित्र हो जाओ ॥ २९ ॥

देव्या दग्धं प्रभावेण यच्च सव्यं तवेक्षणम् ।

पैङ्गल्यं यदवासं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥ ३० ॥

एकाक्षिपिङ्गलीत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम् ।

एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शङ्करात् ॥ ३१ ॥

पार्वती जी ने अपने प्रभाव से तुम्हारी जो बाई आँख दग्ध कर डाली है, और उनका रूप अवलोकन करने के कारण वह जो पीली पड़ गयी है; अतः तुम्हारा एकाक्ष पिङ्गली नाम सदैव विख्यात होगा । इस प्रकार मेरी और शिव जी की मैत्री हो गयी और तब मैंने अपने घर आने के लिये शिव जी से अनुमति माँगी ॥ ३० ॥ ३१ ॥

आगतेन मया चैवं श्रुतस्ते पापनिश्चयः ।

तदधर्मिष्टसंयोगान्विर्त कुलदूषणात् ॥ ३२ ॥

घर लौटने पर मैंने तुम्हारी पापकथाएँ सुनीं। अब तुम ऐसे काम मत करो जिनसे कुल में धब्बा लगे। अथवा तुम कुलकलङ्घ अधर्मियों का साथ छोड़ दो ॥ ३२ ॥

चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव ।

एवमुक्तो दशग्रीवः कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३३ ॥

निश्चय जान रखो कि, देवता और देवर्षि लोग मिल कर तुम्हारे मार डालने का उपाय सोच रहे हैं। कुवेर जी का यह संदेश सुन कर, रावण के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये ॥ ३३ ॥

हस्तान्दन्तांश्च संपिण्य वाक्यमेतदुवाच ह ।

विज्ञातं ते मया दृत वाक्यं यत्त्वं प्रभाषसे ॥ ३४ ॥

वह दौत कटकटाता और हाथों को मलता हुआ क्रोध में भर बोला कि, रे दृत ! जो कुछ तू कह रहा है, वह सब मैं समझ गया ॥ ३४ ॥

नैव त्वमसि नैवासो भ्राता येनासि चोदितः ।

हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ॥ ३५ ॥

अब न तो तू स्वयं और न वह मेरा भाई, जिसने तुझे भेजा है बच सकते हैं। धन की चौकीदारी करने वाले उस कुवेर ने जो कुछ कहा है उससे मेरी कुछ भी भलाई नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥

महेश्वरसखित्वं तु मूढः श्रावयते किल ।

नैवेदं क्षमणीयं मैं यदेतद्वाषितं त्वया ॥ ३६ ॥

वह मूर्ख मुझे शिव जी के साथ अपनो मैत्री होने की बात सुनाता है। तूने जो कहा है, उसे मैं क्षमा नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥

यदेतावन्मया कालं दूत तस्य तु मर्षितम् ।  
न हन्तव्यो गुरुज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ॥ ३७ ॥

हे दूत ! इतने दिनों तक जो मैं चुप रहा और उसे ज़मा करता रहा इसका कारण यह है कि, वह मेरा बड़ा भाई है । इसीसे मैं उसका मारना अनुचित समझ चुप रहा ॥ ३७ ॥

तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ।  
त्रील्लोकानपि जेष्यामि वाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥ ३८ ॥

किन्तु इस समय उसकी इन बातों को सुन, मैंने अपने मन में यही ठान ठाना है कि, मैं अपने बाहुबल से तीनों लोकों को सर करूँगा ॥ ३८ ॥

एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते ।

चतुरो लोकपालांस्तान्नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

और एक मात्र उसीके कारण मैं चारों लोकपालों को मार कर, इसी मुहूर्त यमराज के घर भेज दूँगा ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा तु लङ्घेशो दूतं खङ्गेन जग्निवान् ।

ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥

यह कह कर रावण ने खङ्ग का प्रहार कर उस दूत को मार डाला और उस दूत की लोथ को खा डालने के लिये दुष्ट राक्षसों को आशा दी ॥ ४० ॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुद्ध्य रावणः ।

त्रैलोक्यविजयाकांक्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥ ४१ ॥

इति त्रयोदशः सर्गः ॥

तदनन्तर रावण श्रिलोकी को जीतने की इच्छा से स्वस्त्ययनादि  
कर्म पूर्वक, रथ पर सवार हो वहाँ गया जहाँ कुबेर जी रहते थे ॥४६॥  
उत्तरकाण्ड का तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

चतुर्दशः सर्गः

—०—

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्य वलोद्धतः ।  
महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥  
धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगद्धिना ।  
वृतः सम्प्रययौ श्रीमानक्रोधाञ्छोकान्दहन्त्रिव ॥२॥  
पुराणि स नदीः शैलान्वनान्युपवनानि च ।  
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ॥ ३ ॥

सदा बल से दर्पित रावण, क्रोध में भर समरप्रिय महोदर,  
प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण और धूम्राक्ष नामक अपने द्वाः  
मन्त्रियों को साए ले, तथा लोकों को भस्म करता हुआ सा एवं  
नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनों को पार करता हुआ  
मुहूर्च भर में कैलास पर्वत पर जा पहुँचा ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

सन्निविष्टं गिरौ तस्मिन् राक्षसेन्द्रं निशम्यतु ।  
युद्धेष्मुं तं कुतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ॥ ४ ॥

जब यहों ने सुना कि, दुर्मति राक्षसेन्द्र रावण, मन्त्रियों सहित  
समर की वासना से उत्साहित हो, उस पर्वत के शिखर पर  
॥ ४ ॥

यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः ।  
राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥

तब वे यज्ञ डर गये और उसका सामना तक न कर सके ।  
रावण को कुबेर का भाई जान वे वहाँ गये जहाँ कुबेर थे ॥ ५ ॥

ते गत्वा सर्वमाचख्युप्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् ।  
अनुज्ञाता ययुर्हष्टा युद्धाय धनदेन ते ॥ ६ ॥

वहाँ जा यज्ञों ने कुबेर जी से उनके भाई रावण का सारा वृत्तान्त कहा । तब सारा हाल जान कर कुबेर ने उन यज्ञों को लड़ने की आज्ञा दी । यज्ञ आज्ञा ए हर्षित अन्तःकरण से युद्ध करने के लिये निकले ॥ ६ ॥

ततो बलानां संक्षेभेष व्यवर्धत इवोदधेः ।  
तस्य नैऋतराजस्य शैलं सञ्चालयन्निव ॥ ७ ॥

उस समय राजसराज की सेना में ऐसो खलबली मची माझों समुद्र खलबला उठा हो । ऐसा जान पड़ा मानों वह पर्वत थरथरा उठा हो ॥ ७ ॥

ततो युद्धं समभवद्यक्षराक्षससङ्कुलम् ।  
व्यथिताशाभवस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ॥ ८ ॥

तदनन्तर यज्ञों और राज्ञों का महाभयङ्कर युद्ध हुआ । उस युद्ध में थोड़ी ही देर में रावण के मंत्री व्यथित हो गये ॥ ८ ॥

स दृष्टा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ।  
१ हर्षनादान्बहून्कृत्वा स क्रोधादभ्यधावतः ॥ ९ ॥

१ हर्षनादं—सिंहनादं । ( गो० ) \* पाठान्तरे—“ भाषत ” ।

जब राज्ञस दशग्रीव ने यह देखा, तब वह क्रोध में भर, सिंह-  
नाद करता हुआ दौड़ा ॥ ६ ॥

ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमाः ।  
तेषां सहस्रपैकैको यक्षाणां समवेधयत् ॥ १० ॥

राज्ञसराज्ञ रावण के जो घोर पराक्रमो मंत्रो थे, उनमें से  
प्रत्येक मंत्री एक एक हज़ार यक्षों के साथ युद्ध करने लगा ॥ १० ॥

ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोपरैः ।  
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समग्राहत ॥ ११ ॥

गदाओं, मूललों, खड्डों, शक्तियाँ और तोमरों के प्रहार सहता  
हुआ रावण यक्षों की सेना में घुस पड़ा ॥ १२ ॥

स निरुच्छ्वासवत्तत्र वध्यमानो दशाननः ।  
वर्षद्विरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुद्ध्यत ॥ १२ ॥

मेघ से बरसते हुए जल की तरह शख्झों की वृष्टि से  
निरन्तर धायल हो, रावण को दम लेने तक का अवकाश न  
मिला ॥ १२ ॥

न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः ।  
महीधर इवांभेदैर्धाराशतसमुक्षितः ॥ १३ ॥

मेघ जिस प्रकार जलवृष्टि करके पर्वत को भिंगा देते हैं,  
उसी प्रकार रावण भी रुधिर से नहा गया था, तिस पर भी वह  
यक्षों के असंख्य शख्झों के प्रहार को कुछ भी परवाह नहीं करता  
था ॥ १३ ॥

स महात्मा समुद्यम्य कालदण्डेष्टमां गदाम् ।

प्रविवेश ततः सैन्यं नयन्यक्षान्यमक्षयम् ॥ १४ ॥

महाबली रावण ने कालदण्ड के समान अपनी गदा उठा  
और शत्रुसैन्य में प्रवेश कर, अनेक यज्ञों को मार डाला ॥ १४ ॥

स कक्षमिव विस्तीर्ण शुष्केऽधनमिवाकुलम् ।

वातेनाग्निरिवादीसो यक्षसैन्यं ददाहतत् ॥ १५ ॥

तेज़ हवा से धधक कर आग जिस प्रकार छुले तिनकों और  
लकड़ियों को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार रावण भी यज्ञों  
की सेना को भस्म करने लगा ॥ १५ ॥

तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः ।

अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः ॥ १६ ॥

पवन के चलने से जैसे बादल तितर बितर हो जाते हैं, वैसे  
ही महोदर और शुकादि मंत्रियों ने यज्ञों को छिन्न भिन्न कर, उनकी  
संख्या बहुत थोड़ी कर दी ॥ १६ ॥

केचित्समाहता भयाः पतिताः समरे क्षितौ ।

ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन्कुपिता रणे ॥ १७ ॥

उनमें से कुछ तो शख्तों के प्रहारों से कटकुट गये, बहुत से  
पृथिवी पर गिर पड़े और बहुत से मारे क्रोध के दाँतों से ओढ़ों  
को चबाने लगे ॥ १७ ॥

श्राताश्चान्योन्यमालिंग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे ।

सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह १८ ॥

यक्ष लड़ते लड़ते इतने थक गये कि, रणभूमि में वे एक दूसरे के शरीर में लिपटने लगे। उनके हथियार हाथों से क्लूट क्लूट कर गिर पड़े। वे चेट खा खा कर ऐसे भहरा पड़े जैसे जल की टक्कर खा कर नदी के किनारे भहरा पड़ते हैं ॥ १८ ॥

हतानां गच्छतां स्वर्गं युध्यतामथ धावताम् ।

प्रेषतामृषिसङ्घानां बभूव न तदान्तरम् ॥ १९ ॥

बहुत से यक्ष रणक्षेत्र में दौड़ रहे थे, बहुत से लड़ रहे थे, और बहुत से शत्रुओं द्वारा मारे जा कर स्वर्ग का गमन कर रहे थे। युद्ध देखने वाले मृषियों की भीड़ के कारण आकाश में ठड़े रहने की भी स्थान नहीं रह गया था ॥ १६ ॥

भग्रांस्तु तान्समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महावलान् ।

धनाध्यक्षो महावाहुः प्रेषयामास यक्षकान् ॥ २० ॥

पहले भेजे हुए यक्षों का राज्ञसों द्वारा सर्वनाश देख, महावलवान् कुवेर जी ने और भी बहुत से यक्षों को राज्ञसों से लड़ने के लिये भेजा ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्ण बलवाहनः ।

प्रेषितो न्यपतवक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥ २१ ॥

हे राम ! इसी बोच में कुवेर का भेजा हुआ संयोधकण्टक नामक यक्ष, एक बड़ी भारी सेना और वाहनों को साथ लिये हुए रणभूमि में आया ॥ २१ ॥

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः ।

पतितो भूतले शैलात्क्षोणपुण्य इव ग्रहः ॥ २२ ॥

विष्णु के सुदर्शन चक्र के समान, उस यज्ञ के चक्र के प्रहार से, मारीच राक्षस आकाश से गिरे हुए पुण्यक्षीण नक्षत्र की तरह, पहाड़ से पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ २० ॥

ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः ।

तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुदुवे ॥ २३ ॥

योड़ी देर बाद सचेत हो और विश्राम कर मारीच ने यज्ञ से लड़ना पुनः आरम्भ किया और लड़ कर उस यज्ञ को मार कर भग्ना दिया ॥ २३ ॥

ततः काश्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम् ।

मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ॥ २४ ॥

तदनन्तर रावण सोने चौड़ी और पन्ने आदि मणियों के जड़ाऊ रंगबिरंगे सुन्दर उस फाटक में घुसा ; जिसके ऊपर द्वारपाल रहा करते थे ॥ २४ ॥

तं तु राजन्दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम् ।

सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥ २५ ॥

हे राजन् ! जब रावण उस फाटक में घुसने लगा, तब सूर्यभानु नामक द्वारपाल ने उसको रोका ॥ २५ ॥

स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः ।

यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत्स राक्षसः ॥ २६ ॥

किन्तु रोकने पर भी रावण न रुका और द्वार के भीतर घुसने लगा । हे राम ! द्वारपाल के रोकने पर भी रावण जब न रुका ॥ २६ ॥

ततस्तोरणमुत्पाद्य तेन यक्षेण ताडितः ।

रुधिरं प्रस्त्रवनभाति शैलो धातुस्वैरिव ॥ २७ ॥

तब वह द्वारपाल यक्षद्वार का तोरण उखाड़ कर, उससे रावण की पीटने लगा। उस समय तोरण की चेट खाने से रावण रुधिर से नहाया हुआ ऐसा देख पड़ता था, जैसा गेहू से पुता हुआ पहाड़ ॥ २७ ॥

स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः ।

जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात्स्यंभुवः ॥ २८ ॥

यद्यपि पर्वत के शिखर के आकार के तोरण से वह रावण खूब पीटा गया था, तथापि ब्रह्मा के वरदान से वह वीर धराशायी न हुआ ॥ २८ ॥

तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः ।

नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृत तनुस्तदा ॥ २९ ॥

बलिक उसने उसी तोरण से उस द्वारपाल यक्ष को मारा। तोरणप्रहार से यक्ष ऐसा चूर चूर हो गया कि, उसका नाम निशान तक शेष न रह गया ॥ २९ ॥

ततः प्रदुदुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षः पराक्रमम् ।

ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ।

त्यक्तप्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा ॥ ३० ॥

इति चतुर्दशः सर्गः ॥

रावण का ऐसा पराक्रम देख, वहाँ से सब यक्ष भाग गये। भय के मारे उनमें से कोई पहाड़ की गुफाओं में और कोई नदी

के भीतर जा द्विये । उन लोगों ने हथियार डाल दिये और लड़ते लड़ते थक जाने के कारण उनके चेहरों का रंग फोका पड़ गया ॥ ३० ॥

उत्तरकाशडे का चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



### पञ्चदशः सर्गः

— : ० : —

ततस्ताँलक्ष्य वित्रस्तान्यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः ।

धनाध्यक्षो महायक्षं 'माणिचारमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सहस्रों पराक्रमो यज्ञों को भयभीत देख कुबेर ने माणिभद्र नामक महायज्ञ से कहा ॥ १ ॥

रावणं जहि यक्षेन्द्र दुर्वृत्तं पापचेतसम् ।

शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ॥ २ ॥

हे यज्ञेन्द्र ! तुम इस दुष्ट और पापी रावण को मार कर युद्ध-प्रिय वीर यज्ञों की रक्षा करो ॥ २ ॥

एवमुक्तो महावाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः ।

वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ ३ ॥

यह चर्चन सुन, दुर्जय महावीर माणिभद्र यज्ञ चार हज़ार यज्ञों की सेना को साथ ले, राज्ञों से युद्ध करने लगा ॥ ३ ॥

ते गदामुसलप्रासैः शक्तिरोमरमुदगरैः ।

अभिधनन्तस्तदा यक्षा राक्षसान्समुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

यक्ष लोग गदाओं, मूसलों, प्रासों, शक्तियों, और मुग्धरों का प्रहार करते हुए, राक्षसों के ऊपर आकरण करने लगे ॥ ४ ॥

कुर्वन्तस्तुमुलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु ।

बाढं प्रयच्छ नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ॥ ५ ॥

उन लोगों ने महाभयझुर युद्ध किया । “बहुत अच्छा, युद्ध (अर्थात् मेरे साथ लड़) दे, ”“नहीं चाहता, दे” आदि वीरोचित भाषण करते यक्ष और राक्षस शीघ्रगामो बाज पक्षी की तरह मँडरा मँडरा कर लड़ने लगे ॥ ५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा क्रुष्यो ब्रह्मवादिनः ।

दृष्टा तत्तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागम्भत् ॥ ६ ॥

ब्रह्मवादी ऋषि, देवता और गन्धर्व उस तुमुल युद्ध को देख कर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ६ ॥

यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ।

महोदरेण चानिदं सहस्रमपरं हतम् ॥ ७ ॥

क्रुद्धेन च तदा राजन्मारीचेन युयुत्सुना ।

निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥

किन्तु प्रहस्त ने हज़ार यक्षों को तथा महोदर ने भी एक हज़ार यक्षों को मार डाला । हे राजन् ! निमेषमात्र में क्रोध में भर और युद्ध करते हुए मारीच ने दो हज़ार यक्षों को मार गिराया ॥ ७ ॥ ८ ॥

क च यक्षार्जं युद्धं कच माया वलाश्रयम् ।

रक्षसां पुरुषव्याघ तेन तेऽभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥

हे पुरुषव्याघ्र ! राज्ञसों का युद्ध माया के बल से होता था और यज्ञों का युद्ध सरलता से युक्त था । अतएव इन दोनों के युद्ध में राज्ञस लोग यज्ञों से प्रवल थे ॥ ६ ॥

**धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।**

**मुसलेनोरसि क्रोधात्ताडितो न च कम्पितः ॥ १० ॥**

कुछ ही देर बाद धूम्राक्ष ने क्रोध में भर माणिभद्र की छाती में एक मूसल मारा ; किन्तु वह उस चेष्ट से काँपा तक नहीं ॥ १० ॥

**ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।**

**धूम्राक्षस्ताडितो मूर्धिन विह्वलः स पपात ह ॥ ११ ॥**

प्रथ्युत उसने भी गदा उठा कर धूम्राक्ष के मिर पर मारी, जिसके प्रहार से धूम्राक्ष विह्वल हो गिर पड़ा ॥ ११ ॥

**धूम्राक्षं ताडितं दृष्टा पतितं शोणितोक्षितम् ।**

**अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥ १२ ॥**

गदाप्रहार से लाडित और रुधिर से नहाये हुए धूम्राक्ष को पृथिवी पर गिरते देख, रावण माणिभद्र के सामने लड़ने को गया ॥ १२ ॥

**संक्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम् ।**

**शक्तिभिस्ताडयामास तिसुभिर्यक्षपुङ्गवः ॥ १३ ॥**

तब यज्ञश्रेष्ठ माणिभद्र ने क्रोध में भर अपने ऊपर झटकते हुए रावण के तीन शक्तियाँ मारीं ॥ १३ ॥

तादितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरदणे ।  
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पाश्वमागतम् ॥ १४ ॥

रावण ने उन शक्तियों के प्रहार से पोड़ित हो, माणिभद्र के मुकुट पर प्रहार किया। उस प्रहार से यक्ष का मुकुट एक और नीचे गिर पड़ा ॥ १४ ॥

ततः प्रभृति यक्षो सौ पाश्वमौलिरभूत्किल ।  
तस्मिस्तु विमुखीभूते माणिभद्रे महात्मनि ।  
संनादः सुमहान् राजंस्तमिन्शैलेव्यवर्धत ॥ १५ ॥

उसी समय से वह यक्ष “पाश्वमौलि” कहलाने लगा। उस महाबलवान माणिभद्र के युद्ध से विमुख होने पर, हे राजन्! कैलास पर्वत पर राज्ञों ने सिंहनाद किया ॥ १५ ॥

ततो दूरात्प्रददशे धनाध्यक्षो गदाधरः ।  
शुक्रप्रौष्टपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ॥ १६ ॥

इतने में हाथ में गदा लिये कुबेर भी दिखलाई पड़े। उनके साथ ख़जाने की रक्षा करने वाले शुक्र और प्रौष्टपद नाम के दो मंत्री भी थे। पद्म और शङ्ख नामक दो ख़जाने के देवता भी उनके साथ थे ॥ १६ ॥

स दृष्टा भ्रातरं संख्ये शापाद्विभ्रष्टः गौरवम् ।  
उवाच वचनं धीमान्युक्तं पैतामहे कुले ॥ १७ ॥

१ शङ्खपद्मसमावृतः—शङ्खपद्मनिध्यभिमानिदेवैः संवृतः । (गो०)

२ विभ्रष्टगौरवः—वन्दनादिप्रयोजकज्येष्ठगौरवरहितः । (गो०)

उन्होंने अपने क्वाटे भाई उस रावण को देखा जो अपने पिता के शाप से शापित था तथा जिसने ज्येष्ठ भ्राता को प्रणामादि करने का शिष्टाचार परित्याए कर दिया था । रावण को देख, कुबेर जी ने पितामह-कुलाचित कथनानुसार उससे कहा ॥ १७ ॥

यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मते ।

पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥ १८ ॥

हे दुर्मते ! मेरे बरजने पर भी तू नहीं मानता । इसका फल पा कर जब तू नरक में जायगा तब तुझे सूक्ष पड़ेगा ॥ १८ ॥

ये हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः ।

स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ १९ ॥

विशेष कर जो दुर्बुद्धि अज्ञान वश विषपान कर लेता है, उसको पीछे से उस कर्म का फल प्राप्त होता है अथवा उसको पीछे उस कर्म का फल जान पड़ता है ॥ १९ ॥

दैवतानि न नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ।

येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तत्त्वं न बुद्धयसे ॥ २० ॥

इन दिनों तू कोई भी अच्छा कर्म नहीं कर रहा, इसीसे तेरे ऊपर देवता लोग अप्रसन्न हैं । अतः तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है और स्वभाव में कूरता आ रही है । तुझे स्वर्य ये बातें नहीं जान पड़तीं ॥ २० ॥

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यवै ।

स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥ २१ ॥

जो पुरुष माता पिता, ब्राह्मण और श्राचार्य का अपमान करता है, वह जब प्रेतराज यमराज के वश में पड़ता है, तब उसे अपने किये का फल प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोर्जनम् ।

स पश्चात्प्यते मूढो मृतो गत्वात्मनो गतिम् ॥ २२ ॥

जो इस नाशवान शरीर से तप नहीं करता, वह मूढजन मरने पर अपने कर्म से प्राप्त अपनी गति को पा कर, सन्तापित होता है ॥ २२ ॥

कस्यचिन्नहि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ २३ ॥

किसी भी दुर्बुद्धि जन को आप ही आप सुमात नहीं उपजती । वह जैसे कर्म करता है वैसा ही उसे फल भी मिलता है ॥ २३ ॥

ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान्वितं शूरत्वमेव च ।

प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥ २४ ॥

एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।

न त्वां समभि भाषिष्येऽसद् वृत्तेष्वेष निर्णयः ॥ २५ ॥

सब लोग अपने ही पुण्यकर्मों से धन, रूप, बल, पुत्र, सम्पत्ति और शूरता पाते हैं । किन्तु तू तो नरकगामी है । क्योंकि तेरी बुद्धि ही ऐसी है । अतः मैं तुझसे अधिक बातचीत नहीं करूँगा । क्योंकि बुद्धिमानों का सिद्धान्त है कि, मूर्ख के साथ अधिक बातालाप न करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः ।

मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्धुः ॥ २६ ॥

यह कह कर, कुबेर ने रावण के मारीचादि मंत्रियों पर ऐसा प्रहार किया कि, वे धायल हो, रण छोड़ भाग गये ॥ २६ ॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ।

गदयाभिहतो मूर्धिन न च स्थानात्प्रकम्पितः ॥ २७ ॥

जब मंत्री लोग भाग गये, तब महाबलवान् कुबेर जो ने रावण के मस्तक पर गदा से प्रहार किया; किन्तु रावण अपने स्थान से चलायमान न हुआ ॥ २७ ॥

ततस्तौ राम निघन्तौ तदान्योन्यं महामृषे ।

न विहृलौ न च श्रान्तौ तावुभौ यक्षराक्षसौ ॥ २८ ॥

हे राम ! उस समय यक्ष और राक्षस दोनों परस्पर प्रहार करने लगे। लड़ते लड़ते उन दोनों में से एक भी न तो घबड़ाया ही और न थका ही ॥ २८ ॥

अग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा ।

राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ २९ ॥

तब कुबेर ने रावण के ऊपर अग्नेयास्त्र चलाया। इसे राक्षस-राज रावण ने वारुणास्त्र चला कर शान्त कर दिया ॥ २९ ॥

ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः ।

रूपाणां शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ॥ ३० ॥

तदनन्तर रावण ने राक्षसी माया फैलायी और कुबेर का नाश करने के लिये सैकड़ों हज़ारों रूप धारण किये ॥ ३० ॥

व्याघ्रो वराहो जीमूतः पर्वतः सागरो द्रुमः ।

यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोऽहश्यत दशाननः ॥ ३१ ॥

रावण उस समय व्याघ्र, शूकर, मेघ, पर्वत, सागर, वृक्ष, यद और दैत्य के रूपों में दिखलाई पड़ने लगा ॥ ३१ ॥

बहूनि च करोति स्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः ।  
प्रतिगृह्ण ततो राम महदस्त्रं दशाननः ।  
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविद्ध्य महतीं गदाम् ॥ ३२ ॥

उस समय रावण के इस प्रकार के बहुत से रूप दिखलाई पड़ते थे, किन्तु उसका असली रूप अद्भुत था । हे राम ! तदनन्तर रावण ने बड़ा भारी अस्त्र ले, कुबेर की बड़ी गदा को विद्ध किया और उनके मस्तक पर प्रहार किया ॥ ३२ ॥

एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ।  
कृतमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ॥ ३३ ॥

कुबेर उसके उस प्रहार से विह्वल हो गये और रक्त की धार बहाते हुए, जड़ कटे हुए अशोक वृक्ष की तरह पृथिवी पर धड़ाम से गिर पड़े ॥ ३३ ॥

ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदा वृतः ।  
धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ॥ ३४ ॥

तब पद्मादि निधि देवताओं ने कुबेर को उठा कर नन्दनवन में पहुँचाया और वहाँ उनको सचेत किया ॥ ३४ ॥

निजित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ।  
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार रावण ने धनेश्वर कुबेर को पराजित कर, हर्षित अन्तःकरण से जयचिन्हस्वरूप, उनका पुष्पकविमान छीन लिया ॥ ३५ ॥

काश्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ।

मुक्ताजालप्रतिच्छब्दं सर्वकालफलद्रुमम् ॥ ३६ ॥

पुष्पक विमान में सोने के खंभे थे और वह पन्नों के तोरणों से सुशोभित था । मोतियों का उघार उसके ऊपर पड़ा हुआ था । उसमें ऐसे फलदार वृक्ष भी थे, जो सब मृतुओं में फला करते थे ॥ ३६ ॥

मनोजवं कामगमं कामरूपं विहङ्गमम् ।

मणिकाश्चनसोपानं तसकाश्चनवेदिकम् ॥ ३७ ॥

मन जैसी उसकी तेज़ चाल थी । वह इच्छानुसार चलने वाला, कामरूपी पक्षी की तरह उड़ने वाला था । उसकी सोने की मणियों से जड़ी हुई सीढ़ियाँ थीं और सोने की उसमें बैठकें बनी हुई थीं ॥ ३७ ॥

देवोपवाह्यमक्षयं सदा दृष्टिमनःसुखम् ।

बह्वाश्र्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा<sup>१</sup> परिनिर्मितम् ॥ ३८ ॥

वह देवताओं के बैठने योग्य नाशरहित तथा मन और नेत्रों को सुखदायी था । उसमें बड़ी अद्भुत कारीगरी की गयी थी और ब्रह्मा जी की आङ्गा से विश्वकर्मा ने उसे बनाया था ॥ ३८ ॥

निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ।

न तु शीतं न चोष्णं च सर्वतुसुखदं शुभम् ॥ ३९ ॥

यह विमान समस्त मनोरथों को पूरा करने वाला और उपमा रहित था । न उसमें विशेष सदीं थी और न विशेष गर्मी ही—प्रत्युत वह शुभ विमान सब मृतुओं में सुखदायी था ॥ ३९ ॥

स तं राजा समाख्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ।

जितं त्रिभुवनं मेने दर्पात्सेकात्सुदुर्मतिः ।

जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात्समवातरत् ॥ ४० ॥

उस पर सवार हो दुर्मति राक्षसराज रावण ने गर्व के बश में हो अपने मन में निश्चय कर लिया कि, अब मैंने तीनों लोक जीत लिये । रावण, इस प्रकार वैश्रवण ( कुवेर ) को जीत कर, कैलास पर्वत से उतर कर नीचे आया ॥ ४० ॥

स्वतेजसा विपुलमवाप्य तं जयं

प्रतापवान्विमल किरीट हारवान् ।

राज वै परमविमानमास्थिते

निशाचरः सदसि गतो यथाऽनलः ॥ ४१ ॥

इति पञ्चदशः सर्गः ॥

प्रतापी राक्षस रावण अपने बल पराक्रम से उस बड़ी भारी जीत को पा कर, विमल किरीट और हार से शोभायमान हो, उत्तम विमान पर सवार हो, वेदोपरस्थित अग्नि के समान सुशोभित हुआ ॥ ४१ ॥

उत्तरकाण्ड का पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—:\*:—

षोडशः सर्गः

—:०:—

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः ।

महासेनप्रसूतिं तद्यथौ शरवणं महत् ॥ १ ॥

हे राम ! रावण अपने भाई कुबेर को इस तरह जीत कर, वह स्वामिकार्तिक के उत्पत्तिस्थान, सरहरी के जंगल में छुम गया ॥ १ ॥

अथापश्यदशग्रीवो रौकमं शरवणं महत् ।

गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥

वहाँ जा, उसने देखा कि, वह सोने की सरहरी का बन बड़ा विचित्र है और किरणों से युक्त एक दूसरे सूर्य की तरह चमचमा रहा है ॥ २ ॥

स पर्वतं समारुद्ध कञ्चिद्रम्य वनान्तरम् ।

प्रेषते पुष्पकं तत्र राम विष्टमिभतं तदा ॥ ३ ॥

हे राम ! इस रमणोय बनयुक्त पर्वत पर चढ़ कर, रावण ने देखा कि, वहाँ पुष्पक विमान की गति रुक गयी है ॥ ३ ॥

विष्टब्धं किमिदं कस्मान्नागमत्कामगं कृतम् ।

अचिन्तयद्राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥ ४ ॥

किञ्चिमित्तं चेच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ।

पर्वतस्योपरिष्टस्य कर्मेदं कस्यचिद्गवेत् ॥ ५ ॥

तब तो राज्ञसराज्ञ रावण बड़ा विस्मित हुआ और विचारने लगा कि, यह विमान तो कामगामी है, निस पर भी यह आगे क्यों नहीं बढ़ता — इसका कारण क्या है ? वह अपने मन्त्रियों के साथ परामर्श कर कहने लगा कि, यह विमान अभी तक तो मेरी इच्छा के अनुसार चला आता था, पर अब नहीं चलता — सो इसका क्या कारण है ? मेरी जान में तो इस पर्वत पर रहने वाले किसी का यह काम है ॥ ४ ॥ ५ ॥

ततोऽब्रवीत्तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः ।  
नेदं निष्कारणं राजन्पुष्पकं यन्न गच्छति ॥ ६ ॥  
अथवा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम् ।  
अतो निस्पन्दमभवद्नाध्यक्षविनाकृतम् ॥ ७ ॥

हे राम ! तब बुद्धिमान मारीच ने कहा कि, हे राजन् ! विना किसी कारण के तो यह रुक नहीं सकता । सम्भव है यह कुबेर को छोड़ दूसरे को न ले जा सकता हो । इसी कारण से इसकी चाल रुक गयी हो ॥ ६ ॥ ७ ॥

इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः ।  
वामनो विकटो मुण्डी नन्दी हस्यभुजो बली ॥ ८ ॥  
ततः पाश्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत् ।  
नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥ ९ ॥

इवर रावणादि इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि, अति कराल रूप, काले पीले रंगों वाले, बहुत छोटे ढीलडौल के नन्दीश्वर देख पड़े । वे बड़े विकट थे, मूँङ्ग मुँङ्गाये थे और छोटी छोटी उनकी भुजाएँ थीं । वे भगवान् शिव की सेवा में सदा लगे रहते थे । उन्होंने रावण के निकट जा कर निर्भीक हो उससे कहा ॥ ८ ॥ ९ ॥

निवर्त्स्य दशग्रीव शैले क्रीडति शङ्करः ।  
सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १० ॥  
सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः ।  
इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात्कम्पितकुण्डलः ॥ ११ ॥

रोषात् ताप्रनयनः पुष्पकादवरुद्धं सः ।

कोर्यं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥ १२ ॥

हे दशग्रीव ! शिव जी यहाँ कीड़ा कर रहे हैं । अतः तू यहाँ से चला जा । गरुड़, नाग, यज्ञ, देवता, गन्धर्व और राज्ञस केर्ही भी जीवधारी इस पर्वत पर नहीं जा सकता, नन्दि के इन बच्चों को सुन रावण मारे क्रोध के आग बबूला हो गया, उसके नेत्र लाल हो गये । वह अपने कुण्डलों को हिलाता हुआ पुष्पक विमान से उत्तर पड़ा और यह कहता हुआ कि, “यह कौन शङ्कर हैं ? पहाड़ के नीचे आया ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ।

दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ १३ ॥

रावण ने देखा कि, वहाँ नन्दी चमचमाता शूल उठाये दूसरे महादेव की तरह शङ्कर जी के निकट ही खड़े हैं ॥ १३ ॥

तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः ।

प्रहासं मुमुक्षे तत्र सतोय इव तोयदः ॥ १४ ॥

वानर जैसा नन्दीश्वर का मुख देख, रावण उनका अपमान करता हुआ, अद्वास कर ऐसा हँसा, मानों वादल गरजता हो ॥ १४ ॥

तं क्रुद्धो भगवान्नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः ।

अब्रवीत्तत्र तद्रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥ १५ ॥

शिव जी की साक्षात् दूसरी मूर्ति नन्दीश्वर, रावण को हँसते देख, बड़े कुपित हुए और वहाँ उपस्थित रावण से बोले ॥ १५ ॥

यस्माद्वानररूपं मामवज्ञाय दशानन् ।

अशनीपातसङ्काशमपहासम्प्रमुक्तवान् ॥ १६ ॥

हे दशानन् ! मेरे वानर रूप को अवज्ञा कर, वज्राघात के समान तुने जो अद्वृहास किया है ॥ १६ ॥

तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः ।

उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १७ ॥

सो मेरे समान पराक्रमी और तुल्य रूप वाले और तेजस्वी वानर तेरे वंश का मूलेऽच्छ्रेद करने के लिये उत्पन्न होंगे ॥ १७ ॥

नखदंष्ट्रायुधाः क्रूरा मनःसम्पातरंहसः ।

युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ॥ १८ ॥

वे नखों और दाँतों को आयुध बनाये हुए वानर, मन की तरह शीघ्रगामी, रणोन्मत्त, पर्वत की तरह विशाल शरीरधारी और बलवान होंगे ॥ १८ ॥

ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं<sup>१</sup> च पृथग्विधम् ।

व्यपनेष्यन्ति सम्भूय सहामात्यसुतस्य च ॥ १९ ॥

तेरे इस प्रबल अहङ्कार और शारीरिक बल के घमंड को वे ही दूर करेंगे । वे तेरा ही नहीं ; बलिक तेरे मंत्रियों और पुत्रों का भी दर्प खर्व करेंगे ॥ १९ ॥

किंत्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर ।

न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥२०॥

<sup>१</sup> दर्पः—आन्तरः । ( रा० ) २ उत्सेधः—शारीरः । ( रा० )

हे राज्ञ ! यद्यपि मैं तुझे इसी समय मार डालता, तथापि मैं तुझे मारना नहीं चाहता क्योंकि तू अपने बुरे कर्म से पहिले ही मर चुका है । मरे को मारना उचित नहीं ॥ २० ॥

इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन्महात्मनि ।  
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्युता ॥ २१ ॥

महात्मा नन्दीश्वर ने ज्योंही ये वचन कहे, त्योंही देवताओं ने नगाड़े बजाये और आकाश से फूलों की वर्षा हुई ॥ २१ ॥

अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महावलः ।  
पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ॥ २२ ॥

महावलवान् रावण नन्दीश्वर के इस शाप की कुछ भी परवाह न कर और पर्वत के निकट जा ये वचन बोला ॥ २२ ॥

पुष्पकस्य गतिशिष्ठञ्चा यत्कृते भम गच्छतः ।  
तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥ २३ ॥

हे वृषभपते रुद्र ! तुम्हारे जिस पर्वत के कारण मेरे पुष्पक विमान की चाल बंद हो गयी है, उसे मैं उखाड़ कर फैंके देता हूँ ॥ २३ ॥

केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत् ।

विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ २४ ॥

शिव किस बलबूते पर नित्य राजाओं की तरह क्रीड़ा किया करते हैं ? क्या उनको यह नहीं मालूम कि, उनके लिये भय का

कारण उपस्थित है । यह तो उनको जान ही लेना उचित है (अथवा यह बात मुझे उनको जाना देना आवश्यक है) ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान्विक्षिप्य पर्वते ।

तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत ॥ २५ ॥

हे राम ! यह कह कर, दशानन ने तुरन्त अपनी भुजाएँ पर्वत के नीचे घुसेड़ दीं और वह पर्वत को उठाने लगा । तब वह पर्वत कांपने लगा अथवा हिला ॥ २५ ॥

चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः ।

चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २६ ॥

पर्वत के हिलने से महादेव जी के समस्त गण कांप गये । पार्वती जी भी घबड़ा कर महादेव जी के शरीर से लिपट गयीं ॥ २६ ॥

ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः ।

पादागुड्ढेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥ २७ ॥

हे राम ! तब तो देवताओं में अतिश्रेष्ठ महादेव जी ने विना किसी प्रयास के अपने पैर के अंगूठे से उस पर्वत को दबा दिया ॥ २७ ॥

पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्तंभोपमा भुजाः ।

विस्मिताश्चाभवस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २८ ॥

पर्वत के दबाते ही रावण की खंभों की तरह भुजाएँ, जो उस पर्वत के नीचे थीं, पिचने लगीं । यह देख दशग्रीव के मंत्रिगण विस्मित हुए ॥ २८ ॥

\* पाठान्तरे—“शैलं स शैलः” ।

रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात्था ।  
मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ॥२९॥

तब कोध से तथा भुजाओं के पिचने से दशग्रीव इतनी झोर से चिल्हाया कि, उसके उस चोतकार से तीनों लोक थर्य उठे ॥ २६ ॥

मेनिरे वज्रं निष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ।  
तदा वर्त्मसु चलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥

दशानन के मंत्रियों ने इस शब्द को सुन कर समझा कि, मानों प्रलयकाल में वज्रपात होने जैसा शब्द हुआ । इन्द्रादि देवता अपने मार्ग से विचलित हो गये ॥ ३० ॥

समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ।  
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥३१॥

समुद्र खलबला उठा और पर्वत कीप उठे । यक्ष, विद्याधर और सिद्ध विस्मित हो कहने लगे—“यह क्या हुआ ?” ॥ ३१ ॥

तोषयस्य महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् ।  
तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ॥ ३२ ॥

दशानन के मंत्रियों ने उससे कहा—हे दशानन ! तुम उमापति नीलकण्ठ महादेव को (स्तुति द्वारा) प्रसन्न करो । चिना इनके यहाँ तुम्हारी रक्षा का अन्य कोई उपाय हमें नहीं सूझ पड़ता ॥३२॥

स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ।  
कृपालुः शङ्करस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥ ३३ ॥

तुम न प्र हो कर उनकी स्तुति करो (अथवा उनके सामने गिड्गिडाओ ) और उनके शरण में जाओ । महादेव जी बड़े कृपालु हैं । वे सन्तुष्ट हो कर तुम पर प्रसन्न हो जायगे ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।

सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशानन ।

संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार की मंत्रियों की बातें सुन, दशानन ने शिव जी को प्रणाम किया और सामवेद के विविध मंत्रों से वह उनकी स्तुति करने लगा । जब इस प्रकार रोते और गिड्गिडाते उसे एक हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्टितं प्रभुः ।

मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम् ॥ ३५ ॥

तब उस शैल पर विहार करते हुए श्रीमहादेव जी रावण से सन्तुष्ट हुए । उन्होंने उस पर्वत के नीचे से उसे अपनी भुजाएँ निकाल लेने दीं और हे राम ! तब वे दशानन से बोले ॥ ३५ ॥

प्रीतोस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन ।

शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वयारावः सुदारुणः ॥ ३६ ॥

यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम् ।

तस्मात्वं रावणो नाम नाम्ना राजन्भविष्यसि ॥ ३७ ॥

हे वीर दशानन ! मैं तेरी वीरता से तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ । हे राजन् ! पर्वत की दाव से भुजाओं के पिच्छे पर तूने चीकार किया और उसको सुन तीनों लोक थर्रा उठे । अतः आज से तेरा नाम रावण होगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।

एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥ ३८ ॥

देवता, मनुष्य, यक्ष तथा अन्य प्राणी जो पृथिवी पर हैं, वे सब तुझको लोगों का हताने वाला रावण कह कर पुकारेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विस्तव्यं पथा येन त्वमिच्छसि ।

मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

हे पुलस्त्यनन्दिन ! अब तुम जिस रास्ते से जाना चाहते हो उससे निर्भय हो चले जाओ । मैं तुमको आज्ञा देता हूँ । हे राक्षसनाथ ! अब तुम जहाँ जाना चाहते हो जाओ ॥ ३९ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्घेशः शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।

प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥ ४० ॥

जब श्रीमहादेव जो ने इस प्रकार कहा, तब लङ्घेश्वर रावण कहने लगा—हे महादेव ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं जो वर माँगता हूँ, सो दीजिये ॥ ४० ॥

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ।

राक्षसैर्गुह्यकैनगैर्ये चान्ये वलवत्तराः ॥ ४१ ॥

हे प्रभो ! देवताओं, गन्धर्वों, दानवों, राक्षसों, गुह्यकों, नागों से तथा अन्य वलवान प्राणधारियों से तो मैं अवश्य हूँ ही, अर्थात् इनमें से मुझे कोई नहीं मार सकता ॥ ४१ ॥

मानुषान्न गणे देव स्वल्पास्ते मम सम्पताः ।

दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ।

वाञ्छितं चायुषः शेषं शत्रुं त्वं च प्रयच्छ मे ॥ ४२ ॥

और मनुष्यों को मैं कुछ गिनता ही नहीं । हे त्रिपुरान्तक !  
ब्रह्मा जी से मैं दीर्घायु भी प्राप्त कर चुका हूँ । अब जो मेरी आयु  
शेष रह गयी है वह मेरे किसी भी कर्म से नष्ट न हो । इसके  
अतिरिक्त आप मुझे एक शख्त भी दीजिये ॥ ४२ ॥

एवमुक्तस्तस्तेन रावणेन स शङ्करः ।

ददौ खङ्गं महादीसं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ॥ ४३ ॥

जब रावण ने इस प्रकार श्रीमहादेव जी से कहा, तब श्रीमहा-  
देव जी ने चन्द्रहास नाम की एक चमचमाती तलवार रावण  
को दी ॥ ४३ ॥

आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

तथा भूतनाथ श्रीमहादेव जी ने (रावण के प्रार्थनानुसार)  
उसे शेष आयु भी दी ॥ ४४ ॥

दत्त्वोवाच ततः शम्भुर्नार्वज्ञेयमिदं त्वया ।

अवज्ञातं यदि हि ते मायेवैष्यत्यसंशयः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार तलवार और वर दे कर श्रीमहादेव जी बोले कि  
हे रावण ! इस तलवार का कभी अनादर मत करना । यदि  
अनादर किया तो यह तलवार मेरे वास चली आवेगी । इसमें  
कुछ भी संशय नहीं है ॥ ४५ ॥

एवं महेश्वरेणैव कुतनामा स रावणः ।

अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

श्रीमहादेव जी से इस प्रकार अपना “रावण” नाम धरा  
कर और उनको प्रणाम कर, दशग्रीव पुष्पक विमान पर सवार  
हुआ ॥ ४६ ॥

ततो महीतलं राम पर्यक्रामत रावणः ।

क्षत्रियान्सुमहावीर्यान्वाधमानस्तस्ततः ॥ ४७ ॥

हे राम ! तदनन्तर रावण पृथिवीतल पर घूम कर बड़े बड़े बलवान और पराक्रमी क्षत्रियों को सताने लगा ॥ ४७ ॥

केचित्तेजस्तिनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।

तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ॥ ४८ ॥

कितने ही तेजस्वी, शूरवीर और युद्ध में दुर्मद क्षत्रिय इसकी आज्ञा न मानने के कारण सपरिवार मारे गये ॥ ४८ ॥

अपरेदुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसम्मताः ।

जिताः स्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ॥ ४९ ॥

इति षोडशः सर्गः ॥

अन्य चतुर पवं समझदार राजाओं ने बलगर्वित रावण को दुर्जय जान कर, उससे अपनी हार मान ली ॥ ४६ ॥

उत्तरकाण्ड का सोलहवाँ सर्ग पुरा हुआ ।

—:\*:—

सप्तदशः सर्गः

—\*—

अथ राजन्महावाहुर्विचरन्पृथिवी तले ।

हिमवद्वनमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥

हे राम ! यह महाबली रावण इस प्रकार घूमता फिरता एक दिन हिमालय के बन में पहुँचा और वहाँ घूमने लगा ॥ १ ॥

तत्रापश्यत्स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् ।

\*आर्षण विधिना युक्तां दीप्यन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥

वहाँ उसने एक कन्या देखी जो मृगचर्म धारण किये हुए थी, तपोनुष्ठान में निरत थी और साक्षात् देवकन्या के समान देदीप्यमान थी ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।

काममोहपरीतात्मा प्रपञ्चं प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उस सुन्दरी और महाव्रत करने वाली कन्या को देख, रावण ने कामदेव से पीड़ित हो, मुस्क्या कर उससे पूँछा ॥ ३ ॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।

न हि युक्ता तवैतस्य रूपस्यैवं प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

हे भद्रे ! इस समय तुम जो कर्म कर रही हो, वह तो तुम्हारी इस जवानी के विरुद्ध है । विशेष कर यह आचरण तुम्हारे इस रूप के योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

रूपं तेऽनुपमं भीरुं कामोन्मादकरं नृणाम् ।

न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥

हे भीरु ! तुम्हारा यह सौन्दर्य तो मनुष्यों को कामोन्मत्त करने वाला है । अतः यह उचित नहीं जान पड़ता कि, तुम तप करो । अतः तुम अपने इस तप करने के निश्चय को अर्थात् सङ्कल्प को त्याग दो ॥ ५ ॥

कस्यासि किमिदं भद्रे कथं भर्ता वरानने ।

येन सम्भुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग्मुवि ॥ ६ ॥

हे भद्रे ! तुम किस की बेटी हो ? यह क्या कर रही हो ? हे वरानने ! तुम्हारा पति कौन है ? हे भीरु ! तुम्हारे साथ जो सम्भोग करता होगा वह पुरुष इस पृथिवीतल पर बँडा पुण्यवान होगा ॥ ६ ॥

पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः परिश्रमः ।

एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ॥ ७ ॥

अब्रवीद्विधिवत्कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ।

कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ।

बृहस्पतिसुतः श्रीमान्बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ॥ ८ ॥

मैं तुझसे पूँछता हूँ। समस्त वृत्तान्त तू बतला कि, तू किसके लिये यह इतना परिश्रम कर रही है ? जब रावण ने उससे इस प्रकार पूँछा, तब वह यशस्विनी पवं तपस्विनी कन्या रावण का विधिवत् आतिथ्य कर बोली—बृहस्पति के पुत्र बुद्धि में बृहस्पति जी ही के समान, अमित प्रभावन् कुशध्वज नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ।

सम्भूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मता ॥ ९ ॥

वे महात्मा नित्य ही वेदाभ्यास करते थे। मैं उन्हींकी वाणी रूप कन्या हूँ। मेरा नाम वेदवती है ॥ ९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।

ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ॥ १० ॥

देवता, गन्धर्व, यज्ञ, राज्ञस और नाग मेरे पिता के पास जा कर, मेरे साथ विवाह करने की प्रार्थना करते ॥ १० ॥

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेश्वर ।

कारणं तद्विष्यामि निशामय महाभुज ॥ ११ ॥

परन्तु हे राज्ञसेश्वर ! पिता जी ने उन लोगों के साथ मेरा विवाह न किया । हे महावीर ! इसका कारण मैं कहती हूँ, तुम सुनो ॥ ११ ॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ।

अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ॥ १२ ॥

मेरे पिता चाहते थे कि, उनके जामाता सुरेश्वर विष्णु हों । अतः वे दूसरे के साथ मेरा विवाह करना नहीं चाहते थे ॥ १२ ॥

दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ।

शम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ॥ १३ ॥

जब पिता ने विष्णु के साथ मेरा विवाह करने की इच्छा प्रकट की ; तब यह बात सुन कर बलगर्वित दैत्येन्द्र शम्भु बड़ा कुपित हुआ ॥ १३ ॥

तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥

और एक दिन रात में जब मेरे पिता से रहे थे, तब उस पापी ने आ कर सोते मैं ही उनको मार डाला ॥ १४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।

परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हृष्यवाहनम् ॥ १५ ॥

तब मेरी महाभागा माता ने दुखी हो पिता को लोथ के साथ  
लिपट कर अग्नि में प्रवेश किया ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।  
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्धहे ॥ १६ ॥

तब मैंने सोचा कि नारायण के विषय में मेरे पिता का जो  
सङ्कल्प था, उसे मैं पूरा करूँ । यही विचार कर मैं हृदय से उसी  
काम को पूरा करने में लगी हूँ ॥ १६ ॥

इति प्रतिज्ञामाख्यं चरामि विपुलं तपः ।  
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुज्ज्व ॥ १७ ॥

हे राजेश्वर ! इस प्रतिज्ञा के अनुसार ही मैं यह कठोर तप  
कर रही हूँ । जो असली बात थी सो मैंने तुमसे कह दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ।  
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

श्रीनारायण जी मेरे पति हैं, उन पुरुषोत्तम को छोड़ श्रौर  
कोई मेरा पति नहीं हो सकता । अतः श्रीनारायण को अपना पति  
बनाने के लिये मैं यह घोर तप कर रही हूँ ॥ १८ ॥

विज्ञातस्त्वं हि मे राजनगच्छ पौलस्त्यनन्दन ।  
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १९ ॥

हे राजन ! मैंने तुमको जान लिया कि, तुम पौलस्त्यनन्दन  
हो । अब तुम यहाँ से चले जाओ । मैं अपने तपोबल से तीनों  
लोकों में जो कुछ हो रहा है सो सब जानती हूँ ॥ १९ ॥

सेब्रवीद्रावणे भूयस्तां कन्या सुमहावताम् ।

अवरुद्ध विमानाग्रात्कन्दर्पशरपीडितः ॥ २० ॥

यह सुन कर कामवाण से पीड़ित रावण विमान से उतर कर, महावत धारण किये हुए उस कन्या से कहने लगा ॥ २० ॥

अवलिप्ताऽसि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदशी ।

बृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसञ्चयः ॥ २१ ॥

हे सुश्रोणि ! तुझे अपने रूप का गर्व है, इसीसे तू नहीं जानती कि तुझे क्या करना चाहिये, क्या नहीं, और इसीसे तेरी ऐसी बुद्धि हो रही है । हे मृगशावाक्षि ! तपस्यादि पुण्यप्रद कार्यों का करना बुद्धापे में अच्छा लगता है ॥ २१ ॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुपीदशम् ।

त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ॥ २२ ॥

तू तो सर्वगुणसम्पन्न है । तुझे ऐसा कहना नहीं साहता । तू तो त्रैलोक्यसुन्दरी है । हे भीरु ! तेरी यह ज्वाही निकली जा रही है ॥ २२ ॥

अहं लङ्घापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।

तस्य मे भवभार्या त्वं भुक्ष्व भोगान्यथासुखम् ॥ २३ ॥

हे भद्रे ! मैं लङ्घेश्वर दशग्रीव हूँ । तू मेरी भार्या बन जा और यथेष्ट सुखों को भोगा कर ॥ २३ ॥

कश्तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।

वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ।

स मया नो समो भद्रे यं त्वं कामयसेङ्गने ॥ २४ ॥

हे भद्रे ! वह विष्णु कौन है, जिसका तूने वर्णन किया है । जिसको तू चाह रही है वह कोई क्यों न हो ; किन्तु वह पराक्रम, तप, भेग, और बल में मेरे समान कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इत्युक्तवति तस्मिस्तु वेदवत्यथ सा ब्रवीत् ।

मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ॥ २५ ॥

जब रावण ने इस प्रकार कहा, तब वेदवतो ने उससे कहा—  
तुम विष्णु के विषय में ऐसा मत कहो ॥ २५ ॥

त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्तुतम् ।

त्वद्वते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ॥ २६ ॥

क्योंकि भगवान् विष्णु त्रैलोक्याधिपति हैं और सब के पूज्य हैं । तुम्हारे सिवाय दूसरा और कौन बुद्धिमान् होगा, जो उनका इस प्रकार अपमान करा ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः ।

मूर्धजेषु तदा कन्या कराग्रेण परामृशत् ॥ २७ ॥

वेदवती के इन वचनों को सुन, रावण ने अपने हाथ से उसकी चाढ़ी पकड़ी ॥ २७ ॥

ततो वेदवती क्रुद्धा केशान्हस्तेन साच्छिनत् ।

असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छन्नास्तदा करोत् ॥ २८ ॥

इस पर वेदवती ने क्रोध में भर अपने हाथ से अपने बाल काट डाले । क्योंकि उस समय उसका हाथ तलधार रूप हो गया था ॥ २८ ॥

सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम् ।

उवाचाग्नि समाधाय मरणाय कुतत्वरा ॥ २९ ॥

वेदवतो क्रोध से जखती हुई और मरने के लिये आतुर होने के कारण आग जला, रावण को भस्म करती हुई सी बोली ॥ २६ ॥

धर्षितायास्त्वयाऽनार्थं न मे जीवितमिष्यते ।

रक्षस्तस्मात्प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥ ३० ॥

अरे नोच ! तूने मेरा अंग स्पर्श किया है, अतः मैं अब जीना नहीं चाहती और मैं अब तेरे सामने ही अग्नि में प्रवेश करती हूँ ॥ ३० ॥

यस्मात् धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।

तस्मात्व वधार्थं हि समुत्पत्स्यत्यहं पुनः ॥ ३१ ॥

तेने पापात्मा हो कर मेरे केशों को स्पर्श कर वन में मुझको अपमानित किया। अतः तेरा वध करने के लिये मैं पुनः उत्पन्न होऊँगी ॥ ३१ ॥

नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषा पाप निश्चयः ।

शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ॥ ३२ ॥

क्योंकि पापी पुरुष को मारना स्त्रियों के वश की बात नहीं है। यदि मैं तुझे शाप दूँ, तो मेरी तपस्या की हानि होती है ॥ ३२ ॥

यदि त्वस्ति मया किञ्चित्कृतं दत्तं हुतं तथा ।

तस्मात्त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥ ३३ ॥

यदि मैंने कुछ सुकृत किया हो या दान दिया हो या होम किया हो, तो मैं किसी धर्मात्मा के घर में अयोनिजा जन्म लूँ ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलित् जातवेदसम् ।

पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ॥३४॥

यह कह अर, वेदवती धधकती हुई आग में कूद पड़ी । उस समय उस चिता के चारों ओर आकाश से दिव्य पुष्पों की वृष्टि हुई ॥ ३४ ॥

सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।

तव भायां महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥३५॥

हे प्रभो ! वही वेदवती जनकराज के घर कन्या लप से उत्पन्न हो कर, तुम्हारी भायां हुई है । हे महाबाहो ! तुम भी वे ही सनातन विष्णु भगवान् हो ॥ ३५ ॥

पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्यथासौ निहतस्तया ।

उपाश्रयित्वा शैलाभस्त्व वीर्यं ममानुषम् ॥ ३६ ॥

वेदवती तो अपने क्रोध से रात्रा को मार ही चुकी थी । अब तुम्हारे अलौकिक बल के सहारे अपने उस पर्वत के समान शत्रु का वेदवती ने नाश ही कर दिया ॥ ३६ ॥

एवमेषा महाभागा मत्येषूत्पत्स्यते पुनः ।

क्षेत्रे हल मुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥ ३७ ॥

यह महाभागा वेदवती वेदी के बीच स्थित अग्निशिखा के तुल्य, आने वाले कल्प में हल की नोंक से जोते हुए खेत में इस प्रकार पुनः उत्पन्न होगी ॥ ३७ ॥

एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे ।  
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ।  
उत्पन्ना मैथिल कुले जनकस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥

इति सप्तदशः सर्गः ॥

हे राजन् ! यह पहले सत्ययुग में वेदवती के नाम से विख्यात थी । अब यही त्रेता में राक्षसों के कुल का संहार करने के लिये मैथिलकुल में महात्मा जनक के यहाँ उत्पन्न हुई है ॥ ३८ ॥

उत्तरकाण्ड का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

— : \* : —

### अष्टादशः सर्गः

— : ० : —

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ।  
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

वेदवती के आग में कूद पड़ने पर रावण पुष्पक विमान में बैठ चारों ओर पृथिवी पर घूमने लगा ॥ १ ॥

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः ।

उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥

वह उशीरबीज नामक देश में पहुँचा । वहाँ उसने देवताओं के साथ यज्ञ करते हुए मरुत राजा को देखा ॥ २ ॥

संवर्ती नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादभ्राता बृहस्पतेः ।

याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

बृहस्पति जी के सुगे भाई धर्मज्ञ संवर्त नामक ब्रह्मर्षि समस्त देवताओं के साथ राजा मरुत्त को यज्ञ करा रहे थे ॥ ३ ॥

दृष्टा देवास्तु तद्रक्षो वरदानेन दुर्जयम् ।

तिर्यग्येानि समाविष्टास्तस्य धर्षणभीरवः ॥ ४ ॥

वरदान के कारण अजित राज्ञस रावण को देख उसके सताने के भय से देहता पक्षियों का रूप धारण कर उड़ गये ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ।

कुकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥

इन्द्र मोर, धर्मराज काग, कुवेर गिरगिट और वरुण ने हंस का रूप धारण किया ॥ ५ ॥

अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन ।

रावणः प्राविशद्यज्ञं सारमेय इवाशुचिः ॥ ६ ॥

हे शत्रुनाशी ! अन्य देवताओं ने भी इसी प्रकार अन्य पक्षियों के रूप धारण कर लिये । तब अपवित्र कुत्ते के समान रावण यज्ञशाला में घुस गया ॥ ६ ॥

तं च राजानपासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।

प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोस्मीति वा वद ॥ ७ ॥

और वहाँ जा वह राजा मरुत्त से बोला कि, या तो तुम मुझसे लड़ो या अपनी हार मानो ॥ ७ ॥

ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ।

अवहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

इस पर राजा मरुत्त ने रावण से पूँछा कि, आप कौन हैं ?  
तब रावण ने अद्विष्ट कर कहा ॥ ८ ॥

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव ।

धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! मैं तुम्हारी इस सिधाई से तुम पर प्रसन्न हूँ । क्योंकि  
तुम धनद—कुबेर के ब्रोटे भाई मुझ रावण को भी नहीं  
पहिचानते ॥ ९ ॥

त्रिषु लोकेषु कोन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम् ।

भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥ १० ॥

तीनों लोकों में कौन ऐसा है, जो मेरे बल पराक्रम को नहीं  
जानता । जिस रावण ने अपने बड़े भाई कुबेर को हरा कर उसका  
यह विमान ढीन लिया, उसे कौन नहीं जानता ॥ १० ॥

ततो मरुत्तः स वृपस्तं रावणमथाब्रवीत् ।

धन्यः खलु भवान्येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ।

न त्वया सद्वशः श्लाघ्यत्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ११ ॥

इस पर राज मरुत्त ने रावण से कहा—आप धन्य हैं, जिन्होंने  
अपने बड़े भाई को युद्ध में हरा दिया । सचमुच तुम्हारा जैसा  
श्लाघ्य पुरुष तो तीनों लोकों में नहीं है ॥ ११ ॥

[ नार्थमसहितं श्लाघ्यं न लोक प्रति संहितम् ।

कर्म दौरात्म्यकं कृत्वा श्लाघसे भ्रातृनिर्जयात् ॥ ]

कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ।

श्रुतपूर्वं हि न मया भाससे याद्वशं स्वयम् ॥ १२ ॥

हे मूढ़ ! अधर्मयुक्त और लोकनिन्दित कर्म कभी सराहने योग्य नहीं हो सकता । तूने अपने बड़े भाई को युद्ध में हरा कर ( और उसका विमान ढीन कर ) दुरात्माओं जैसा काम किया है । तिस पर भी तू अपनी सराहना करता है । पूर्व में तू ने कौनसा ऐसा धर्म का अनौखा काम किया था, जिससे तुझे वर मिला । मैंने तो तेरे बारे में, जैसा कि तू स्वयं अब कह रहा है, पहिले कभी सुना नहीं ॥ १२ ॥

तिष्ठेदानीं न मे जीवन्प्रतियास्यसि दुर्मते ।

अद्य त्वां निश्चितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ १३ ॥

अरे दुष्ट ! खड़ा रह ! अब तू मेरे सामने आ कर जीता नहीं जा सकता । मैं पैने पैने बाणों से आज ही तुझे यमालय मेज़ूँगा ॥ १३ ॥

ततः शरासनं गृह्ण सायकांश्च नराधिपः ।

रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर राजा मरुत्त धनुष बाण ग्रहण कर छोध में भरे हुए, युद्ध करने को बाहर निकले, किन्तु यज्ञ कराने को आये हुए संवर्त मुनि उनका मार्ग रोक कर खड़े हो गये ॥ १४ ॥

सोऽब्रवीत्स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ।

श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं सम्प्रहारो न ते क्षमः ॥ १५ ॥

संवर्त मुनि स्नेहयुक्त बचनों द्वारा राजा मरुत्त से बोले कि, यदि तुम मेरी बात मानो तो मैं कहूँगा कि, ( रावण के साथ ) तुम्हारा युद्ध करना महलकारी नहीं है ॥ १५ ॥

माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् ।

दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ॥ १६ ॥

संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः ।

स निवृत्तौ गुरोर्वाक्यान्मरुतः पृथिवीपतिः ।

विसृज्य सशरं चापं स्वस्थौ मरुमुखोऽभवत् ॥ १७ ॥

क्योंकि यदि यह माहेश्वर सम्बन्धी यज्ञ समाप्त न होगा, तो तुम्हारे कुल का नाश कर देगा । यज्ञ में दीक्षित हुए पुरुष के लिये युद्ध करना अथवा क्रोध करना कैसा ? फिर जीत होने में भी सन्देह है, क्योंकि यह राक्षस अजेय है । अपने गुरु का कहना मान राजा मरुत् युद्ध करने का विचार त्याग कर और धनुष बाण रख कर तथा मन को सावधान कर, पुनः यज्ञकर्म में प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।

रावणो जयतीत्युच्छैर्षर्षनादं विमुक्तवान् ॥ १८ ॥

तब तो रावण के मंत्री शुक ने राजा मरुत् को हारा हुआ निश्चय कर, यह घोषणा की कि, रावण से राजा मरुत् हार गया तथा उसने हर्षनाद किया ॥ १८ ॥

तान्भक्षयित्वा तत्रस्थान्यहर्षीन्यज्ञ मागतान् ।

वितृसो रुधिरैस्तेषां पुनः संप्रययौ महीम् ॥ १९ ॥

यज्ञ में आये हुए ऋषियों को खा कर और उनके रक्त को भर पेट पो कर, रावण पुनः पृथिवीमण्डल पर विचरने लगा ॥ १८ ॥

रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।

ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥२०॥

रावण के चले जाने पर इन्द्रादि देवताओं ने फिर अपने अपने रूप धारण कर उन पशु पक्षियों से कहा ॥ २० ॥

हर्षात्तदाब्रवीदिद्रो मयूरं नीलं बर्हिणम् ।

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञं भुजङ्गाद्धि न ते भयम् ॥ २१ ॥

हर्षित हो इन्द्र ने नीले रंगबाले मोर से कहा—हे धर्मज्ञ ! हम तुम पर प्रसन्न हैं ( अतः हम तुमको यह वर देते हैं कि ) तुम को सर्प से भय नहीं होगा ॥ २१ ॥

इदं नेत्रसहस्रं तु यत्तद्वह्ने भविष्यति ।

वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीति लक्षणम् ॥ २२ ॥

हमारे ये सहस्र नेत्र तुम्हारी चन्द्रिका पर सुशोभित होंगे । जब मैं जलवृष्टि करूँगा ; तब मेरी प्रीति का चिन्ह स्वरूप आनन्द, तुमको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥

एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ॥ २३ ॥

सुरेश्वर इन्द्र ने इस प्रकार मयूर को वरदान दिया ॥ २३ ॥

नीलाः किल पुराबर्हामयूराणां नराधिप ।

सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वेषि बर्हिणः ॥ २४ ॥

हे राजन ! पूर्वकाल में, मोरों को पूँछ नीले रंग की थी, ( किन्तु इन्द्र के वरदान से उनकी पूँछ रंग विरंगी हो गयी ) इन्द्र से वर पा कर, सब मोर वहाँ से चले गये ॥ २४ ॥

धर्मराजो ब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसम् प्रति ।

पक्षिस्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥ २५ ॥

तदनन्तर हे राम ! धर्मराज ने प्राग्वंश नामक यज्ञशाला में  
बैठे हुए कौए से कहा—हे पक्षिन् ! हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं ।  
अतः तुम हमारे वचन सुनो ॥ २५ ॥

यथान्ये विविधै रोगैः पीडियन्ते प्राणिनो मया ।

ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥ २६ ॥

हम अन्य प्राणियों को तरह तरह के रोगों से पीड़ित करते हैं ;  
किन्तु ( हमारे आज के वरदान से ) तेरे शरीर पर कभी किसी  
रोग का प्रभाव न पड़ेगा । तुम्हे रोगों से कभी पीड़ा न होगी । इसमें  
कुछ भी संशय नहीं है ॥ २६ ॥

मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहङ्गम ।

यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्विष्यसि ॥ २७ ॥

हे विहङ्गम ! मेरे वरदान से तुम्हे मृत्यु से भय न होगा । जब  
तक तुम्हे कोई मरुष्य नहीं मारेगा, तब तक तू जीवित रहैगा ॥ २७ ॥

ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।

त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २८ ॥

जितने मरुष्य मेरे लोक में रहेंगे और ज्ञुवा से पीड़ित होंगे, वे  
सब तेरे तृप्त होने पर बन्धुओं सहित तृप्त हो जायेंगे ॥ २८ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोय विचारिणम् ।

श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं ततः पत्ररथेश्वरम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर वरुण जी ने गङ्गासलिलचारी हंस से कहा—हे पत्ररथेश्वर ! तुम मेरे प्रोतिसाने बचन सुनो ॥ २६ ॥

वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसन्निधः ।

भविष्यति तवादग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥ ३० ॥

तुम्हारा रंग मनोहर सुन्दर और चन्द्रमण्डल की तरह उत्तम होगा और तेर शरीर की कान्ति निर्मल फैन समान होगी ॥ ३० ॥

मच्छरीरं<sup>१</sup> समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।

प्राप्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३१ ॥

मेरा शरीर जल है, सो उसे पा कर तेरा शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जायगा और (जल पर सञ्चालन करने से) तू आनन्दित होगा । यही मेरी प्रीति का चिन्ह है ॥ ३१ ॥

हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः ।

पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥ ३२ ॥

हे राम ! इससे पहिले हंसों का समस्त शरीर सफेद रंग का नहीं था । उनके पंखों के किनारे काले होते थे । उनका पेट घास की तरह हरा और चिकना हुआ करता था ॥ ३२ ॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ।

हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ ३३ ॥

सद्रव्यं च शिरोनित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।

एष काश्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३४ ॥

<sup>१</sup> मच्छरीर—जलमूर्ति । (गो०)

इसके बाद पर्वत पर बैठे हुए गिरगिट से कुवेर जी बोले—  
हम तुम पर प्रसन्न हो कर तुम्हारा रंग सुबर्ण जैसा किये देते  
हैं। तुम्हारा सिर सुनहला हो जायगा और विशेष कर हमारे प्रसन्न  
होने से तुम्हारा रंग सदा सुनहला बना रहेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवे सुराः ।  
निवृत्ते सह राजा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥ ३५ ॥

इति श्रष्टादशः सर्गः ॥

देवता लोग उन पक्षियों को इस प्रकार वरदान दे कर, राजा  
मरुत्त का यज्ञोत्सव समाप्त होने पर, राजा मरुत्त सहित अपने अपने  
भवनों को चले गये ॥ ३५ ॥

उत्तरकागड़ का अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

### एकोनविंशः सर्गः

— : ० : —

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।

नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकांक्षी दशाननः ॥ १ ॥

अब राजा मरुत्त को जीत कर राक्षसराज रावण युद्ध की  
कामना से नगरों में घूमने फिरने लगा ॥ १ ॥

समाप्ताय तु राजेन्द्रान्महेद्रवरुणोपमान् ।

अब्रवीद्राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २ ॥

महेन्द्र और वरुण के समान बड़े बड़े राजाओं के निकट आ, रावण उनसे कहता कि, या तो मुझसे लड़ो ॥ २ ॥

निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ।  
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥

अथवा मुझसे अपनी हार मानो । क्योंकि मैंने यही निश्चय कर रखा है कि, जो राजा इन दो वातों में से एक भी स्वीकार न करेगा उसका किसी प्रकार से कुट्टकारा न हो सकेगा ॥ ३ ॥

ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ।

मन्त्रग्रित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥ ४ ॥

रावण की वातें सुन स्वभाव ही से निढ़र, धर्मात्मा और महाबलवान राजा ज्ञाग आपस में परामर्श कर के रावण से बोले ॥ ४ ॥

निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ।

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरुरवाः ॥ ५ ॥

एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ।

अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

हम सब तुमसे अपनी हार मानते हैं । ( यह उन्होंने इस लिये कहा था कि ) वे जानते थे कि, रावण को वरदान का बल है । अतः राजा दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय और पुरुरवा आदि सब राजाओं ने कह दिया कि, हम तुमसे पराजित हुए । तदनन्तर रावण अयोध्यापुरी में पहुँचा ॥ ५ ॥ ६ ॥

सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणोवामरावतीम् ।

स तं पुरुषशार्दूलं पुरन्दरसमं बले ॥ ७ ॥

प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ।

निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वयेवं मम शासनम् ॥ ८ ॥

उस समय अयोध्यापुरी की रक्षा महाराज अनरण्य जी वैसे ही कर रहे थे, जैसे इन्द्र अपनी अमरावती की रक्षा करते हैं। रावण ने इन्द्र के समान उन बलों नृपश्रेष्ठ महाराज अनरण्य के निकट जा कर कहा कि, या तो लड़ो या यह कहो कि, हम हार गये। वस यही हमारी तुम्हारे लिये आज्ञा है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अयोध्याधिपतिस्तस्य श्रुत्वा पापात्मनो वचः ।

अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥

किन्तु अयोध्याधिपति महाराज अनरण्य ने उस पापी के यह वचन सुन और क्रुद्ध हो राक्षसराज रावण से कहा ॥ ६ ॥

दीयते द्वन्द्युद्धं ते राक्षसाधिपते मया ।

सन्तिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥ १० ॥

हे राक्षसराज ! ठहर जा । मैं तुझसे द्वन्द्युद्ध करता हूँ। तू भी सावधान हो जा और मैं भी लड़ने के लिये तैयार होता हूँ ॥ १० ॥

अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहाद्वलम् ।

निष्क्रामत्तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥ ११ ॥

महाराज अनरण्य ने पहिले ही रावण का बृत्तान्त सुन कर, अपनी सेना सजा रक्खी थी, सो उनकी वह सेना राक्षस को बध करने को निकली ॥ ११ ॥

नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ।  
रथानां बहुसाहस्रं पतीनां च नरोत्तम ॥ १२ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उस सेना में दस हजार हाथी, एक लाख घोड़े  
तथा सहस्रों घुड़सवार तथा पैदल सैनिक थे ; ॥ १२ ॥

महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे ।  
ततः प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं युद्धविशारद ॥ १३ ॥

जो पृथिवी को ढक कर युद्ध करने के लिये पैदल सैनिकों  
तथा रथसवार सैनिकों के साथ निकले । हे युद्धविशारद ! दोनों  
ओर से महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥

अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चादुतम् ।  
तद्रावण बलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ॥ १४ ॥

महाराज अनरण्य का और राक्षसेन्द्र रावण का अद्भुत युद्ध  
होने लगा । उस समय महाराज अनरण्य की सेना, रावण की  
सेना से भिड़ कर ॥ १४ ॥

प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले ।  
युद्धा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥ १५ ॥

कुछ देर तक उत्तम विक्रम प्रकाश कर वैसे ही नष्ट हो गयी  
जैसे अग्नि में डाली हुई होम की सामग्री भस्म हो जाती है ॥ १५ ॥

प्रज्वलन्तं तमासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम् ।  
प्राविशत्सङ्कुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥ १६ ॥

धधकती हुई आग के निकट जा कर जैसे पतंगे भस्म हो जाते हैं ; वैसे ही रावण से भिड़ कर, महाराज अनरण्य की सेना लड़ाई में मारी गयी ॥ १६ ॥

सोपश्यत्तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ।

महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ॥ १७ ॥

महाराज अनरण्य ने देखा कि, जैसे सैकड़ों नदियाँ समुद्र में गिर कर बिला जाती हैं ; वैसे ही उनकी सेना रावण द्वारा बिला दी गयी अर्थात् नष्ट कर दी गयी ॥ १७ ॥

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन्स्वयम् ।

आससाद् नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

यह देख महाराज अनरण्य स्वयं इन्द्रधनुष के तुल्य अपने धनुष को टंकोरते रावण का सामना करने को गये ॥ १८ ॥

अनरण्येन तेऽपात्या मारीचशुकसारणाः ।

प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ॥ १९ ॥

महाराज ने रावण के मारीच, शुक, सारण और प्रहस्त आदि मंत्रियों को मार कर वैसे ही भग्ना दिया ; जैसे ( डर कर ) हिरन भागते हैं ॥ १९ ॥

ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।

तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ २० ॥

तदनन्तर इक्ष्वाकुकुलनन्दन महाराज अनरण्य ने राक्षसराज रावण के सिर में आठ सौ बाण मारे ॥ २० ॥

तस्य वाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न \*क्षतिं क्वचित् ।  
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥२१॥

जल की धारा जैसे बादल से निकल कर पर्वत के शिखर पर गिरती है और पहाड़ की कुछ भी हार्नि नहीं कर सकती ; वैसे ही वे बाण रावण के मस्तक पर गिरे । किन्तु उनसे रावण के शरीर में कहीं बरोच भी न हुई ॥ २१ ॥

ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।

तलेनाभिहतो मूर्धिन स रथान्निपपात ह ॥ २२ ॥

स राजा पतितो भूमौ फिहलः प्रविवेपितः ।

वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ॥ २३ ॥

इतने में क्रोध में भर रावण ने महाराज के सिर पर एक थण्डे जमाया । उसकी चेट से महाराज अनरण्य विह्वल हो थरथराते हुए रथ से धरती पर ऐसे गिरे ; जैसे वन में विजली का मारा साखू का पेड़ गिरता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद्रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् ।

किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युद्धयता ॥२४॥

तब रावण ने इक्ष्वाकुकुलनन्दन अनरण्य से हँस कर कहा—  
तुमने मुझसे लड़ कर क्या फल पाया ? ॥ २४ ॥

त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप ।

शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥ २५ ॥

हे राजन ! त्रिलोकी में ऐसा कोई भी नहीं है, जो मुझसे द्वन्द्व युद्ध कर सके । मुझे जान पड़ता है कि, तू आमोद प्रमोद

\* पाठान्तरे—“क्षतं” । † पाठान्तरे—“विह्वाङ्गः प्रवेपितः” ।

में लबलीन था, इसीसे तूने मेरे बल का वृत्तान्त नहीं सुन पाया ॥ २५ ॥

तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् ।  
किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥२६॥

रावण द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हीनबल महाराज अनरण्य ने रावण से कहा कि, ( मुझे जीतने की ) तुम्हारी तो क्या सामर्थ्य है ! हाँ काल की बलिहारी है जिसके प्रभाव से कोई बच नहीं सकता ॥ २६ ॥

न ह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना ।  
कालेनैव विषद्वोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥ २७ ॥

हे राक्षस ! अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने वाले तूने मुझे नहीं जीता ; किन्तु काल ने ही मुझे इस प्रकार विषद्व्रग्रस्त किया है । हाँ आप इसमें निमित्त मात्र अवश्य हैं ॥ २७ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये ।

न ह्यहं विमुखो रक्षो युध्यमानस्त्वया हतः ॥ २८ ॥

इस समय तो मैं मर ही रहा हूँ, सो अब मैं कर ही क्या सकता हूँ । ( किन्तु स्मरण रख ) मैं युद्ध से विमुख नहीं हुआ, प्रत्युत युद्ध करता हुआ मैं तेरे हाथ से मारा गया हूँ ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद्वचो वक्ष्यामि राक्षस ।

यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ।

यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं वचोस्तु मे ॥२९॥

हे राक्षस ! तूने जो इच्छाकुकुल का अपमान किया है, सो इसके बदले मैं कहता हूँ कि, यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, तपस्या की हो और न्यायपूर्वक प्रजापालन किया हो, तो मेरा यह वचन सत्य हो ॥ २६ ॥

उत्पत्स्यते कुलेहस्मन्निक्षवाकूणां महात्मनाम् ।

रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥ ३० ॥

महाराज इच्छाकु के कुल में दाशरथी राम उत्पन्न होंगे जो तेरा वध करेंगे ॥ ३० ॥

ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः ।

तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पदृष्टिश्च खाच्चयुता ॥ ३१ ॥

महाराज अनरण्य के मुख से यह वचन निकलते ही मेघों की गर्जना के समान नगाड़ों के वजने का शब्द सुनाई पड़ा और आकाश से फूल बर्से ॥ ३१ ॥

ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् ।

स्वर्गते च त्रृपे तस्मिन् राक्षसः सोपसर्पत ॥ ३२ ॥

इति एकोनविंशः सर्गः ॥

तदनन्तर महाराज अनरण्य स्वर्ग सिधारे और उनके स्वर्ग-वासी होने पर रावण भी वहाँ से चल दिया ॥ ३२ ॥

उत्तरकाशड का उक्तोसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## विंशः सर्गः

—::—

ततो वित्रासयन्मत्यन्पृथिव्यां राक्षसाधिपः ।

आससाद घने<sup>१</sup> तस्मिन्बारदं मुनिपुञ्ज्वम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावण पृथिवी पर मनुष्यों को आस देता हुआ धूम रहा था कि, उसने मेघ की णीठ पर सवार मुनिश्रेष्ठ नारद जी को देखा ॥ १ ॥

तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः ।

अब्रवीत्कुशलं पृष्ठा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

रावण ने उनको प्रणाम कर उनसे कुशल पूँछी तथा आगमन का कारण पूँछा ॥ २ ॥

नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ।

अब्रवीन्मेघपृष्ठस्था रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥

अमित प्रभावान् महातेजस्वी देवर्षि नारद ने मेघ की पीढ़ पर बैठे हो बैठे पुष्पक विमान पर सवार रावण से कहा ॥ ३ ॥

राक्षसाधिपते सौम्यतिष्ठ विश्रवसः सुत ।

प्रीतोस्म्यभिज्ञेनोपेतविक्रमैर्लज्जितैस्तव ॥ ४ ॥

हे विश्रवानन्दन सौम्य राक्षसराज ! खड़े रहो । मैं तुम्हारे मंत्रियों और तुम्हारे विक्रम पर बड़ा प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

<sup>१</sup> घने—घनपृष्ठेस्थितं । ( गो० )

विष्णुना दैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगर्गधर्षणैः ।

त्वया समं विमदैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥

जैसे विष्णु के दैत्यों को पराजित करने पर मैं सन्तुष्ट हुआ,  
वैसे ही गन्धर्व नागादिकों को पराजित करने के कारण मैं तुमसे  
भी सन्तुष्ट हुआ हूँ ॥ ६ ॥

किंचिद्विद्यामि \*तावत्ते श्रोतव्यं श्रोत्यसे यदि ।

तन्मे निगदतस्तात् समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥

अब मैं कुछ बातें तुमसे कहना चाहता हूँ जो सुनने योग्य हैं ।  
यदि सुनना चाहो तो मैं कहूँ । किन्तु सुनने के लिये तुम्हे एकाग्र-  
चित्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

किमयं वध्यते तात् त्वयाऽवध्येन दैवतैः ।

इत एव ह्यं लोको यदा मृत्युवर्शं गतः ॥ ७ ॥

हे तात ! तुम तो देवताओं से भी अवध्य हो, अतः इन बेचारे  
मनुष्यों को कर्जो मारते हो । ये तो स्वयं ही मृत्यु के बश में पड़े  
हैं ॥ ७ ॥

देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।

अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः ॥ ८ ॥

अतः देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसों से भी  
अवध्य हो कर, तुमको इन बेचारे मनुष्यों को सताना उचित  
नहीं ॥ ८ ॥

नित्यं श्रेयसि संमूढं महद्विर्यसनैर्वृतम् ।

हन्यात्कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ९ ॥

ये मनुष्य तो सदा ही अनेक निपत्तियों में फँसे रहते हैं, विशेष कर अपनी भलाई करने में ये अत्यन्त मूढ़ हैं और जरा तथा सैकड़ों व्याधियों से घिरे रहते हैं। अतः ऐसे लोगों को मारने से क्या लाभ ॥ ६ ॥

तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्तं यत्रकुत्र कः ।

मतिमान्मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥

मनुष्य जहाँ तहाँ अनेक अनिष्टों से सदा पीड़ित रहा करते हैं। अतः ऐसा कौन समझार मनुष्य होगा, जो इन पर शब्द डाले ॥ १० ॥

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।

विषादशोकसंमूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ ११ ॥

हे राज्ञसराज ! भूख, प्यास, बुढ़ापे आदि से दैव द्वारा निहत मनुष्य सदा जीण होते रहते हैं, तथा शोक एवं विशाद से वे सदा कातर रहा करते हैं। अतः तुम इन्हें वृथा नष्ट मत करो ॥ ११ ॥

पश्य तावन्महावाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।

मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ १२ ॥

हे महाबलवान् राज्ञसराज ! देखो मनुष्य जाति इतनी मूढ़ है कि वह अपने सुख दुःख भोग करने के समय को भी नहीं जानती और विविध भाँति के साधारण साधारण पुरुषार्थ में अनुरक्त रहा करती है ॥ १२ ॥

क्वचिद्वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।

रुद्यते चापररैरत्नधाराश्रुनयनाननैः ॥ १३ ॥

देखो न ; कहीं तो प्रसन्न हो कर बहुत से लोग नाचते गाते हैं और कहीं अन्य लोग दुःखी हो आँसू वहाते हुए रोते हैं ॥ १३ ॥

**मातापितृसुतस्नेहभार्याबन्धुमनोरमैः ।**

**मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥१४॥**

माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाईबंदों के स्नेह में जकड़े हुए ये लोग मोहित हो कर नष्ट हो रहे हैं । इसीसे उन्हें अपना क्लेश तक मालूम नहीं पड़ता ॥ १४ ॥

**तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।**

**जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥१५॥**

अतः मोह में फस ज्यां नष्ट होने वाले मर्त्यलोक को दुःखी कर, तुम क्या करोगे ? तुम निस्संशय इस लोक को जीत तो चुके ही हो ( अतः मनुष्यों को सता कर क्या करोगे ) ॥ १५ ॥

**अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।**

**तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरञ्जय ॥ १६ ॥**

मर्त्यलोक के समस्त जीव यमपुरी में अवश्य जायगे । अतएव हे परपुर को जीतने वाले पुलस्त्य के पौत्र ! तुम यमराज की पुरी पर चढ़ाई करो ॥ १६ ॥

**तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः ।**

**एवमुक्तस्तु लङ्घेशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥१७॥**

क्योंकि उसके जीत लेने पर निस्सन्देह तुम अपने को सब को जीता हुआ समझो । अपने तेज से दीप्यमान लङ्घापति रावण, इस प्रकार नारद जो द्वारा समझाये जाने पर ॥ १७ ॥

अब्रवीन्नारदं तत्र संप्रहस्याभिवाद्य च ।

महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ॥ १८ ॥

नारद जो को प्रणाम कर और मुपक्षयाता हुआ कहने लगा ।  
हे देवर्षे ! हे देव-गन्धर्व-लेक-विहार-प्रिये ! हे समर-दर्शन-  
प्रिये ! ॥ १८ ॥

अहं समुद्रतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम् ।

ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान्मुरान्वशे ।

समुद्रप्रमृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ॥ १९ ॥

इस समय मैं विजयार्थं रसातल जाने को तैयार हूँ । फिर  
तीनों लोकों को जीत कर नागों और देवताओं को अपने  
वशवतीं करूँगा । तदनन्तर अमृत की प्राप्ति के लिये मैं समुद्र की  
मर्थूँगा ॥ १९ ॥

अथाब्रवीदशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ।

क खलिवदानीं मार्गेण त्वयेहान्येन गम्यते ॥ २० ॥

इस पर भगवान् नारद ऋषि ने दशग्रीव से कहा—यदि तुम्हें  
रसातल ही मैं जाना है, तो दूसरे रास्ते से क्यों जाते हो ॥ २० ॥

अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति ।

मार्गा गच्छति दुर्धर्षं यमस्यामित्रकर्शन ॥ २१ ॥

हे दुर्धर्ष ! हे शत्रुनाशी ! यह अत्यन्त दुर्गम यमपुरी का मार्ग  
प्रेतराज नगर के सामने जा निकला है ॥ २१ ॥

स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः ।

उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

यह सुन कर रावण, शरद ऋतु के बादल की नाई बड़े ज़ोर से हँस कर महाद्युतिमान् नारद जी से बोला । उसने कहा—बहुत अच्छा ऐसा ही करेंगे ॥ २२ ॥

तस्मादेवं महाब्रह्म वैवस्वतवधोद्यतः ।

गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ॥२३॥

हे महाब्रह्मन् ! तो मैं अब यम ही का वध करने के लिये दक्षिण दिशा के मार्ग से वहाँ जाता हूँ, जहाँ सूर्यपुत्र यमराज रहते हैं ॥ २३ ॥

मया हि भगवन् क्रोधात्पतिज्ञातं रणार्थिना ।

अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! मैंने संग्राम करने को इच्छा से क्रोध में भर पहिले प्रतिज्ञा भी की थी कि, मैं चारों लोकपालों को जीतूँगा ॥ २४ ॥

तदिह प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति ।

प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ॥ २५ ॥

अतः मैं अब यमराज को पुरी को जाता हूँ और समस्त प्राणियों को सताने वाले उस यमराज को मैं मारूँगा ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ।

प्रययौ दक्षिणामाशां प्रविष्टः सह मन्त्रिभिः ॥ २६ ॥

यह कह और नारद मुनि को प्रणाम कर रावण अपने मंत्रियों सहित दक्षिण दिशा की ओर चल दिया ॥ २६ ॥

नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।

चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ॥ २७ ॥

विधूम् ( धुआ रहित ) अग्नि के समान महातेजस्वी विप्रेन्द्र नारद जी, मुहूर्त भर तक ध्यानमग्न रह, सोचने लगे ॥ २७ ॥

येन लोकाख्यः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ।

क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम् ॥२८॥

कि जो आयुष्य के क्षीण होने पर इन्द्र साहत तीनों लोकों के धर्मतः ( अर्थात् न्यायतः ) क्लेश देता है, वह काल क्यों कर जीता जा सकेगा ॥ २८ ॥

स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः ।

लब्धसंज्ञा विचेष्टन्ते लोका यस्य महात्मनः ॥२९॥

जो यमराज स्वयं जगतसाक्षी हैं और दूसरे अग्नि के समान तेजस्वी हैं, जिनके प्रताप से समस्त लोक सचेत हो सांसारिक कार्य किया करते हैं ॥ २९ ॥

यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्वन्ति भयार्दिताः ।

तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ॥ ३० ॥

और जिनके भय से व्याकुल हो त्रिलोकी भागती है, उन यमराज के निकट यह राक्षसश्रेष्ठ रावण अपनी इच्छानुसार क्यों कर जा सकेगा ? ॥ ३० ॥

ये विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा ।

त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं विजयिष्यते ।

अपरं किं तु कृत्वेवं विधानं सविधास्यति ॥ ३१ ॥

जो संसार के धाता विधाता हैं, जो पुण्य और पाप के फल देने वाले तथा शासनकर्ता हैं तथा जिन्होंने तीनों लोक जीत

रहे हैं, उन यमराज को यह कैसे जीत लेगा ? फिर उनसे लड़ कर यह और कौन सा काम करेगा ॥ ३१ ॥

कौतूहलं समुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ।  
विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम् ॥ ३२ ॥

इति विंशः सर्गः ॥

इसका तो मुझको बड़ा कुतूहल है । अतः मैं स्वयं यमराज और रावण का युद्ध देखने के लिये यमराज की पुरी को जाऊँगा ॥ ३२ ॥

उत्तरकाण्ड का वीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

एकविंशः सर्गः

—\*—

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ।

आख्यातुं तद्यथावृत्तं यमस्यसदनं प्रति ॥ १ ॥

फुर्तीले एवं विप्रेन्द्र नारद जी इस प्रकार सोच विचार कर, यमराज को समस्त वृत्तान्त सुनाने के लिये जलदी जलदी यमपुरी की ओर चले ॥ १ ॥

अपश्यत्स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ।

विधानमनुतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥

यमपुरी में जा कर उन्होंने देखा कि, यमराज अग्नि को साझी कर, जीवों का यथोचित न्याय कर रहे हैं अर्थात् जिसका जैसा अच्छा बुरा कर्म है, तदनुसार उसको पुरस्कृत एवं दण्डित कर रहे हैं ॥ २ ॥

स तु दृष्टा यमः प्राप्तं महर्षि तत्र नारदम् ।

अब्रवीत्सुखमासीनमध्यमावेद्य धर्मतः ॥ ३ ॥

देवर्षि नारद को आते देख यमराज यथाविधि अधर्यप्रदान कर और आसन पर बिठा कर उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥

कच्चित्क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद्भर्ता न नश्यति ।

किमागमन कृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥ ४ ॥

हे महर्षे ! कहिये कुशल तो है ? धर्मकार्यों में किसी प्रकार की वाधा तो नहीं पड़ती । हे देवगन्धर्वपूजित ! आपके पधारने का कारण क्या है ? ॥ ४ ॥

अब्रवीत्तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः ।

श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥५॥

यमराज के इन वचनों को सुन नारद जी बोले कि, मैं अपने आने का कारण बतलाता हूँ । आप उसे सुनें और फिर जो करना हो सो कीजिये ॥ ५ ॥

एष नाम्ना दशग्रीवः पितॄराज निशाचरः ।

उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥

हे पितॄराज ! दुर्जेय दशग्रीव आपको बलप्रयोग द्वारा अपने वश में करने के लिये आ रहा है ॥ ६ ॥

एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो ।

दण्ड प्रहरणस्याद्य तव किं नु भविष्यति ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! मैं इसी लिये अति शोषण आपके पास आया हूँ कि,  
देखूँ कालदगड़ चलाने वाले आपको जीत होती है कि हार ॥ ७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।

ददृशुर्दीप्तिपायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥ ८ ॥

( नारद जी यह कह ही रहे थे कि ) इसी बोच में सूर्य के समान  
चमचमाता दशग्रीव का पुष्पकविमान आता हुआ देख पड़ा ॥ ८ ॥

तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ।

कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपमध्यवर्तत ॥ ९ ॥

बलवान् रावण अपने विमान के प्रकाश\* से वहाँ का अन्धकार  
दूर करता हुआ अति समीप आ पहुँचा ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत्स महावाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः ।

प्राणिनः सुकृतं चैव भुज्ञानांश्चैव दुष्कृतम् ॥ १० ॥

महाबली रावण ने देखा कि, वहाँ समस्त प्राणी अपने अपने  
पुण्यों और पापों का भला बुरा फल भोग रहे हैं ॥ १० ॥

अपश्यत्सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सह ।

यमस्य पुरुषैरुद्यैर्यरुपैर्भयानकैः ॥ ११ ॥

तथा उसने यमराज के सैनिकों और अनुचरों को भी देखा ।  
यमराज के उग्र महाभयङ्कर रूपवाले अनुचरों को ॥ ११ ॥

ददर्श वध्यामानांश्च क्षिश्यमानांश्च देहिनः ।

क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनत्परान् ॥ १२ ॥

\* इससे जान पड़ता है, पुष्पकविमान में आज कल के सर्चलाइट लैंपों  
की तरह कितने ही लैंप लगे होंगे ।

उसने प्राणियों को बाँधते और मार पीट करते हुए देखा ।  
इससे प्राणी महापीड़ित हो बड़े ज़ोर से रोदन कर चीत्कार कर  
रहे थे ॥ १२ ॥

कुमिभिर्भृत्यमाणांश्च सारमेयैश्च दासृणैः ।  
श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः ॥ १३ ॥

उन्हें विविध प्रकार के ड्रेटे ड्रेटे कोडे और बड़े निष्ठुर कुत्ते  
काट रहे थे । वे ऐसी बुरी तरह चिल्हा रहे थे कि, सुनने वाले का  
मन विकल हो जाता था ॥ १३ ॥

सन्तार्यमाणान्वैतरणी वदुशः शोणितोदकाम् ।  
बालुकासु च तप्तासु तप्यमानान्मुहूर्मुहुः ॥ १४ ॥

रावण ने बहुत से प्राणियों को देखा कि, वे जल की जगह रक  
से भरी अति गहरी वैतरणी नदी को पार कर रहे थे और तभी  
हुई बालू पर बार बार घसीटे जाते थे ॥ १४ ॥

असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान् ।  
रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ॥ १५ ॥

अनेक पापी असिपत्र वन ( तलवार की धार जैसे पैने पत्तों  
से युक्त बृक्षों वाले वन ) में कटवाये जा रहे थे । वे रौरव नरक  
में क्षारनदी में पटके जाते और कुरुओं की धार से काटे जाते  
थे ॥ १५ ॥

पानीयं याचमानांश्च तुषितान्क्षुधितानपि ।  
शवभूतान्कुशान्दीनान्विवर्णान्मुक्तपूर्धजान् ॥ १६ ॥

यलपङ्कधरान्दीनान् रुक्षांश्च परिधावतः ।

ददर्श रावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥

वे प्यासे और भूखे हो कर पानी माँग रहे थे। मुद्दें की तरह दुबले, दुखी, सिर के बाल खोले, मैल और कीचड़ से सने हुए, रुखे और दौड़ते हुए उन लोगों की रंगत ही बदली हुई थी। वहाँ पर रावण ने इस प्रकार के सैकड़ों हज़ारों जोत देखे ॥ १६ ॥ १७ ॥

कांशिच गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिःस्वनैः ।

प्रमोदमानानद्राक्षीद्रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥ १८ ॥

रावण ने वहाँ ऐसे पुण्यात्माओं को भी देखा, जो अपने पुण्य-बल से सुन्दर सुन्दर घरों में रहते थे और गानवाद्य से आनन्दित हो रहे थे ॥ १८ ॥

गोरसं गोप्रदातारो अन्नं चैवान्नदायिनः ।

गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमन्तः ॥ १९ ॥

जिन्होंने गोदान, अन्नदान, गृहदान किये थे, वे लोग अपने अपने दान के अनुसार गोरस, अन्न और गृह का आनन्द मेंग रहे थे ॥ १९ ॥

सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान् ।

धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान्स्वतेजसा ॥ २० ॥

बहुत से धर्मात्मा लोग सोना, मणि, मुक्ता और छियों को पा कर विहार कर रहे थे और अपने तेज से प्रकाशमान थे ॥ २० ॥

ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः ।

ततस्तान्धिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ॥ २१ ॥

वहाँ उस महावली राज्ञसराज रावण ने इस प्रकार के हृशय देखे । तदनन्तर अपने पापकर्मों के फल से काटे पीटे जाते हुए प्राणियों का ॥ २१ ॥

रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद्वली ।

प्राणिनो मोक्षितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा ॥ २२ ॥

बलवान रावण ने ज़बरदस्ती कुड़ा दिया । दशग्रीव द्वारा कुड़ाये हुए उन प्राणियों ने ॥ २२ ॥

सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यतर्कितमचिन्तितम् ।

प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ॥ २३ ॥

थोड़ी देर तक अतकित और अचिन्त्य सुख भेगा । महावली रावण द्वारा जीवों को कुटा हुआ देख ॥ २३ ॥

प्रेतगोपाः सुसंकुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ।

ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः ।

धर्मराजस्य योधानां शूराणां सम्प्रधावताम् ॥ २४ ॥

यमकिङ्करों ने क्रोध में भर रावण पर आक्रमण किया । धर्मराज के किङ्कर बड़े शूरवीर थे । जब वे रावण के ऊपर दौड़े, तब चारों ओर हलहलाशब्द व्याप्त हो गया ॥ २४ ॥

ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः ।

पुष्पकं समवर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ॥ २५ ॥

सैकड़ों हज़ारों शूरवीर प्रासों, परिघों, शूलों, मूसलों, शक्तियों और तोमरों की पुष्पक विमान पर वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

तस्यासनानि प्रासादान्वेदिकास्तोरणानि च ।

पुष्पकस्य वर्भजुस्ते शीघ्रां मधुकरा इव ॥ २६ ॥

वे मधुमकिखयों की तरह चारों ओर से पुष्पक विमान पर टूट पड़े और विमान की बैठकों, अटारियों, चबूतरों और द्वारों को तोड़ने फोड़ने लगे ॥ २६ ॥

देवनिष्ठान भूतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे ।

भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ॥ २७ ॥

वह विमान साधारण न था । उसमें एक प्रकार से देवीश था । अतएव वह इतनी भारी चेष्टा खा कर भी, ब्रह्मा जी के तेजोबल से पूर्ववत् ज्यों का त्यों हो गया ॥ २७ ॥

असंख्या सुमहत्यासीत्स्य सेना महात्मनः ।

शूराणामुग्रयातृणां सहस्राणि शतानि च ॥ २८ ॥

महात्मा धर्मराज की सेना में मुखिया सैनिक ही एक लाख थे—अतः उनकी समस्त सेना की संख्या नहीं हो सकती थी ॥ २८ ॥

ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा ।

ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर यमराज के समस्त मंत्री सैकड़ों पहाड़ों, वृक्षों और भालों से अपने अपने बलानुरूप और अभिलाषानुरूप युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ।

ते तु शोणित दिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः ॥ ३० ॥

उधर रावण भी स्वयं लड़ रहा था। लड़ते लड़ते रावण के मंत्रियों के अनेक शब्द लगे और वे रुधिर से नहा उठे। तिस पर भी वे लड़ते ही रहे ॥ ३० ॥

अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चकुरायोधनं महत् ।

अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम् ॥३१॥

राक्षसराज रावण और उसने मंत्रो सब प्रकार के अल्प शब्दों का प्रयोग कर एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३१ ॥

यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ।

अमात्यांस्तांस्तु सन्त्यज्य यमयोधा महाबलाः ॥३२॥

किन्तु कुछ देरबाद यम के महाबलों सैनिक रावण के मंत्रियों के साथ युद्ध करना छोड़, ॥ ३२ ॥

तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षेऽर्दशाननम् ।

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।

फुलाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥ ३३ ॥

रावण पर टूट पड़े और उसके ऊपर शूलों की वर्षा करने लगे। यमकिङ्करों के उस शब्दप्रहार से रावण का शरीर चलनी हो गया और वह रक्त से नहा उठा। उस समय पुष्पक विमान में बैठा हुआ रावण एक पुष्पित अशोकवृक्ष की तरह जान पड़ता था ॥ ३३ ॥

स तु शूलगदाप्रासाञ्छक्तिरामरसायकान् ।

मुमोच च शिलादृक्षान्मुमोचास्त्रंबलाद्वली ॥ ३४ ॥

रावण भी शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर और बाणों को चला रहा था। वह अस्त्रों के बल यमकिङ्करों पर शिलाओं और वृक्षों की वृष्टि कर रहा था ॥ ३४ ॥

तरुणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ।  
यमसैन्येषु तद्वर्षं पपात धरणीतले ॥ ३५ ॥

यमराज की सेना के ऊपर वृक्षों और पत्थरों की अति दारुण वर्षा होने लगी; जिससे सैनिक धराशायी होने लगे। अथवा वृक्ष और शिलाएँ यमराज के सैनिकों के ऊपर गिर कर ज़मीन पर गिर पड़ती थीं ॥ ३५ ॥

तांस्तु सर्वान्विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च ।  
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥ ३६ ॥

किन्तु तिस पर भी उन वृक्षादिकों को काट और अस्त्र शस्त्रों को रोक कर, यमराज के सैकड़ों हज़ारों योद्धा एक साथ रावण के ऊपर शस्त्रप्रहार करने लगे ॥ ३६ ॥

परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।  
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरच्छ्वासमपोथयन् ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार मेघ पर्वतों को धेर लेते हैं, उसी प्रकार वे सब रावण को धेर और उसकी दम सी घोंट कर, उसके ऊपर सहस्रों भिन्दिपालों और शूलों की वर्षा करने लगे ॥ ३७ ॥

विमुक्तकवचः क्रुद्धः \*सिद्धः शोणितविस्त्रवैः ।  
ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥ ३८ ॥

\* पाठान्तरे—“सितः” ।

उन प्रहारों से रावण का कवच ढूट फूट गया और उसके समस्त अंगों से रुधिर वहने लगा । तब वह कुपित हो और पुष्टक विमान को छोड़ पृथिवी पर खड़ा हो गया ॥ ३८ ॥

ततः स कार्मुकी वाणी समरे चाभिवर्धत ।

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथाऽन्तकः ॥ ३९ ॥

कुछ ही देर में रावण सम्हल गया । फिर कुपित हो वह हाथ में धनुष वाण ले दूसरे यमराज की तरह लड़ने के लिये तैयार हुआ ॥ ३९ ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमत्वं सन्धायकार्मुके ।

तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तज्जापं \*व्यपकर्षत ॥ ४० ॥

आकर्णात्स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ।

मुपोच तं शरं क्रुद्धस्तिपुरे शङ्करो यथा ॥ ४१ ॥

खड़े रहो ! खड़े रहो !! कह कर उन्ने वाण को पाशुपतात्म के मंत्र से अभिमंत्रित किया । तदनन्तर धनुष के रोदे को कान तक खींच कर उसने वह वाण छोड़ा । जैसे श्रीमहादेव जो ने त्रिपुरासुर पर वाण छोड़ा था ; वैसे हो रावण ने भी यमराज के सैनिकों पर वह वाण छोड़ा ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीत्सधूपज्वालमण्डलम् ।

वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छ्वतः ॥ ४२ ॥

धुआं और ज्वालामण्डल से युक उस अत्म का रूप श्रीधर काल में वनदहनकारी धधकते हुए दावाग्नि की तरह दिखाई देने लगा ॥ ४२ ॥

\* पाठान्तरे — “विचकर्ष सः” ।

ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतोरणे ।

मुक्तो गुलमान्दुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥४३॥

ज्वाला की मालाओं से युक्त वह अख्ल मार्ग के झाड़ों और बृक्षों को भस्म करता तथा मौसभक्षी पक्षियों को विछियाता हुआ यम की सेना की ओर दौड़ा ॥ ४३ ॥

ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु ।

\*बले तस्मिन्निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः ॥ ४४ ॥

इस अछा के तेज से यमराज के समस्त वीर सैनिक भस्म हो कर, इन्द्र की ध्वजा की तरह गिर पड़े ॥ ४४ ॥

ततस्तु सचिवैः सार्थं राक्षसो भीमविक्रमः ।

ननाद सु महानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ४५ ॥

इति एकविंशः सर्गः ॥

यह देख भयझुर विक्रमकारी राक्षस रावण अपने मंत्रियों के साथ पृथिवी को कंपायमान करता हुआ सा बड़े ज़ोर से गजा ॥ ४५ ॥

उत्तरकाण्ड का इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



### द्वाविंशः सर्गः

—::—

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः ।

शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ १ ॥

\* पाठान्तरे—“रणे” । † पाठान्तरे—“दावदग्धा नगा हृव ।”

रावण का घोर नाद सुन कर महाराज यमराज ने समझ लिया कि, रावण की जीत हुई और मेरी सेना नष्ट हो गयी ॥ १ ॥

स हि योधान्हतान्मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ।

अब्रवीत्त्वरितः सूतं रथे मे उपनीयताम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपने योद्धाओं का मारा जाना जान और क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र कर, अपने सारथि को रथ जोत कर, तुरन्त उपस्थित करने की आज्ञा दी ॥ २ ॥

तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् ।

स्थितः स च महातेजा अध्यारोहत तं रथम् ॥ ३ ॥

सारथि ने तुरन्त उनका दिव्य और विशाल रथ ला कर, खड़ा कर दिया । महातेजस्वी यमराज उस पर सवार हुए ॥ ३ ॥

पाशमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ।

येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ ४ ॥

जो इस चराचर नित्य जगत का संहार करने वाले हैं, वे मृत्युदेव भी पाश और मुग्द्र हाथ में ले कर, यमराज के आगे ( रथ पर ) बैठे ॥ ४ ॥

कालदण्डस्तु पाश्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् ।

यमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निमत् ॥ ५ ॥

धधकती हुई आग की तरह चमचमाता यमराज का अख-  
कालदण्ड भी मूर्तिमान हो कर उनकी बगल में बैठ गया ॥ ५ ॥

ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः ।

कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ ६ ॥

सप्रस्त लोकों को भयमोत करने वाले यमराज को इस प्रकार कुपित देख, उस समय तोनों लोक थर्हा उठे और देवता भी कांप उठे ॥ ६ ॥

ततस्त्वचोदयत्सूतस्तानश्वान् रुधिरप्रभान् ।

प्रययौ भीमसन्नादा यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥ ७ ॥

तदनन्तर जब सारथि ने लाल रंग वाले घोड़ों की हाँका ; तब वह रथ घोर शब्द करता हुआ, राज्यराज रावण को ओर चला ॥ ७ ॥

मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः ।

प्रापयन्मनस्तुल्या यत्र तत्प्रस्तुतं रणम् ॥ ८ ॥

मन के समान वेग से चलने वाले तथा इन्द्र के घोड़ों के समान उन घोड़ों ने एक मुहूर्त भर में यमराज को रणक्षेत्र में पहुँचा दिया ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।

सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्वुः ॥ ९ ॥

जिस विकराल रथ में साक्षात् मृत्युदेव बैठे थे, उसको देख रावण के मंत्री भयमीत हो भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयादिताः ।

नेह \*युद्धं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ॥ १० ॥

क्योंकि उनमें थोड़ा साहस था । वे मारे भय के अचेत से हो गये और कहने लगे—यहाँ युद्ध करना हम लोगों के सामर्थ्य के बाहिर की बात है । यह कहते हुए वे इधर उधर भाग गये ॥ १० ॥

\* पाठान्तरे—“योद्धु” । ”

स तु तं तादृशं दृष्टा रथं लोकभयावहम् ।

नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥ ११ ॥

परन्तु रावण, सब लोगों के लिये भयानक उस रथ को देख कर न तो घबड़ाया और न भयभीत ही हुआ ॥ ११ ॥

स तु रावण मासाद्य व्यसुजच्छक्तिमरान् ।

यमो मर्माणि संकुद्धो रावणस्य न्यकृन्तत ॥ १२ ॥

यमराज, रावण के निकट पहुँच कुद्ध हो, शक्तियों और तोमरों से उसके मर्मस्थलों को विदीर्ण करने लगे ॥ १२ ॥

रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुयोच ह ।

तस्मिन्वैवस्यतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥ १३ ॥

उधर रावण ने भी सावधान हो कर यमराज के रथ के ऊपर वैसे ही बाणों की वृष्टि की; जैसे मेघ, जल की वृष्टि करते हैं ॥ १३ ॥

ततो महाशक्ति शतैः पात्यमानैर्महोरसि ।

नाशक्रोत्प्रतिकर्तुं स राक्षसः स्वल्पपीडितः ॥ १४ ॥

यमराज ने रावण को ढातो में सैकड़ों बड़ो बड़ो शक्तियों मारीं, जिनकी चेष्ट से रावण कुक्र पीड़ित हुआ, और उन शक्तियों के रोकने का कुक्र भी उपाय न कर सका ॥ १४ ॥

एवं नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्षिणा ।

समरात्रं कुतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ॥ १५ ॥

शत्रुओं के मारने वाले यमराज ने इस प्रकार अनेक शत्रुओं के प्रहार करते हुए, सात दिन रात युद्ध कर, रावण को युद्ध से विमुख और संज्ञाहीन कर दिया ॥ १५ ॥

तदासीनुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः ।

जयमाकांक्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ १६ ॥

हे वीर ! परस्पर जय की अभिलाषा किये हुए यमराज और राक्षसराज—दोनों ही समरभूमि में डटे हुए घोर युद्ध करते रहे ॥ १६ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्र परमर्षयः ।

प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रणाजिरे ॥ १७ ॥

तब तो देवता, गन्धर्वों, सिद्धों और महर्षियों को अपने साथ ले आं और ब्रह्मा जी को आगे कर उस रणक्षेत्र में पहुँचे ॥ १७ ॥

संवर्त इव लोकानां युध्यतेरभवत्तदा ।

राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥ १८ ॥

प्रेतराज यमराज और राक्षसराज रावण का ऐसा घोर युद्ध हो रहा था, मानों प्रलयकाल उपस्थित हुआ हो ॥ १८ ॥

राक्षसेन्द्रोऽपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनिप्रभम् ।

निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन्बाणांस्ततोऽसृजत् ॥ १९ ॥

रावण इन्द्र के वज्र के समान अपने धनुष को टंकोरता हुआ मारे बाणों के आकाश को छाये देता था ॥ १९ ॥

मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरार्दयत् ।

यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्यस्वताङ्गयत् ॥ २० ॥

उसने मृत्यु के चार, सारथि के सात और यमराज के मर्मस्थलों में बड़ी फुक्ती से एक लाख बाण मारे ॥ २० ॥

ततः क्रुद्धस्य वदनाद्यमस्य समजायत ।

ज्वालामाली सनिःश्वासः सधूमः कोपपावकः ॥२१॥

तब क्रोध में भर जाने के कारण यमराज के मुख से सौंस के साथ सधूम कोपरूपी अग्नि धधकता हुआ प्रकट हुआ ॥ २१ ॥

तदाश्र्यमथो दृष्टा देवदानवसन्निधौ ।

प्रहर्षितौ सुसंरच्छौ मृत्युकालौ बभूवतुः ॥ २२ ॥

इससे देवता और दानवों को आश्र्यान्वित देख, उनके समीप खड़े हुए मृत्युदेव, हर्षित एवं क्रुद्ध हुए और लड़ने को तैयार हुए ॥ २२ ॥

ततो मृत्युः क्रुद्धतरो वैवस्ततमभाषत ।

मुश्च मां समरे यावद्दन्मीमं पापराक्षसम् ॥ २३ ॥

तब मृत्युदेव ने और भी अधिक क्रुद्ध हो कर यमराज से कहा—  
आप मुझे आज्ञा दीजिये । मैं अभी इस पापी रावण को मारे ढालता हूँ ॥ २३ ॥

नैषा रक्षोभवेद्य मर्यादा हि निसर्गतः ।

हिरण्यकशिपुः श्रीमान्नमुचिः शम्वरस्तथा ॥ २४ ॥

निसन्दिर्धूमकेतुश्च बलिवैरोचनोऽपि च ।

शम्भुर्देत्यो महाराजो वृत्रो वाणस्तथैव च ॥ २५ ॥

राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः ।

ऋषयः पन्नगा दैत्या यक्षाश्च ह्यप्सरोगणाः ॥ २६ ॥

युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा ।

क्षयं नीता महाराज सर्वतसरिदद्वुमा ॥ २७ ॥

एतेचान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः ।

विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ॥ २८ ॥

क्योंकि मेरा स्वाभाविक काम यही तो है । देखिये हिरण्यकशिषु, नमुचि, शम्बर, निसन्दि, धूमकेतु, बलि, दैत्येन्द्र शम्भु, वृश्च, बाण, बड़े बड़े शाखाज्ञ राजविंशि, गन्धर्व, नाग, ऋषि, पञ्चग, दैत्य, यज्ञ, अप्सरायें, और युगान्त में सप्तांगरा पृथिवी, पर्वत आदि ( वर अचर ) समस्त जीवों को मैंने नष्ट कर दिया और नष्ट कर डालता हूँ । इनको व बड़े बड़े बलवानों को, जो अति दुर्धर्ष थे, देखते ही मैंने नष्ट कर डाला । मेरे लिये इस राक्षस का मारना कोई बड़ा कठिन काम नहीं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

मुश्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् ।

न हि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥ २९ ॥

हे साधु ! हे धर्मज्ञ ! आप शीघ्र मुझे छोड़िये जिससे मैं इसे मार गिराऊँ । कोई कैसा ही बलवान क्यों न हो, मेरी दृष्टि के सामने पड़ने पर जीता नहीं बच सकता ॥ २६ ॥

बलं यम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः ।

स दृष्टो न मया कालं मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३० ॥

भगवन् ! यह ( महात्म्य ) मेरे बल का नहीं है, किन्तु यह मेरी स्वाभाविक मर्यादा है कि, मेरा देखा हुआ एक मुहूर्त मर भी नहीं जी सकता ॥ ३० ॥

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।

अब्रवीत्तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्मयहम् ॥३१॥

प्रतापो धर्मराज ने काल के ये वचन सुन उनसे कहा—तुम उहरो, मैं इसे मारता हूँ ॥ ३१ ॥

ततः संरक्तनयनः कुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।

कालदण्डमोर्धं तु तोलयामास पाणिना ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सूर्यपुत्र महाराज यमराज ने क्रोध से लाल लाल नेत्र कर, कभी निष्फल न जाने वाला कालदण्ड उठाया ॥ ३२ ॥

यस्य पाश्वेषु निहिताः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।

पावकाशनिसङ्काशो मुदगरो मूर्तिमान्स्थितः ॥३३॥

उस कालदण्ड के पास बड़े बड़े कालपाश और अग्नि एवं वज्र के समान मुग्दर मूर्तिमान हो कर सदा रहा करते हैं ॥ ३३ ॥

दर्शनादेव यः प्राणान्प्राणिनामपि कर्षति ।

किं पुनः स्पृशमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ॥३४॥

जिसे देखते ही प्राणधारियों के प्राण सूख जाते हैं, वह यदि किसी को पाश से ढू दे अथवा दण्ड का प्रहार करे तो फिर क्या कहना है ॥ ३४ ॥

स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्विव राक्षसम् ।

तेन स्पृष्टो बलवता महापहरणोऽस्फुरत् ॥ ३५ ॥

विशेष क्या कहा जाय, वह अग्नि की लपटों वाला महाशङ्क, बलवान यमराज द्वारा उठाये जाने पर, रावण को भस्म करने के लिये ही मानों सहसा धन्वक उठा ॥ ३५ ॥

ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात्रस्ता रणाजिरे ।

सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥ ३६ ॥

यमराज को हाथ में कालदण्ड लिये देख, वहाँ जो प्राणी उपस्थित थे, वे भयभीत हो भाग गये और देवता भी घबड़ा उठे ॥ ३६ ॥

तस्मिन्प्रहर्तुं कामे तु यमे दण्डेन रावणम् ।

यमं पितामहः साक्षादर्शयित्वेदमप्रवीत् ॥ ३७ ॥

जब यमराज, रावण के ऊपर दण्ड चलाने को उद्यत हुए, तब ब्रह्मा जो उनके समीप जा कर बोले ॥ ३७ ॥

वैवस्वत महावाहो नखलवमितविक्रम ।

न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥ ३८ ॥

हे अमित विक्रमकारिन् ! हे यमराज ! तुम इस दण्ड को चला कर, इस राक्षस को मत मारो ॥ ३८ ॥

वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुञ्जव ।

स त्वया नानृतः कार्या यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ३९ ॥

झोंकि हे देवश्रेष्ठ ! मैं इसको वरदान दे चुका हूँ । अतः मेरी बात तुझे असत्य न ठहरानी चाहिये ॥ ३९ ॥

ये हि मामनृतं कुर्यादेवो वा मानुषोऽपि वा ।

त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥ ४० ॥

देवता हो अथवा मनुष्य, जो कोई भी मेरी आङ्गा उल्लङ्घन करेगा, वह मानों त्रिलोकी को मूठा सिद्ध कर चुका । इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥

क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये ।

प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥ ४१ ॥

यह कालदण्ड महाभयङ्कर और त्रिलोकी को भयदायक है । जब क्रोध में भर, यह छोड़ा जायगा तब यह प्रिय अप्रिय अर्थात् भले बुरे प्राणियों (का विचार न कर) उन्हें नष्ट ही कर डालेगा ॥ ४१ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनामप्मितप्रभः ।

कालदण्डो मया सृष्टः सर्वमृत्युपुरस्कृतः ॥ ४२ ॥

क्योंकि मैंने इसे बनाया ही इस प्रकार का है । यह अमितप्रभा वाला कालदण्ड कभी निष्फल न जाने वाला और सब को नाश करने वाला है ॥ ४२ ॥

तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि ।

नहस्मिन्पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४३ ॥

अतएव हे सौम्य ! तुम इससे रावण के मस्तक पर प्रहार मत करो । क्योंकि इसके प्रहार से कोई भी प्राणी एक मुहूर्त भी जी नहीं सकता ॥ ४३ ॥

यदि ह्यस्मिन्निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः ।

म्रियते वा दशग्रीवस्तदाप्यभयतोऽनृतम् ॥ ४४ ॥

(फिर एक बात और भी है) यदि कहीं इस कालदण्ड के प्रहार से रावण न मरा अथवा मर ही गया, तो मेरा कथन दोनों ही प्रकार से मिथ्या हो जायगा ॥ ४४ ॥

तन्निवर्तय लङ्घेशादण्डमेतंसमुद्धतम् ।

सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥४५॥

इस लिये तुम रावण के ऊपर दण्ड का प्रहार मत करो और जो इस त्रिलोकी की रक्षा करना चाहते हो, तो मेरी बात को सत्य करो ॥ ४५ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।

एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४६ ॥

ब्रह्मा जी के ये वचन सुन कर, धर्मात्मा यमराज ने उत्तर दिया कि, आप मेरे स्वामी हैं। अतः आपकी आङ्गो आङ्गो से लीजिये मैं इस दण्ड को रखे देता हूँ और अब इसको न चलाऊँगा ॥ ४६ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ।

न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥

परन्तु आप यह तो बतलावें कि, इस युद्ध में मैं क्या करूँ? क्योंकि यह तो आपके वरदान के कारण अवश्य ही ठहरा ॥ ४७ ॥

एष तस्मात्प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः ।

इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

अतः इस राक्षस की द्वष्टि से मैं अदृश्य हुआ जाता हूँ। यह कह कर यमराज रथ सहित बहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।

आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ ४९ ॥

तब रावण इस प्रकार यमराज को जीत कर और अपने नाम का ढिंढोरा पिटवा कर, तथा पुष्पक विमान पर सवार हो कर, यमपुरी से चल दिया ॥ ४९ ॥

स तु वैवस्वतोदेवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ।

जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥ ५० ॥

इति द्वाविंशः सर्गः ॥

तदनन्तर यमराज भी ब्रह्मादि देवताश्रों के साथ स्वर्ग को गये और महामुनि नारद जी भी हर्षित हो उनके साथ गये ॥ ५० ॥

उत्तरकाण्ड का वाइसर्वा सर्ग पूरा हुआ ॥

—: \* :—

### त्रयोविंशः सर्गः

—: ० :—

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ।

रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान्दर्दर्श ह ॥ १ ॥

समर में बड़ाई पाये हुए रावण ने देवश्रेष्ठ यमराज को परास्त कर, अपने सहायकों को देखा ॥ १ ॥

ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।

रावणं राक्षसा दृष्टा \*विस्मयं समुपागमन् ॥ २ ॥

उसके सहायक राक्षसलोग उसे शख्षप्रहारों से जर्जरित और रक्त से नहाया हुआ देख, अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥

जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः ।

पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्वता रावणेन तु ॥ ३ ॥

\* पाठन्तरे—“हृष्टवत्समुपागमन् ।”

और “महाराज की जय हो” कहते हुए मारीचादि रातस, पुष्पक निमान पर सवार हुए ! तब रावण ने उन सब को ढाढ़स बँधाया ॥ ३ ॥

ततो रसातलं रक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम् ।  
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर रावण समुद्र में घुम रसातल में गया, जहाँ दैत्य और सौप रहते हैं और जिसको रक्षा वरुण देव करते हैं ॥ ४ ॥

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।  
कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥५॥

वाहुनि नाग की भोगपुरी में जा कर उसने नागों को जीत कर अपने बग में किया । तदनन्तर रावण हर्षित होता हुआ मणिमयीपुरी में गया ॥ ५ ॥

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरावसन् ।  
राक्षसस्तान्समागम्य युद्धाय समुपाद्यत् ॥ ६ ॥

वहाँ वसने वाले और वादानप्राप्त निवात कवच दैत्यों को रावण ने युद्ध के लिये ललकारा ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ।  
नाना प्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ॥ ७ ॥

वे दैत्य भी बड़े पराक्रमी, बलवान, दुर्मद और विविध प्रकार के आयुध चलाने में निपुण थे । अतः युद्ध का नाम सुनते ही वे हर्षित हुए ॥ ७ ॥

शू ईत्तिशु ईः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्चर्थैः ।

अन्योन्यं विभिदुः क्रुद्धा राक्षसा दानवास्तथा ॥८॥

शून, त्रिशून, बज्ज, पटा, तलबार आदि ले ले कर वे राक्षसों से लड़ने लगे ॥ ८ ॥

तेषां तु युध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः ।

न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥ ९ ॥

इन दैत्यों को रावण के साथ लड़ने लड़ते पूरा एक वर्ष हो गया, निस पर भी दोनों पक्षवालों में से किसी ने हार न मानी ॥ ९ ॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्य गतिरच्ययः ।

आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥ १० ॥

तब श्रिभुवनपति, अविनाशी, लोकपितामह ब्रह्मा जी विमान में बैठ अति शोभ्र वड़ी भी पहुँचे ॥ १० ॥

निवात कववानां तु निर्वार्य रणकर्म तत् ।

वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥ ११ ॥

और युद्ध में प्रवृत्त निवातकवचों को रोक कर उनने स्पष्ट रूप से ये बचन कहे ॥ ११ ॥

न ह्यं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।

न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ॥ १२ ॥

इस रावण को युद्ध में सुर या असुर कोई भी नहीं जीत सकता और आपको भी कोई नहीं मार सकता ॥ १२ ॥

राक्षसस्य सखित्वं च भवद्दिः सह रोचते ।

अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥ १३ ॥

अतः मैं चाहता हूँ कि, आप लोगों की रावण के साथ मैत्री हो जाय । ( मैत्री हो जाने पर ) मित्रों की सब वस्तुएँ एक ही होती हैं ( अर्थात् जो उसका है वह आपका होगा और जो आपका है वह उसका होगा । ) इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ।

निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत्तदा ॥ १४ ॥

तदनन्तर रावण अग्नि को साक्षी कर, निवातकवचों से मैत्री कर, अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ १४ ॥

अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः ।

स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः ॥ १५ ॥

तब निवातकवचों ने भी रावण का यथोचित सत्कार किया । रावण वहाँ एक वर्ष तक रहा । वहाँ उसका अच्छा सत्कार समान हुआ और अपनी राजधानी से भी अधिक सुखपूर्वक वहाँ वह रहा ॥ १५ ॥

तत्रोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् ।

सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम् ॥ १६ ॥

वहाँ रह कर, रावण ने निवातकवचों से सौ प्रकार की मायाएँ सीखीं । फिर वह वरुणदेव के नगर को हृद्घटा हुआ रसातल में घूमा किया ॥ १६ ॥

ततोशम नगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ।

गत्वा तु कालकेयांश्च इत्वा तत्र बलोत्कटान् ॥१७॥

( घूमता फिरता ) रावण कालकेय दैत्यों के अश्म नामक नगर में पहुँचा । कालकेय दैत्य बड़े बलवान थे । किन्तु रावण ने उनको भी रण में मार गिराया ॥ १७ ॥

शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत्तदा ।

इयालं च बलवन्तं च विद्युजिज्हृं बलोत्कटम् ॥ १८ ॥

इसी युद्ध में रावण ने अपने वहनोई अर्थात् शूष्णनखा के पति बलवान विद्युजिज्हृ को तलवार से काट डाला ॥ १८ ॥

जिह्या संलिहन्तं च राक्षसं समरे तदा ।

तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥ १९ ॥

क्योंकि वह रावण के मंत्रियों को खा डालना चाहता था । उसको मार कर रावण ने ज्ञानमात्र में चार सौ दैत्यों को मार डाला ॥ १९ ॥

ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम् ।

वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद्वाक्षसाधिपः ॥ २० ॥

तदनन्तर राक्षसराज रावण ने कैलास पर्वत के शिखर की तरह चमचमाता और सफेद बाढ़ल की तरह सफेद वरुण का दिव्य भवन देखा ॥ २० ॥

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् ।

यस्याः पयोभि निष्पन्दात्क्षीरोदा नाम सागरः ॥२१॥

रावण ने वहीं पर वह सुरभि गौ भी देखी, जिसके थनों से सदा दूध की धार बहा करती है और जिसके दुध की धार ही से क्षीरोद नामक सागर की उत्पत्ति हुई है ॥ २१ ॥

**ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् ।**

**यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिन्शाकरः ॥ २२ ॥**

वह सुरभि महावृषभेन्द्र (महादेव जी के माँडिया) की माता है और उसके दूध से (उत्पन्न क्षीरसागर से) शीतल किरनों द्वाला चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है ॥ २२ ॥

**यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ।**

**अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥२३॥**

इसी के सहारे फेन पीने वाले महर्षि जीते हैं। उसीसे अमृत उत्पन्न हुआ है और स्वधाभोजी पितरों की स्वधा भी उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥

**यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुराणि नाम नामतः ।**

**प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ।**

**प्रविवेश मद्याघोरं गुप्तं बृहुविधैर्वलैः ॥ २४ ॥**

उसको लोग सुरभि कहा करते हैं। उस परमाद्भुत सुरभि की प्रदक्षिणा कर रावण ने वरुण का श्रेष्ठ भवन देवा, जो विविध भाँति के सैनिकों से सुरक्षित था और वहां भयङ्कर था ॥ २४ ॥

**ततोथाराशताकीर्ण शारदाभ्रनिर्भं तदा ।**

**नित्यप्रहृष्टं ददृश वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥ २५ ॥**

वरुण का उत्तम भवन सैकड़ों धाराओं से सुशोभित, शरद  
ऋतु के बादल की तरह सफेद, और सदा हँसता हुआ सा देख  
पड़ता था ॥ २५ ॥

ततो हत्वा बलाध्यक्षान्सपरे तैश्च ताडितः ।

अब्रवीच्च ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥२६॥

वहाँ पहुँचने पर जब वरुण के सेनापतयों ने रावण को मारा  
( ताडित किया ) तब रावण ने उनसे लड़ कर, उनका मार डाला ।  
तदनन्तर उमने ( वचे हुए ) सैनिकों से कहा कि, तुम लोग तुरन्त  
जा कर अपने राजा से कहो कि, ॥ २६ ॥

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ।

वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोस्मीति साञ्जलिः ॥२७॥

रावण तुमसे लड़ने के लिये यहाँ आया है । अतः या तो तुम  
उससे आ कर लड़ो अथवा हाथ जोड़ कर उससे कहो कि “मैं  
हार गया । ” ऐसा करने से फिर तुमको किसी प्रकार का भय  
न होगा ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ।

पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन् गौश्च पुष्कर एव च ॥२८॥

इतने में वरुण जो के पुत्र और पौत्र अत्यन्त क्रीय में भर  
रावण से लड़ने के लिये निकले । उनके साथ गौ और पुष्कर  
नाम के दो सेनापति भी थे ॥ २८ ॥

ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ।

युक्त्वा रथान्कामगमानुद्घास्करवर्चसः ॥२९॥

ये लोग बड़े गुणी थे । ये लोग अपनी सेना को साथ लिये उदयकालीन सूर्य की तरह प्रभावान् तथा मन की तरह वेग से चलने वाले रथों पर चढ़ कर आये ॥ २६ ॥

**ततो युद्धं समभवदारुणं रोमहर्षणम् ।**

**सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ॥ ३० ॥**

तदनन्तर बुद्धिमान् रावण और जलराज वरुण के पुत्रों में अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥ ३० ॥

**आपत्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः ।**

**वारुणं तद्वलं सर्वं क्षणेन विनिपातितम् ॥ ३१ ॥**

राक्षस रावण के महावीर्यवान् मंत्रियों ने जल के राजा वरुण को उस समस्त सेना को ताण भर में नष्ट कर डाला ॥ ३१ ॥

**समीक्ष्य स्ववलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा ।**

**अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥ ३२ ॥**

वरुण के पुत्रों ने अपनी सेना का नाश देख तथा स्वयं बाण समूह से पीड़ित हो, कुछ देर के लिये लड़ाई बंद कर दी ॥ ३२ ॥

**महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ।**

**आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥ ३३ ॥**

फिर रावण को पुष्पक पर चढ़ा हुआ और अपने को भूमि पर से लड़ते देख, वरुण के पुत्र पौत्रादि शीघ्रगामी रथों सहित उड़ कर आकाश में पहुँचे ॥ ३३ ॥

**महदासीत्तस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत् ।**

**आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥**

अब आपने सामने हो कर लड़ने का स्थान प्राप्त कर, देवासुर संग्राम की तरह उन दोनों का घोर युद्ध आकाश में आरम्भ हुआ ॥ ३४ ॥

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसन्निधैः ।

विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान् रवान् ॥३५॥

वरुण की सेना ने अग्नि के समान बाणों को चला कर, रावण को संग्राम से विमुख कर दिया । रावण को युद्ध से विमुख देख, वे लोग विविध प्रकार से हर्षनाड़ करने लगे ॥ ३५ ॥

ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीक्ष्य धर्षितम् ।

त्यक्त्वा मृत्युभयं क्रुद्धो युद्धाकांक्षी व्यलोकयत् ।

तेन ते वारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः ॥ ३६ ॥

महोदरेण गदया हतास्ते प्रययुः क्षितिम् ॥३७॥

अपने राजा का ऐसा अपमान देख, महोदर बहुत क्रुद्ध हुआ । वह मौन को कुछ भी न गिन कर, युद्ध करने के लिये उनकी ओर देखने लगा । उस महोदर ने युद्ध में पवन की तरह वेग से चलने वाले वरुण के पुत्रों के घोड़ों को गदा के प्रहारों से मार कर ज़मीन पर गिरा दिया । उसने योद्धाओं को भी मारा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान्हयाश्चतान् ।

मुमोचाशु महानादं विरथान्वेक्ष्य तान् स्थितान् ॥३८॥

उन वरुण के पुत्रों के सैनिकों को और घोड़ों को मार कर और उनको विना रथ के खड़ा देख, महोदर ने हर्षनाद किया ॥ ३८ ॥

ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वैः ।  
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥ ३९ ॥

महोदर के गदा प्रहार से उनके घोड़े और चतुर सारथि मारे जा कर ज़मीन पर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

ते तु त्यक्त्वा रथान्पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ।  
आकाशे विष्टिताः शूराः स्वप्रभावान् विव्यथुः ॥ ४० ॥

महात्मा वरुण जी के पुत्र पौत्र विना रथ के रह जाने पर भी, अपने प्रभाव से आग ही में खड़े रहे, नोचे गिरे नहीं ॥ ४० ॥

धनूषि कृत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् ।  
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः सम वारयन् ॥ ४१ ॥

फिर उन्होंने अपने धनुष चढ़ा कर महोदर को मारे बाणों के तत्तविक्षत कर डाला और रावण को धेरा ॥ ४१ ॥

सायकैश्चापविभ्रष्टैर्जरुलैः उदारणैः ।  
दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥

और कीध में भर वज्र समान बाणों से उसे ऐसा छेदा; जैसे मेघ, जलविन्दुओं से विशालपर्वत को तर करते हैं ॥ ४२ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव मूर्च्छितः ।  
शरवर्षं महाधोरं तेषां मर्मस्थपातयत् ॥ ४३ ॥

इस पर रावण भी कालाग्नि की तरह क्रोध में भर, बाण बरसा कर, उनके मर्मस्थलों को छेदने लगा ॥ ४३ ॥

मुसलानि विच्छिणि ततो भल्लशतानि च ।

पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतग्रीष्महतीरपि ।

पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्टिः ॥ ४४ ॥

दुर्धर्ष रावण विविध प्रकार के मूषलों, सैकड़ों भालों, पट्टों, शक्तियों और बड़ी बड़ी शतध्रियों को वस्तु के पुत्रों पौत्रों के ऊपर चलाने लगा ॥ ४४ ॥

ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातिनः ।

महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः पष्टिहायनाः ॥ ४५ ॥

वे लोग रथगढ़ित थे, अनः वे लोग उन शस्त्रों के प्रहारों से वैसे ही दुःखी हुए ; जैसे साठ वर्ष का बूढ़ा हाथी दलदल में फँस कर, दुःखी होता है ॥ ४५ ॥

सीदमानान्सुतान्दृष्टा विह्वलान्स महावलः ।

ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ॥ ४६ ॥

तब महावलवान रावण वस्तु के पुत्रों को विह्वत और पीड़ित देख हर्षित हो, महामेघ को तरह बड़े ज़ार से गर्जा ॥ ४६ ॥

ततो रक्षो महानादान्मुक्त्वा हन्ति स्म वास्त्रान् ।

नानाप्रहरणो पेतैर्दारापातैरिवाम्बुदः ॥ ४७ ॥

तदनन्तर वारंवार गर्ज कर रावण, जलधारा बरसाते हुए मेघ की तरह अनेक प्रकार के शस्त्र शस्त्रों की वर्षा कर वस्तु जी के पुत्रों को मारने लगा ॥ ४७ ॥

ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले ।

रणात्स्वपुरुषैः शीघ्रं वृहाण्येव प्रवेशिताः ॥ ४८ ॥

अन्त में वरुण के पुत्र समर क्षेत्र फृथिवी पर गिर पड़े।  
नौकरों ने तुरन्त उनको उठा कर घर पहुँचाया ॥ ४८ ॥

तानब्रवीत्ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ।

रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहासो नाम वारुणः ॥ ४९ ॥

तदनन्तर रावण ने उन सेवकों से कहा कि, मेरा सन्देशा वरुण से जा कर कहो। तब प्रहास नामक वरुण के मंत्री ने रावण से कहा ॥ ४६ ॥

गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ।

गन्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाहयसे युधि ॥ ५० ॥

हे राज्ञसराज ! जिनको तुम युद्ध करने के लिये ललकार रहे हो, वे सलिलेश्वर महाराज वरुण जी गाना सुनने ब्रह्मलोक में गये हैं ॥ ५० ॥

तत्किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते नृपे ।

ये तु सन्निहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥ ५१ ॥

हे वीर ! जो वीर योद्धा कुमारों के पास थे, उनको तुम परास्त कर ही चुके। अब वरुण महाराज के न रहने से तुम व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो ? ॥ ५१ ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।

हर्षनादं विमुश्नन्वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥ ५२ ॥

तब राज्ञसपति रावण अपने नाम की विजयघोषणा कर और हर्षनाद करता हुआ, वरुणभवन से निकला ॥ ५२ ॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।  
लङ्घामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥ ५३ ॥

इति ब्रयोर्विंशः सर्गः ॥

रावण जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से लौट कर आकाश में पुष्पकविमान उड़ाता हुआ लङ्घा की ओर चला गया ॥ ५३ ॥

उत्तरकाण्ड का तेहसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

[ नोट—किसी किसी पुस्तक में इसके आगे पाँच सर्ग और पाये जाते हैं, जिनको पूर्व टीकाकारों ने प्रक्षिप्त माना है । ]



## प्रक्षिप्तेषु प्रथमः सर्गः

—०—

[ ततोश्मनगरं भूयो विचेर्युद्धुर्मदाः ।  
यत्रापश्यद्वश्यावीवा गृहं परम भास्वरम् ॥ १ ॥

तदनन्तर रावण युद्धोन्मत्त राक्षसों को साथ ले, फिर अश्मनगर में घूमने लगा । वहाँ उसने एक बड़ा प्रकाशमान भवन देखा ॥ १ ॥

वैदूर्यतोरणाकीर्णं मुक्ताजालविभूषितम् ।  
सुवर्णस्तंभगहनं वेदिकाभिः समन्ततः ॥ २ ॥

उस भवन के द्वारों पर पश्चे जड़े हुए थे और उन पर मौतियों की मालाएँ लटक रही थीं । उसमें सोने के बड़े बड़े खम्मे थे और जगह जगह सुन्दर वेदिकाएँ बनी हुई थीं ॥ २ ॥

वज्रस्फटिकसोपानं किञ्चिणीजालसंवृतम् ।

बहासनयुतं रम्यं महेन्द्रभवनोपमम् ॥ ३ ॥

उसमें जो सोढ़ियाँ थीं वे हीरों और सफटिक पत्थर की थीं । उस भवन में जगह जगह किंकिणी के स्मूइ लटक रहे थे । बहुत से आसन बिछे हुए थे । वह भवन बड़ा रमणीक था । वहाँ की वैसी ही गाभा थी; जैसी इन्द्र के भवन की ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा गृहवरं रम्यं दशग्रीवः प्रतापवान् ।

कस्येदं भवनं रम्यं मेरुपन्दरसन्निभम् ॥ ४ ॥

प्रतापी रावण ने उस रम्य भवनोत्तम का देख कर कहा कि, मेरुपर्वत के समान विगाल यह किसका घर देख पड़ता है ॥ ४ ॥

गच्छ प्रहस्त शीघ्रं त्वं जानीष्व भवनोत्तमम् ।

एवमुक्तः प्रहस्तस्तु प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ ५ ॥

हे प्रहस्त ! तुम शीघ्र जा कर एता लगाओ । यह उत्तम भवन किसका है । रावण के यह वचन सुन, प्रहस्त उस श्रेष्ठ भवन के भीतर गया ॥ ५ ॥

निःशून्यं प्रैक्षत वरं पुनः कक्ष्यान्तरे ययौ ।

सप्तकक्ष्यान्तरं गत्वा ततो ज्वालामपश्यत ॥ ६ ॥

वहाँ प्रहस्त को कोई भी न देख पड़ा । तब प्रहस्त और आगे बढ़े । इस प्रकार वे उस भवन की सात ड्योढ़ियाँ पार कर गये । सातवीं ड्योढ़ी पर उनको अग्निज्वाला देख पड़ी ॥ ६ ॥

ततो दृष्टः पुमांस्तत्र हृष्टे हासं मुमोच सः ।

श्रुत्वा स तु महाहासमूर्ध्वरोमा भवत्तदा ॥ ७ ॥

फिर उन्हें एक पुरुष भी देख पड़ा जिसने प्रहसन को देखते ही हर्षित हो अदृश्यास को सुन प्रहसन के (मारे डर के) रोंगटे खड़े हो गये ॥ ७ ॥

ज्यालामध्ये स्थितस्तत्र हेममाली विमोहितः ।

आदित्य इव दुप्रेक्ष्यः साक्षादिव यमः स्थितः ॥ ८ ॥

वह पुरुष उत्त अग्निगाता के भोनर सोने की माला पहिने हुए बैठा था । जैसे सूर्य की ओर देखना सहज नहीं है, वैसे ही उसको देखना भी अहज नहीं था । वह साक्षात् यमराज की तरह बैठा हुआ था ॥ ८ ॥

तथा दृष्टा तु वृत्तान्तं त्वरमाणो विनिर्गतः ।

विनिर्गम्याब्रवीत्सर्वं रावणाय निशाचरः ॥ ९ ॥

राक्षस प्रहसन वहाँ का यह हाल देख धबड़ा कर, तुरन्त बाहर निकल आया और बाहर आ कर, वहाँ का सारा हाल रावण से कहा ॥ ९ ॥

अथ राम दशग्रीवः पुष्पकादवरुह्य सः ।

प्रवेष्टुमिच्छन्वेशमाथ भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ १० ॥

हे राम ! नदननर काजल के पहाड़ को तरह कृष्णवर्ण रावण पुष्पक विमान से उतर पड़ा और ज्योंही उस घर में जाने की तैयार हुआ ॥ १० ॥

चन्द्रमौलिर्वपुष्पांश्च पुरुषोऽस्याग्रतः स्थितः ।

द्वारमावृत्य सहसा ज्वालाजिह्वो भयानकः ॥ ११ ॥

त्योंही चन्द्रमा सिर पर धारण किये, विशाल वपुधारी एक भयङ्कर पुरुष सहसा द्वार को रोक कर रावण के सामने आ खड़ा हुआ। उसकी जिहा आग की लपट के समान थी ॥ ११ ॥

**रक्ताभश्चारुदशनो विम्बोष्टश्चारु दर्शनः ।**

**महाभीषणनासश्च कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ १२ ॥**

उसकी आँखें लाल, दन्तपंक्ति सुन्दर, ओंठ कुन्द्रु के समान, शरीर की गठन सुन्दर, नाक बड़ी भयानक, गर्दन शङ्ख की तरह और ढोड़ी बहुत बड़ी थी ॥ १२ ॥

**रुदश्मश्रुनिंगूढास्थिर्घट्टालो लोमहर्षणः ।**

**गृहीत्वा लोहमुसलं द्वारं विष्टभ्य तिष्ठति ॥ १३ ॥**

उसकी डाढ़ी और मूँछें बड़ी धनी, अस्थियाँ मौसल, डाढ़े बड़ी बड़ी और उसका आकार सब तरह से देखने वाले के रोंगटे खड़े करने वाला था। वह हाथ में मूसल लिये द्वार रोके खड़ा था ॥ १३ ॥

**अथ सन्दर्शनात्तस्य ऊर्ध्वरोमा वभूव सः ।**

**हृदयं कम्पते चास्य वेपथुश्चाप्य जायत ॥ १४ ॥**

उसको देखते ही रावण के रोंगटे खड़े हो गये, कलेजा धड़कने लगा और शरीर थरथराने लगा ॥ १४ ॥

**निमित्तान्यमनोज्ञानि दृष्टा रामं व्यचिन्तयत् ।**

**अथ चिन्तयतस्तस्य स एव पुरुषोऽब्रवीत् ॥ १५ ॥**

हे राम ! इस प्रकार के अपशकुन देख, रावण खड़ा खड़ा कुछ सोच ही रहा था कि, उस पुरुष ने स्वयं रावण से कहा ॥ १५ ॥

किं त्वं चिन्तयसे रक्षो ब्रूहि विस्त्रिधमानसः ।  
युद्धातिथ्यमहं वीर करिष्ये रजनीचर ॥ १६ ॥

हे रावण ! तू क्या सोच रहा है ? मन को सावधान कर के बतला । हे वीर ! हे रजनीचर ! मैं युद्ध द्वारा तेरा सत्कार करूँगा ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा स तद्रक्षः पुनर्वेचनमब्रवीत् ।

योत्स्यसे बलिना सार्धमथवा मन्यसे कथम् ॥ १७ ॥

वह पुरुष इस प्रकार कह कर, फिर रावण से कहने लगा— क्या तू बलि के साथ लड़ेगा ? अथवा तेरा और कुछ विचार है ॥ १७ ॥

रावणोऽभिहतो भूय ऊर्ध्वरोमा व्यजायत ।

अथ धैर्यं समालम्ब्य रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

उस पुरुष के मुख से इन बचनों के निकलते ही रावण के फिर रोंगटे खड़े हो गये । कुछ देर बाद हिमत बांध रावण ने कहा ॥ १८ ॥

गृहेषु तिष्ठते को हि तद्ब्रूहि वदतां वर ।

तेनैव सार्धं योत्स्यामि यथा वा मन्यते भवान् ॥ १९ ॥

हे बचन बोलने वालों में श्रेष्ठ ! यह तो बतलाइये कि, इस घर में रहता कौन है ? मैं उसीके साथ लड़ूँगा । अथवा आपकी जैसी सम्मति होगी, वही मैं करूँगा ॥ १९ ॥

स एनं पुनरप्याह दानवेन्द्रोऽत्र तिष्ठति ।

एष वै परमोदारः शूरः सत्यपराक्रमः ॥ २० ॥

वीरो वहुगुणोपेतः पाशहस्त इवान्तकः ।  
 वालाक् इव तेजस्वी समरेष्वनिवर्तकः ॥ २१ ॥  
 अमर्षी दुर्जयो जेता वलवान्गुणसागरः ।  
 प्रियंवदः सविभागी गुरुविप्रप्रियः सदा ॥ २२ ॥

उस पुरुष ने उत्तर देते हूप रावण से कहा । इस भवन में दानवराज बलि रहते हैं, जो बड़े उदार, शूरवीर, सत्यपराकर्मी, अनेक गुणों से भूषित, हाथ में पाश तिये दूसरे यमराज की तरह, उद्यक्तान्त्रीन सूर्य को नरहतेजस्वी और युद्ध से कभी मुँह न मोड़ने वाले हैं । वे अमर्षी ( शत्रु के अपराध को क्षमा न करने वाले ) दुर्जय, शत्रु को जीने वाले, वलवान और गुणों के तो समुद्र हैं । वे प्रियभाषी, संविभागी, ( यथोचित दाता ) तथा गुरु और ब्राह्मणों में प्रोति रखने वाले हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

कालाकाङ्क्षी महासत्त्वः सत्यवाक् सौम्यदर्शनः ।  
 दक्षः सर्वगुणोपेतः शूरः स्वाध्यायतत्परः ॥२३॥

वे समय देख कर काम करने वाले, महावलवान, सत्य बोलने वाले, प्रियदर्शन, दक्ष, सर्वगुणसम्पन्न, शूर और स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं ॥ २३ ॥

एष गच्छति वात्येष ज्वलते तपते तथा ।  
 देवैश्च भूतसङ्क्लैश्च पन्नगैश्च पत्रिभिः ॥ २४ ॥

यद्यपि वे पैदल चलते हैं, तथापि उनकी चाल वायु के समान तेज है । वे श्रग्नि के समान प्रज्वलित और सूर्य की तरह ताप देने वाले हैं । वे देवताओं, प्राणियों, सांपों और पक्षियों से तनक भी नहीं ढरते ॥ २४ ॥

भयं यो नाभिजानाति तेन त्वं योद्धुमिच्छसि ।  
बलिनां यदि ते योद्धुं रोचते राक्षसेश्वर ॥ २५ ॥

भय क्या वस्तु है, सो तो वे जानते ही नहीं । हे रावण ! क्या तू उन्हों दानवेन्द्र बलि के साथ लड़ना चाहता है ? हे राक्षसेश्वर ! यदि तुझे बलि के साथ लड़ना पसंद हो तो, ॥ २५ ॥

प्रविश त्वं महासत्वं संग्रामं कुरु मा चिरम् ।  
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रविवेश यतो बलिः ॥ २६ ॥

हे महाबली ! इस भवन के भीतर जा कर शीघ्र उनसे युद्ध कर । रावण यह वचन सुन कर, बलि के निकट गया ॥ २६ ॥

स विलोक्याथ लङ्घेशं जहास दहनोपमः ।  
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः स्थितो दानवसत्तमः ॥ २७ ॥

सूर्य की तरह दुष्प्रेक्ष्य दानवोत्तम महाराज बलि, रावण को देखते ही हँस पड़े ॥ २७ ॥

अथ संदर्शनादेव बलिर्वै विश्वरूपवान् ।

स गृहीत्वा च तद्रक्ष उत्सङ्घेस्थाप्य चाब्रवीत् ॥ २८ ॥

अग्नि के समान रूप वाले विश्वरूप राजा बलि ने रावण को हाथों से पकड़ कर, अपनी गोदो में बिठा लिया और उससे कहा ॥ २८ ॥

दशग्रीव महाबाहो कं ते कामं करोम्यहम् ।

किमागमन कृत्यं ते ब्रूहि त्वं राक्षसेश्वर ॥ २९ ॥

हे महाबाहो ! हे दशग्रीव ! मैं तेरा क्या करूँ ? हे राक्षसेश्वर ! यह तो बतला कि, तु यहाँ क्यों आया है ? ॥ २९ ॥

एवमुक्तस्तु बलिना रावणो वाक्यमब्रवीत् ।

श्रुतं मया महाभाग बद्धस्त्वं विष्णुना पुरा ॥ ३० ॥

जब बलि ने यह पूँछा तब रावण कहने लगा—हे महाभाग !  
मैंने सुना है कि, पूर्वकाल से तुमको विष्णु ने बांध रखा है ॥ ३० ॥

सोऽहं मोक्षयितुं शक्तो बन्धनात्वां न संशयः ।

एवमुक्ते ततो हासं बलिमुकत्वैनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

सो मैं निस्सन्देह तुमको उनके बंधन से छुड़ा सकता हूँ । यह  
सुन राजा बलि हँस कर बोले ॥ ३१ ॥

श्रूयतामभिधास्यामि यत्त्वं पृच्छसि रावण ।

य एष पुरुषः श्यामो द्वारे तिष्ठति नित्यदा ॥ ३२ ॥

हे रावण ! तूने जो पूँछा उसका मैं उत्तर देता हूँ । सुन । वह  
जो श्यामवर्ण पुरुष सदा मेरे द्वार पर ही खड़ा रहता है ॥ ३२ ॥

एतेन दानवेन्द्राश्च तथान्ये बलवत्तराः ।

वशं नीता बलवता पूर्वे पूर्वतराश्रये ॥ ३३ ॥

उसने अपने बल से पूर्ववर्ती समस्त दानवेन्द्रों तथा अन्यान्य  
बलशालियों को अपने वश में कर लिया ॥ ३३ ॥

बद्धः सोऽहमनेनैव कृतान्तो दुरतिक्रमः ।

क एनं पुरुषो लोके वश्यिष्यति मानवः ॥ ३४ ॥

उसने मुझे भी बांध रखा है । यह यमराज की तरह दुर्बर्ष  
है । ऐसा इस लोक में कौन पुरुष है, जो उसको धोखा दे  
सके ॥ ३४ ॥

सर्वभूतापर्हतीं य एष द्वारि तिष्ठति ।

कर्ता कारणिता चैव धाता च भुवनेश्वरः ॥ ३५ ॥

हे रावण ! जो पुरुष द्वार पर खड़ा है, वही सब प्राणियों का संहार करने वाला, कर्ता, प्रेरक, सब का रचने वाला और समस्त भुवनों का स्वामी है ॥ ३५ ॥

न त्वं वेद न चैवाहं भूतभव्यभवत्प्रभुः ।

कलिश्वैवैष कालश सर्वभूतापहारकः ॥ ३६ ॥

उसका भेद न तो तू जान सकता है न मैं । वह भूत, भविष्यद् और वर्तमान ( प्राणिमात्र ) का प्रभु है । वही कलि है, वही समस्त प्राणियों का नाश करने वाला काल है ॥ ३६ ॥

लोकत्रयस्य सर्वस्य हर्ता स्तृष्टा तथैव च ।

संहरत्येष भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३७ ॥

वही तीनों लोकों के समस्त जीवों का रचने और विगाइने वाला है । वही स्थावर जड़म ( चर, अचर ) प्राणधारियों का नाश करने वाला है ॥ ३७ ॥

पुनश्च सृजते सर्वपनाद्यन्तं महेश्वरः ।

इष्टं चैव हि दत्तं च हुतं चैव निशाचरः ॥ ३८ ॥

तथा पुनः उनकी सृष्टि करने वाला है । वही महेश्वर है और आदि अन्त रहित है अथवा अनादि और अनन्त सृष्टि उसीके बश में है । हे राक्षस ! दान, यज्ञ, होम का फल देने वाला वही है ॥ ३८ ॥

सर्वमेव हि लोकेशो धाता गोप्ता न संशयः ।  
नैवंविधं महदभूतं विद्यते भुवनत्रये ॥ ३९ ॥

वही समस्त लोकों का स्वामी है । वही सबको बनाता है और वही सब की रक्षा भी करता है । इसमें तनक भी सन्देह नहीं है । इस प्रकार का कोई महाप्राणी त्रिभुवन में नहीं है ॥ ३९ ॥

अहं त्वं चैव पौलस्त्य ये चान्ये पूर्ववत्तराः ।  
नेता ह्येषा महदभूतं पशुं रशनया यथा ॥ ४० ॥

हे पुलस्त्यवंशीय ! मेरा और तेरा तथा मेरे और तेरे पूर्व पुरुषों का वही नियन्ता है । जैसे पगु की गर्दन में रससी बौध कर मनुष्य उसे खोंचता और उसे अपने वश में कर लेता है, वैसे ही वह भी सब को अपने वश में रखता है ॥ ४० ॥

पुत्रो दनुः शुकः शम्भुर्निशुभः शुभं एव च ।  
कालनेमिश्र प्राह्लादिः कूटा वैरोचनो मृदुः ॥ ४१ ॥  
यमलार्जुनौ च कंसश्च कैटभो मधुना सह ।  
एते तपन्ति द्योतन्ति वान्ति वर्षन्ति चैव हि ॥ ४२ ॥

बृत्र, दनु, शुक, शुभ, निशुभ, कालनेमि, प्राह्लादि, कूट, वैरोचन, मृदु, यमलार्जुन, कंस, कैटभ और मधु ये सब सूर्य की तरह तपते, चन्द्रमा की तरह प्रकाश करते, वायु की तरह बहते और बादल की तरह बरसते थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

[ नोट—जपर के श्लोकों में कंस और यमलार्जुन के नाम देख कर अनेक विचारवान लोगों का मत है कि, उत्तरकाण्ड का अधिकांश भाग उसमें पीछे से जोड़ा गया है । आदिकवि का रचा हुआ नहीं है । यद्यपि सरल विश्वास

रखने वाले आस्तिकों का समाधान “यथापूर्वमकल्पयत्” इस श्रुतिवाक्य से हो जाता है, तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ने वाले उत्तरकाण्ड के अधिकांश भाग को ऐतिहासिक महत्त्व देने के लिये तैयार नहीं हैं । ]

**सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वैस्तसं महत्तपः ।**

**सर्वे ते सुमहात्मानः सर्वे वै योगधर्मिणः ॥ ४३ ॥**

इन सब ने सैकड़ों यज्ञ किये थे और बड़े बड़े उग्र तप किये थे । ये समस्त बड़े बलवान थे और सब ही अपने कार्य में कुशल थे । (योगः कर्म सुकौशलम्) ॥ ४३ ॥

**सर्वैरैश्वर्यमासाद्य भुक्तं भोगैर्महत्तरैः ।**

**दत्तमिष्टमधीतं च प्रजाश्च परिपालिताः ॥ ४४ ॥**

इन लोगों ने बड़े बड़े ऐश्वर्य पा कर, विविध प्रकार के भोग भोगे । इन लोगों ने दान दिये, यज्ञ किये, वेदाध्ययन किया और प्रजा का पालन किया ॥ ४४ ॥

**स्वपक्षेष्वनुगोप्तारः प्रहन्तारः परेष्वपि ।**

**सापरेष्वपि लोकेषु नैतेषां विद्यते समम् ॥ ४५ ॥**

इन लोगों ने अपने पक्षवानों को रक्षा की और शत्रुपक्ष का नाश किया । युद्ध करने में त्रिलोकी में ऐसा कोई न था, जो इनका सामना कर सकता ॥ ४५ ॥

**शूरास्त्वभिजनोपेताः सर्वशास्त्रार्थपारगाः ।**

**सर्वविद्याप्रवेत्तारः संग्रामेष्वनिवर्तकाः ॥ ४६ ॥**

ये सब ही बड़े शूरवीर कुलोन, और समस्त शास्त्रों के पारदर्शी थे । ये समस्त विद्याओं के जानने वाले और युद्ध से कभी मुख न मोड़ने वाले थे ॥ ४६ ॥

सर्वैस्त्रिदशराज्यानि कारितानि माहात्मभिः ।

युद्धे सुरगणा सर्वे निर्जिताश्च सहस्रशः ॥ ४७ ॥

इन सब ने देवताओं पर हुक्मत की और हजारों बार देवताओं को जीता था ॥ ४७ ॥

देवानामप्रिये सक्ताः स्वपक्षपरिपालकाः ।

प्रमत्तश्चोपसक्ताश्च बालार्कसमतेजसः ॥ ४८ ॥

देवताओं का अहित करने में ये सब सदा निरत रहते थे और अपने पक्ष का पालन किया करते थे । ये यब सदा अभिमान में चूर रहते थे और अपनी धुनि में लगे रहते थे । ये सब प्रातः कालीन सूर्य की तरह तेजस्वी थे ॥ ४८ ॥

यस्तु देवान्पर्धर्षेत तदेषां विष्णुरीश्वरः ।

उपायपूर्वकं नाशं स वेत्ता भगवान्हरिः ॥ ४९ ॥

( द्वार पर जो खड़े हैं वे ही ) भगवान् विष्णु हैं । जो कोई देवताओं का अनादर करता है, उसके ध्वंस करने का उपाय वे ही भगवान् विष्णु जानते हैं ॥ ४९ ॥

प्रादुर्भावं विकुरुते येनैतन्निधनं नयेत् ।

पुनरेवात्मनात्मानमधिष्ठाय स तिष्ठति ॥ ५० ॥

ये किसी ऐसे को उत्पन्न कर देते हैं, जो उपद्रवी का नाश कर डालता है और यह स्वयं अधिष्ठाता के अधिष्ठाता ही बने रहते हैं ॥ ५० ॥

एवमेतेन देवेन दानवेन्द्रा महात्मना ।

ते हि सर्वे क्षयं नीता बलिनः कामरूपिणः ॥ ५१ ॥

उन्हींने बड़े बड़े कामरूपी महाबलवान् दानवेन्द्रों का इस प्रकार नाश किया है ॥ ५१ ॥

सपरे च दुराधर्षाः श्रूयन्ते येऽपराजिताः ।

तेऽपि नीता महदभूताः कृतान्तबलचोदितः ॥ ५२ ॥

जो युद्ध में दुर्धर्ष और किसी से न हारने वाले सुने जाते थे, उनको भी उस महापुरुष ने यमलोक भेज दिया ॥ ५२ ॥

एवमुक्त्वाथ प्रोवाच राक्षसं दानवेश्वरः ।

यदेतदृद्धश्यते वीर चक्रं दीप्तानलोपमम् ॥ ५३ ॥

एतदगृहीत्वा गच्छ त्वं मम पार्श्वं महाबल ।

ततोऽहं तव व्याख्यास्ये मुक्तिकारणमव्ययम् ॥ ५४ ॥

दानवेश्वर बलि ने रावण से इस प्रकार कह कर, फिर कहा कि, है वीर ! यह जो आग को तरह चमचमाता \*चक्र देख पड़ता है, है महाबली ! ज़रा इसे उठा कर मेरे निकट तो ले आओ । तब मैं तुमको अपने सदा के लिये बन्धन से छूटने का कारण बतला दूँगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

[नोट —\* चक्र से अभिप्राय गोलाकार कान के कुण्डल से है, क्योंकि आगे ५६वें श्लोक में कुण्डल का स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।]

तत्कुरुष्व महाबाहो मा विलम्बस्व रावण ।

एतच्छ्रुत्वा गतो रक्षः प्रहसंश्च महाबलः ॥ ५५ ॥

यत्र स्थितं महादिव्यं कुण्डलं रघुनन्दन ।

लीलयोत्पाटनं चक्रे रावणो बलदर्पितः ॥ ५६ ॥

हे महाबली रावण ! मैंने जो काम तुमको बतलाया है, उसे तुम झटपट कर डालो । हे रघुनन्दन ! यह सुन, रावण हँसता हुआ उस दिव्य दुश्टन के पास गया और उसने अपने बल के घमण्ड में आ चिना प्रयास ही उसे उठाना चाहा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

न च चालयितुं शक्तो रावणोऽभूत्कथंचन ।

लज्जया स पुनर्भूयो यत्नं चक्रे महाबलः ॥ ५७ ॥

किन्तु उसका उस्काना तो जहाँ तहाँ रहा, रावण उसे उसके स्थान से हिला डुला भी न सका । तब तो शर्मा कर उसने बड़े प्रयत्न के साथ अपना पुरा बल लगा कर उठाना चाहा ॥ ५७ ॥

उत्क्षिप्तमात्रे दिव्ये च पपात भुवि राक्षसः ।

छिन्नमूलो यथा शालो रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ५८ ॥

उसने उसे उठाया ही था कि, वह मूर्च्छित हो पृथिवी पर ऐसे गिर पड़ा ; जैसे जड़ से कटा हुआ साखू का पेड़ गिरता है । यही नहीं बल्कि उसके मुँह से रक निकला जिससे वह नहा उठा ॥ ५८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे जड़े शब्दः पुष्पकसम्भवः ॥

राक्षसेन्द्रस्य सचिवैर्मुक्तो हाहाकृतो महान् ॥ ५९ ॥

यह कौतुक देख, पुष्पकविमान में बैठे हुए उसके सचिवों ने बड़ा हाहाकार मचाया ॥ ५९ ॥

ततो रक्षो मुहूर्तेन चेतनां लभ्य चोत्थितम् ।

लज्जयावनतीभूतं बलिर्वाक्यमुवाच ह ॥ ६० ॥

एक मुहूर्त मर अचेत रह कर, रावण सचेत हो उठ खड़ा हुआ; किन्तु लज्जा के मारे वह सिर ऊपर न उठा सका । उस समय बलि ने उससे कहा ॥ ६० ॥

आगच्छ राक्षसश्रेष्ठ वाक्यं शृणु मयोदितम् ।

यत्त्वया चोद्यतं वीर कुण्डलं मणिभूषितम् ॥ ६१ ॥

हे राक्षसश्रेष्ठ ! मेरे समीर आओ और मैं जो कुक्र कहँ  
उसे सुनो । हे वीर ! तुम जिस मणिजड़ित कुण्डल को उठाने गये  
थे ॥ ६१ ॥

एतद्दि पूर्वजस्यासीत्कर्णभरणमीक्ष्यताम् ।

एतत्पतितवच्चैवमत्र भूमौ महाबल ॥ ६२ ॥

वह मेरे एक पूर्वपुरुष के पक कान का कुण्डल है । हे महा-  
बली ! यह इसी तरह यहाँ पृथिवी पर गिरा था ॥ ६२ ॥

अन्यतपर्वतसानौ हि पतितं कुण्डलादनु ।

मुकुटं वेदिसामीप्ये पतितं युध्यतो भुवि ॥ ६३ ॥

दूसरे कान का कुण्डल जब वे युद्ध कर रहे थे, तब पर्वतशृङ्ख  
पर गिरा था तथा उनके सीप का मुकुट वेदी के पास पृथिवी  
पर गिरा था ॥ ६३ ॥

हिरण्यकशिपोः पूर्व मम पूर्वपितामहात् ।

न तस्य कालो मृत्युर्वा न व्याधिर्न विहिंसकाः ॥ ६४ ॥

न दिवा मरणं तस्य न रात्रौ सन्ध्योर्नहि ।

न शुष्केण न चाद्रेण न च शस्त्रेण केनचित् ॥ ६५ ॥

मेरे पितामह हिरण्यकशिपु थे । उनका काल, मृत्यु या रोग  
किसी से भी भय न था । दिन में, रात में और दोनों सम्याओं में  
वे मर नहीं सकते थे । न किसी सूखी और न किसी गीली वस्तु  
से और न किसी शब्द ही से वे मारे जा सकते थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

विद्यते राक्षसश्रेष्ठं तस्य नाख्वेण केनचित् ।

प्रह्लादेन समं चक्रे वादं परमदारुणम् ॥ ६६ ॥

हे राक्षस ! विशेष क्या कहा जाय, किसी शख्त से उनकी मृत्यु न थी । किन्तु उन्होंने अपने पुत्र प्रह्लाद के साथ बड़ा झगड़ा किया ॥ ६६ ॥

तस्य वादे समुत्पन्ने धीरो लोकभयङ्करः ।

सर्ववर्यस्य वीरस्य प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ ६७ ॥

उत्पन्नो राक्षसश्रेष्ठं नृसिंहाकृतिरूपधृक् ।

दृष्टं च तेन रौद्रेण क्षुब्धं सर्वमशेषतः ॥ ६८ ॥

उन सर्वश्रेष्ठ महात्मा वीर का जब प्रह्लाद से विवाद उठ खड़ा हुआ, तब हे राक्षसश्रेष्ठ ! वे नृसिंह के रूप में प्रकट हुए । उनका रूप ऐसा भयङ्कर था कि, उस रूप को देख सब में खलबली मच गयी ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

तत उद्धृत्य बाहुभ्यां नखैर्निन्ये यमक्षयम् ।

एष तिष्ठति द्वारस्थो वासुदेवो निरञ्जनः ॥ ६९ ॥

तदनन्तर नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को दोनों बाहों से उठा कर, अपने नखों से फाड़ कर मार डाला । हे राक्षस ! वे ही निरञ्जन वासुदेव द्वार पर खड़े हैं ॥ ६६ ॥

तस्य देवाधिदेवस्य गदतो मे शृणुष्व ह ।

वाक्यं परमभावेन यदि ते वर्तते हृदि ॥ ७० ॥

मैं इन देवाधिदेव के बारे में जो कुछ कहता हूँ, उसे यदि तुम ध्यान दे कर सुनोगे, तो तुम्हारी समझ में मेरी बातें आ जायँगी ॥ ७० ॥

इन्द्राणां च सहस्राणि सुराणामयुतानि च ।

ऋषीणां चैव मुख्यानां शतान्यब्दसहस्रशः ॥ ७१ ॥

वशं नीतानि सर्वाणि य एष द्वारि तिष्ठति ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥७२॥

सहस्र इन्द्रों, लक्ष देवताओं और सैकड़ों महर्षियों को जिन्होंने हजारों वर्षों तक अपने वश में कर रखा था, वे ही द्वार पर खड़े हैं। राजा बलि की इन बातों को सुन। रावण कहने लगा ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

मया प्रेतेश्वरो दृष्टः कृतान्तः सह मृत्युना ।

पाशहस्तो महाज्वाल ऊर्ध्वरोमा भयानकः ॥ ७३ ॥

हे राजन् ! मैंने उन प्रेतराज यमराज को मृत्यु के सहित देखा है, जो हाथ में महाज्वालायुक्त पाश लिये हुए थे और जिनके बाल खड़े थे और जिनको देखते लोग भयभीत हो जाते हैं ॥ ७३ ॥

दंष्ट्रालो विद्युजिजहश्च सर्पवृश्चिकरोमवान् ।

रक्ताक्षो भीमवेगश्च सर्वसत्त्वभयङ्करः ॥ ७४ ॥

उनकी बड़ी बड़ी डाढ़ें थीं और वे विजली की तरह जीभ लप लपाते थे। उनके नेत्र लाल थे और उनका बड़ा भयङ्कर वेग था। वे समस्त प्राणियों के लिये भयावह थे ॥ ७४ ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वनिवर्तकः ।

पापानां शासिता चैव स मया युधि निर्जितः ॥ ७५ ॥

जैसे सूर्य की ओर सहज में टकटकी बौद्ध कर कोई नहीं देख सकता, वैसे ही उनकी भी कोई नहीं देख सकता। वे युद्ध

ज्ञेत्र में कभी पीठ नहीं दिखाते और पापियों को दण्ड दिया करते हैं। ऐसे यमराज को युद्ध में मैंने परास्त कर दिया ॥ ७५ ॥

न च मे तत्र भीः काचिद्यथा वा दानवेश्वर ।

एनं तु नाभिजानामि तद्वान्वक्तुमर्हति ॥ ७६ ॥

हे दानवेश्वर! वहाँ तो मुझे ज़रा भी डर नहीं लगा। किन्तु मैं इस पुरुष को नहीं जानता। अतः आप बतलाइये कि, यह कौन है ॥ ७६ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा बलिर्वेरोचनोऽब्रवीत् ।

एष त्रैलोक्यधाता च हरिनारायणः प्रभुः ॥ ७७ ॥

रावण के यह वचन सुन विरोचन के पुत्र बलि बोले—हे रावण यह त्रिज्ञाकी के विधानरूप नारायण हरि प्रभु हैं ॥ ७७ ॥

अनन्तः कपिलो जिष्णुर्नरसिंहो महाद्युतिः ।

क्रतुधामा सुधामा च पाशहस्तो भयानकः ॥ ७८ ॥

ये अनन्त, कपिल, विष्णु और महाद्युतिमान नूसिह हैं। ये ही यज्ञपुरुष, महातेजस्वी और भयानक पाशहस्त हैं ॥ ७८ ॥

द्वादशादित्यसदृशः पुराणपुरुषोत्तमः ।

नीलजीमूतसङ्काशः सुरनाथः सुरोत्तमः ॥ ७९ ॥

ये ही द्वादश आदित्य के समान तेजस्वी, आदिपुरुष और पुरुषोत्तम हैं। इनकी कान्ति नीलमेघ जैसी है। ये ही सुरनाथ और सुरश्रेष्ठ हैं ॥ ७९ ॥

ज्वालामाली महाबाहो योगी भक्तजननप्रियः ।

एष धारयते लोकानेष वै सृजते प्रभुः ॥ ८० ॥

हे महावाहो ! ये ज्वाला से धिरे हुए, योगी और भक्तजन प्रिय हैं । ये ही समस्त लोकों को धारण किये हुए हैं और ये ही उनकी रचना करने वाले हैं ॥ ८० ॥

एष संहरते चैव कालो भूत्वा महावलः ।

एष यज्ञश्च याज्यश्च चक्रायुधधरो हरिः ॥ ८१ ॥

ये ही महावली काल बन कर, सब का संहार करते हैं । ये ही यज्ञ है और य हो यज्ञभोक्ता और चक्रायुधधारी हरि है ॥ ८२ ॥

सर्वदेवमयश्चैव सर्वभूतमयस्तथा ।

सर्वलोकमयश्चैव सर्वज्ञानमयस्तथा ॥ ८२ ॥

ये सर्वदेवमय, सर्वभूतमय, सर्वलोकमय और सर्वज्ञानमय हैं ॥ ८२ ॥

सर्वरूपी महारूपी बलदेवो महाभुज ।

वीरहा वीरचक्षुष्मांस्त्विलोक्यगुरुरव्ययः ॥ ८३ ॥

ये ही सर्वरूपी, ये ही महारूपी, ये ही बलदेव और ये ही बड़ी भुजाओं वाले (महावलवान) हैं । ये ही वीरों को मारने वाले, वीरचक्षु, त्रिलोकी के गुरु और अविनाशी हैं ॥ ८३ ॥

एनं मुनिगणाः सर्वे चिन्तयन्तीह मोक्षिणः ।

य एवं वेत्ति पुरुषं न च पापैर्विलिप्यते ॥ ८४ ॥

जितने मुनिगण मोक्ष पाने के अभिलाषी हैं, वे सब इन्हींका ध्यान किया करते हैं । जो इन महापुरुष को जान लेते हैं, वे पापों से छूट जाते हैं ॥ ८४ ॥

स्मृत्वा स्तुत्वा तथेष्टा च सर्वमस्मादवाप्यते ।  
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रावणो निर्ययौ तदा ॥ ८५ ॥

जो इनका स्मरण, स्तुति और दर्शन करता है, उसके सकल अभीष्ट पूरे होते हैं। यह सुन कर रावण वहाँ से चल दिया ॥८५॥

क्रोधसंरक्त नयन उद्यताख्तो महावलः ।  
तथाभूतं च तं दृष्टा हरिमुसलधृकप्रभुः ॥ ८६ ॥

उस समय क्रोध के मारे उस महावलों की आँखें लाल हो गयी थीं और वह अस्त्र उठाये हुए था। मुसलधारो, प्रभु नारायण ने उसकी यह दशा देख, ॥ ८६ ॥

नैनं हन्म्यधुना पापं चिन्तयित्वेति रूपधृक् ।  
अन्तर्धानं गतो राम ब्रह्मणः प्रियकाम्यया ॥ ८७ ॥

विचारा कि, मैं अभी इस पापी को नहीं मारूँगा। अतः हे राम ! ब्रह्मा को प्रसन्न करने की इच्छा से वे अन्तर्धान हो गये ॥ ८७ ॥

न च तं पुरुषं तत्र पश्यते रजनीचरः ।  
हर्षान्नादं विमुश्चन्वै निष्क्रामन्वरुणालयात् ॥ ८८ ॥

रावण ने जब उनको द्वार पर न पाया, तब हर्षित हो उसने हर्षनाद किया और वह वरुणालय से निकला ॥ ८८ ॥

येनैव सम्प्रविष्टः स पथा तेनैव निर्ययौ ॥ ८९ ॥  
इति प्रक्षिप्तेषु प्रथमः सर्गः ।

जिस मार्ग से वह वहाँ गया था, उसी मार्ग से वहाँ से निकल कर चला आया ॥ ८६ ॥

उत्तरकाशु का प्रक्षिप्त प्रथम सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

## प्रक्षिप्तेषु द्वितीयः सर्गः

—:०:—

अथ सञ्चिन्त्य लङ्घेशः सूर्यलोकं जगाम ह ।

मेरुशङ्के वरे रम्ये उषित्वा तत्र शर्वरीम् ॥ १ ॥

अब लङ्घेश कुद्र सोच विचार कर सूर्यलोक में गया । रास्ते में सुमेरु पर्वत के प्रधान रमणीक शिखर पर उसने रात व्यतीत की ॥ १ ॥

पुष्पकं तत्समाख्य रवेस्तुरगसन्निभम् ।

नानापातगतिर्दिव्यं विहार वियतिस्थितम् ॥ २ ॥

फिर वह, सूर्य के घोड़ों की तरह शीघ्रगामी पुष्पकविमान में बैठ, विचित्र गति से आकाश में विहार करता हुआ, सूर्यमण्डल में जा पहुँचा ॥ २ ॥

यत्रापश्यद्रविं देवं सर्वतेजोमयं शुभम् ।

वरकाश्चनकेयूररत्नाम्बरविभूषितम् ॥ ३ ॥

उसने वहाँ जा कर देखा कि, समस्त तेज से युक्त, शुभ, दिव्य सोने के बाजूबंद धारण किये और रत्नाम्बर-विभूषित सूर्य भगवान् हैं ॥ ३ ॥

कुण्डलाभ्यां शुभाभ्यां तु भ्राजन्मुखविकासितम् ।  
केषुरनिष्काभरणं रक्तमालावलम्बिनम् ॥ ४ ॥

उनका मुखमण्डल दिव्य कुण्डलों से शोभायमान है । गले में निष्क ( गुंज या गोप ) और भुजाओं में वे बाजूबंद पहिने हुए हैं तथा लाल रंग के फूलों की माला धारण किये हुए हैं ॥ ४ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ।  
तमादिदेवमादित्यमुच्चैःश्रवसवाहनम् ॥ ५ ॥

शरीर में लाल चंदन लगाये हुए और सहस्र किरणों से प्रकाशमान हो रहे हैं । वे आदिदेव सूर्य नारायण उच्चैःश्रवा जाति के घोड़ों से जुते हुए रथ पर सवार हैं ॥ ५ ॥

अनाद्यन्तममध्यं च लोकसाक्षिं जगत्पतिम् ।  
तं दृष्ट्वा प्रवरं देवं रावणो रक्षसां वरः ॥ ६ ॥

आदि, अन्त और मध्य-रहित, लोकसाक्षी, जगत्पति, देवश्रेष्ठ सूर्य भागवान् को, राक्षसश्रेष्ठ रावण ने देखा ॥ ६ ॥

स प्रहस्तमुवाचाथ रवितेजोबलार्दितः ।  
गच्छामात्य वदस्वैनं निदेशान्मम शासनम् ॥ ७ ॥

सूर्य के तेजोबल से पीड़ित रावण ने, प्रहस्त से कहा—हे सचिव ! तुम सूर्य के पास जा कर, मेरी यह आङ्गा उनको सुना दो कि, ॥ ७ ॥

युद्धार्थं रावणः प्राप्तो युद्धं तस्य प्रदीयताम् ।  
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि पक्षमेकतरं कुरु ॥ ८ ॥

रावण तुम से लड़ने के लिये आया है, अतः उसके साथ युद्ध कोजिये अथवा अपनी हार स्वीकार कोजिये। इन दो में से एक बात शीघ्र कहिये ॥ ८ ॥

तस्य तद्वचनाद्रक्षः सूर्यस्यान्तिकमागमत् ।

पिङ्गलं दण्डिनं चैव पश्य ते द्वारपालकौ ॥ ९ ॥

यह सुन कर प्रहस्त सूर्य के पास गया और उनके पिङ्गल और दण्डी नामक दो द्वारपालों से मिला ॥ ९ ॥

ताभ्यामाख्याय तत्सर्वं रावणस्य विनिश्चयम् ।

तूष्णीमास्ते प्रहस्तस्तु तत्र तेजोशुदीपितः ॥ १० ॥

उसने उनसे रावण का सन्देश कहा और वह वही चुपचाप खड़ा हो गया। ज्योंकि सूर्य की किरणों के ताप से वह उत्स हो रहा था ॥ १० ॥

दण्डी गतो रवेः पाश्वं प्रणम्याख्यातवान् रवेः ।

श्रुत्वा तु सूर्यस्तद्वृत्तं दण्डिनो रावणस्य ह ॥ ११ ॥

दण्डी ने सूर्य भगवान् के निकट जा और उनको प्रणाम कर, उनसे रावण का संदेश कहा। दण्डी के मुख से रावण का संदेश सुन, ॥ ११ ॥

उवाच वचनं धीमान्बुद्धि पूर्वं क्षपापहः ।

गच्छ दण्डिन् जयस्वैनं निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥ १२ ॥

विचारवान् सूर्यदेव सोच विचार कर बोले—हे दण्डिन्! तुम जा कर या तो उसे युद्ध में परास्त करो अथवा उससे यह कह दो कि, मैं हार गया ॥ १२ ॥

यत्तेऽभिकाङ्गिनं कार्षीः कञ्चित्कालं क्षपाचरम् ।

स गत्वा वचनात्स्य राक्षसस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

अथवा जैसा चाहो वैसा उसके साथ व्यवहार करो । सूर्य की आङ्गो से वह रावण के पास गया ॥ १३ ॥

कथयामास तत्सर्वं सूर्योक्तवचनं तदा ।

स श्रुत्वा वचनं तस्य दण्डनो राक्षसेश्वरः ।

घोषयित्वा जगामाथ स्वजयं राक्षसाधिपः ॥ १४ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु द्वितीयः सर्गः ॥

और सूर्य ने जो कहा था सो उसको सुना दिया । राक्षसराज रावण ने दण्डी के वचन सुन, अपने नाम से विजयघोषणा कर वहाँ से प्रस्थान किया ॥ १४ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त दूसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—————\*

### प्रक्षिप्तेषु तृतीयः सर्गः

— : ० : —

अथ सञ्चिन्त्य लङ्घेशः सोमलोकं जगाम ह ।

मेरुशृङ्खलरे रम्ये रजनीमुष्य वीर्यवान् ॥ १ ॥

तदनन्तर रावण कुक्र सोच विचार कर और रास्ते में एक रात मेरुपर्वत के शिखर पर बिता कर, सबेरा होते ही चन्द्रलोक में जा पहुँचा ॥ १ ॥

अंथस्यन्दनमारुढो दिव्यस्तगनुलेपनः ।

अप्सरोगणमुख्येन सेव्यमानस्तु गच्छति ॥ २ ॥

वहाँ जा कर राक्षसराज रावण ने देखा कि, दिव्य पुरुषों की माला पहिने और दिव्य चन्दनादि लगाये और मुख्य मुख्य अप्सराओं सहित एक पुरुष रथ में बैठा हुआ, चला जा रहा है ॥ २ ॥

रतिश्रान्तोऽप्सरोङ्केषु चुम्बितः सविबुध्यते ।

दृष्टस्तु पुरुषस्तेन दृष्ट्वा कौतूहलान्वितः ॥ ३ ॥

जब वह रति से थक जाता था, तब अप्सराएँ उसको अपनी गोद में ले कर चूमती थीं । फिर वह जाग जाता था । यह देख रावण को बड़ा आश्रय हुआ ॥ ३ ॥

अथापश्यद्विं तत्र दृष्ट्वा चैवमुवाच तम् ।

स्वागतं तव देवर्णे कालेनैवागतो ह्यसि ॥ ४ ॥

इतने ही में रावण को ( पर्वत नामक ) एक ऋषि देख पड़े । उनको देख रावण ने उनसे कहा कि, हे देवर्ण ! मैं आपका स्वागत करता हूँ । आपने अच्छे समय पर दर्शन दिये ॥ ४ ॥

कोऽयंस्यन्दनमारुढो ह्यप्सरोगणसेवितः ।

निर्लज्ज इव संयाति भयस्थानं न विन्दति ॥ ५ ॥

आप यह तो बतलाइये कि, अप्सराओं से सेवित और रथ पर सवार हो, निर्लज्ज मनुष्य की तरह यह कौन चला जाता है । इसे उपस्थित भय की कुछ परवाह ही नहीं है ॥ ५ ॥

रावणेनैवमुक्तस्तु पर्वतो वाक्यमब्रवीत् ।

शृणु वत्स यथातत्त्वं वक्ष्ये चाहं महामते ॥ ६ ॥

रावण के इस प्रकार कहने पर पर्वत भूषि बोले—हे वत्स ! हे महामते ! मैं इसका यथार्थ वृत्तान्त कहता हूँ । सुनो ॥ ६ ॥

अनेन निर्जिता लोका ब्रह्मा चैवाभितोषितः ।

एष गच्छति मोक्षाय सुसुखं स्थानमुक्तमम् ॥ ७ ॥

इसने तपेवल से समस्त लोकों को जीत लिया है और ब्रह्मा जी को भी सन्तुष्ट किया है । अब यह मोक्ष के लिये सुखमय उत्तम स्थान को जा रहा है ॥ ७ ॥

तपसा निर्जिता यद्धद्वता राक्षसाधिप् ।

प्रयाति पुण्यकृत्तद्वत्सोमं पीत्वा न संशयः ॥८॥

हे राक्षसाधिप ! जैसे आपने तपस्या कर लोकों को जीता है, वैसे ही, हे वत्स ! यह पुण्यात्मा सोमपान करता हुआ जा रहा है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

त्वं तु राक्षसशार्दूल शूरः सत्यपराक्रमः ।

नैवेद्येषु क्रुद्यन्ति बलिनो धर्मचारिषु ॥ ९ ॥

तुम तो राक्षसशार्दूल हो, शूर हो और सत्यपराक्रमी हो । अतः ( तुम जैसे ) बलवान् पुरुष ऐसे धर्मात्मा जनों के ऊपर क्रोध नहीं करते ॥ ९ ॥

अथापश्यद्रथवरं महाकार्यं महौजसम् ।

जाज्वल्यमानं वपुषा गीतवादित्र निःस्वनैः ॥ १० ॥

इतने में रावण ने एक दूसरा विशाल उत्तम रथ देखा । यह रथ अपनी चमक से चमक रहा था । उसके भीतर गाना बजाना हो रहा था ॥ १० ॥

कैष गच्छति देवर्षे भ्राजमानो महाद्युतिः ।

किञ्चरैश्च प्रगायद्विर्त्यद्विश्च मनोरमम् ॥ ११ ॥

( उसे देख ) रावण ने मुनि से पूँछा—हे देवर्षे ! यह महा द्युतिमान् पुरुष जो गाते और नाचते हुए किञ्चरों के साथ जा रहा है, कौन है और कहाँ को जाता है ॥ ११ ॥

श्रुत्वा चैनमुवाचाथ पर्वतो मुनिसत्तमः ।

एष शूरो रणे योद्धा संग्रामेष्वनिवर्तकः ॥ १२ ॥

यह सुन कर, ऋषिश्वेष पर्वत ने रावण से कहा—यह बड़ा शूर योद्धा है । समरभूमि में इसने कभी पीठ नहीं दिखलाई ॥ १२ ॥

युध्यमानस्तथैवैष प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।

कृती शूरो रणेजेता स्वाम्यर्थे त्यक्तजीवितः ॥ १३ ॥

यह बड़ा शूर है, चतुर है और कितने ही युद्ध इसने जीते हैं । यह युद्ध में लड़ता लड़ता, प्रहारों से जर्जरित हो, मारा गया है । इसने अपने मालिक के लिये प्राण गँवाये हैं ॥ १३ ॥

संग्रामे निहतोऽमित्रैर्हत्वा च समरे बहून् ।

इन्द्रस्यातिथिरैवैष अथ वा यत्र गच्छति ॥ १४ ॥

इसने युद्ध में अनेक शत्रुओं को मारा है । अब यह इन्द्र का अतिथि है अथवा किसी अन्य पुण्यलोक में जा रहा है ॥ १४ ॥

वृत्यगीतपरैर्लोकैः सेव्यते नरसत्तमः ।

प्रच्छ रावणो भूयः कोऽर्य यात्यर्कसन्निभः ॥ १५ ॥

इसीसे यह नरश्रेष्ठ गाने वजाने वाले किन्नरों के साथ जा रहा है । तदनन्तर रावण ने फिर पूँक्हा कि, सूर्य के समान द्युतिमान् यह कौन पुरुष जा रहा है ? ॥ १५ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा पर्वतो वाक्यमब्रवीत् ।

य एष दृश्यते राजनिवाने सर्वकाश्चने ॥ १६ ॥

रावण के इस प्रश्न को सुन, पर्वत मुनि बोले —हे राजन् ! जो यह सोने के विमान पर चढ़ा हुआ दिखलाई पड़ता है ॥ १६ ॥

अप्सरोगणसंयुक्ते पूर्णचन्द्रनिभाननः ।

सुवर्णदो महाराज विचित्राभरणाम्बरः ॥ १७ ॥

और जो अप्सराओं के साथ चला जाता है और जो पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाला है, इसने सुवर्ण का दान किया है । इसीसे विचित्र वस्त्राभूषण से भूषित हो ॥ १७ ॥

एष गच्छति शीघ्रेण यानेन तु महाद्युतिः ।

पर्वतस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

यह महाकान्तिमान् शीघ्रगामी सवारी पर सवार हो, जा रहा है । पर्वत के इस वचन को सुन रावण ने कहा ॥ १८ ॥

एते वै यान्ति राजानो ब्रूहि त्वमृषिसत्तम ।

कोऽहत्रयाचितो दद्याद्युद्धातिथ्यं ममाद्य वै ॥ १९ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठ ! इतने राजा चले जाते हैं, क्या इनमें ऐसा भी कोई राजा है, जो ग्रार्थना करने से युद्ध द्वारा मेरा आतिथ्य करे ॥ १९ ॥

तं मयाख्याहि धर्मज्ञ पिता मे त्वं हि धर्मतः ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच रावणं पर्वतस्तदा ॥ २० ॥

हे धर्मज्ञ ! आप धर्म के मेरे पिता हैं। मुझसे युद्ध करने योग्य किसी राजा को आप मुझे बतला दें। यह कहने पर पर्वत ने रावण से कहा ॥ २० ॥

स्वर्गार्थिनो महाराजनैते युद्धार्थिनो वृपाः ।

वक्ष्यामि ते महाभाग यस्ते युद्धं प्रदास्यति ॥ २१ ॥

हे महाराज ! ये सब राजा स्वर्गवास की चाहना रखने वाले हैं, युद्धाभिलाषी नहीं हैं। हे महाभाग ! जो राजा तुमसे लड़ेगा उसका नाम मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ ॥ २१ ॥

स तु राजा महातेजाः सप्तद्वीपेश्वरो महान् ।

मान्धातेत्यभि विख्यातः स ते युद्धं प्रदास्यति ॥ २२ ॥

सात द्वीपों के अधीश्वर, अति तेजस्वी मान्धाता नाम के एक प्रसिद्ध राजा हैं। वे तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे ॥ २२ ॥

पर्वतस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।

कुतोसौ तिष्ठते राजा तत्समाचक्ष्व सुव्रत ॥ २३ ॥

पर्वत के यह वचन सुन, रावण ने उनसे कहा—हे सुव्रत ! यह राजा कहीं रहता है ? आप सविस्तर मुझे बतलाइये ॥ २३ ॥

सोहं यास्यामि तत्रैव यत्रासौ नरपुङ्गवः ।

रावणस्य वचः श्रुत्वा मुनिर्वचनमब्रवीत् ॥ २४ ॥

जिससे मैं वहीं जाऊँ, जहाँ वह पुष्पश्रेष्ठ (राजा) रहता है। रावण का वचन सुन, मुनि जो बोले ॥ २४ ॥

युवनाश्वसुतो राजा मान्धाता राजसत्तमः ।

सप्तद्वीपसमुद्रान्तं जित्वेहाभ्यागमिष्यति ॥ २५ ॥

नृपश्रेष्ठ मान्धाता, महाराज युवनाश्व के पुत्र हैं। वे सप्तद्वीप-मयी आसमुद्रान्त समस्त पृथिवी को जीत यहाँ आवेंगे ॥ २५ ॥

अथापश्यन्महाबाहुस्त्रैलोक्ये वरदर्पितः ।

अयोध्यायाः पतिं वीरं मान्धातारं नृपोत्तमम् ॥ २६ ॥

इतने में त्रिलोकी में विख्यात और वरगर्वित महाबली रावण ने देखा कि, अयोध्याधिपति नृपश्रेष्ठ बीर महाराज मान्धाता, ॥ २६ ॥

सप्तद्वीपाधिपं यान्तं चन्दनेन विराजता ।

काञ्चनेन विचित्रेण माहेन्द्राभेण भास्वता ॥ २७ ॥

जो सातों द्वीपों के अधीश्वर थे, दिव्यचन्दन लगाये और इन्द्र के रथ की तरह चमचमाते सोने के विचित्र रथ पर बैठे हुए आ रहे हैं; ॥ २७ ॥

जाज्वल्यमानं रूपेण दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

तमुवाच दशग्रीवो युद्धं मे दीयतामिति ॥ २८ ॥

वे अपने रूप से प्रकाशमान हैं और दिव्यगन्धयुक अनुलेपन (चन्दनादि) लगाये हुए हैं। उनसे रावण ने कहा कि, मुझसे युद्ध कीजिये ॥ २८ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवं प्रहस्येदमुवाच ह ।

यदि ते जीवितं नेष्टं ततो युद्धयस्व राक्षस ॥ २९ ॥

यह सुन कर, महाराज मान्धाता ने हँस कर उससे कहा—हे राक्षस! यदि तुझे अपना जीवन भार मालूम पड़ता हो, तो तु मुझसे लड़ ॥ २९ ॥

मान्धातुर्वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।  
वस्तुत्वे कुबेरस्य यमस्यापि न विव्यथे ॥ ३० ॥

महाराजा मान्धाता के ये वचन सुन, रावण कहने लगा—जो रावण वस्तुत्वे, कुबेर और यम तक से, युद्ध करने में व्यथित न हुए ; ॥ ३० ॥

किं पुनर्मानुषात्त्वतो रावणो भयमाविशेत् ।  
एवमुक्त्वा राक्षसेन्द्रः क्रोधात्संप्रज्वलन्निव ॥ ३१ ॥

वह रावण भला तुझ मनुष्य से क्या डरेगा ? यह कह कर रावण ने क्रोध से आग बढ़ा दी हो ॥ ३१ ॥

आज्ञापयामास तदा राक्षसान्युद्धदुर्मदान् ।

अथ क्रुद्धास्तु सचिवा रावणस्य दुरात्मनः ॥ ३२ ॥

अपने साथी युद्धदुर्मद राक्षसों को लड़ने की आज्ञा दी ।  
दुरात्मा रावण के मंत्री क्रुद्ध हुए ॥ ३२ ॥

ववर्षुः शरजालानि क्रुद्धा युद्धविशारदाः ।

अथ राज्ञा बलवता कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३३ ॥

और वे रणनिपुण राक्षस बाण बरसाने लगे । तब महाबली महाराज मान्धाता ने कंकपत्र युक पैने पैने ॥ ३३ ॥

इषुभिस्ताडिताः सर्वे प्रहस्तशुकसारणाः ।

महोदरविरूपाक्षा श्वकम्पनपुरोगमाः ॥ ३४ ॥

बाणों से प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर, विरूपाक्ष, श्वकम्पनादि मुख्य राक्षसों को व्यथित किया ॥ ३४ ॥

अथ प्रहस्तस्तु नृपमिषुवर्षेवाकिरत् ।

अप्राप्तानेव तान्सर्वान्प्रचिच्छेद नृपोत्तमः ॥३५॥

प्रहस्त ने बाण वर्षा कर महाराज मान्धाता को ढक दिया ।  
किन्तु उन सब बाणों को नृपश्रेष्ठ महाराज ने, अपने पास आने के  
पूर्व ही काट कर गिरा दिया ॥ ३५ ॥

भुशुण्डीभिश्च भल्लैश्च भिन्दिपालैश्च तोमरैः ।

नरराजेन दद्यन्ते तृणभारा इवाग्निना ॥ ३६ ॥

आग जिस प्रकार तिनकों का जला कर भस्म कर डालती  
है, नरराज महाराज मान्धाता ने उसी प्रकार राज्ञसों की सेना  
को सैकड़ों भुशुण्डियों, भालों भिन्दिपालों और तोमरों से विदीर्ण  
कर डाला ॥ ३६ ॥

ततो नृपवरः क्रुद्धः पञ्चभिः प्रविभेद तम् ।

तोमरैश्च महावेगैः पुनः क्रौञ्चमिवाग्निजः ॥ ३७ ॥

अग्निकुमार कार्तिकेय ने जैसे अपने तीरों से क्रौञ्चपर्वत को  
विदीर्ण कर डाला था, वैसे ही मान्धाता ने क्रोध में भर, पांच  
अति वेगवान् तोमरों से प्रहस्त को घायल किया ॥ ३७ ॥

ततो मुहुभ्रामयित्वा मुद्गरं यमसन्निभम् ।

प्राहरत्सोऽतिवेगेन राक्षसस्य रथं प्रति ॥ ३८ ॥

तदनन्तर महाराज ने यम के समान भयङ्कर मुद्गर को कई  
बार धुमा कर, रावण के रथ पर फैका ॥ ३८ ॥

[ नोट—रावण तो पुष्पकविमान में बैठ कर धूमता फिरता था ।  
उसके पास चन्द्रलोक में रथ कहाँ से आया ? इन प्रक्षिप सर्गों के बनाने  
वाले महात्मा ने इस बात का ध्यान नहीं रखा । ]

स पतात महावेगो मुदगरो वज्रसन्निभः ।

स तूर्णं पातितस्तेन रावणः शक्केतुवत् ॥ ३९ ॥

वज्र के तुल्य वह मुदगर महावेग से रावण के रथ के ऊपर गिरा । उसके गिरने से इन्द्रध्वज की तरह रावण रथ के नीचे गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

तदा स वृपतिः प्रीत्या हर्षेद्गतबलोबभौ ।

सकलेन्दुकलाः स्पृष्टा यथाम्बु लवणांभसः ॥ ४० ॥

उस समय महाराज मान्धाता ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को छूने के लिये जारसमुद्र हर्षित हो उमड़ता है ॥ ४० ॥

ततो रक्षो बलं सर्वं हाहा भूतमचेतनम् ।

परिवार्याथ तं तस्यौ राक्षसेन्द्रं समन्ततः ॥ ४१ ॥

रावण की सेना के लोग हाहाकार करते हुए मूर्च्छित रावण को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

ततश्चिरात्समाश्वास्य रावणो लोकरावणः ।

मान्धातुः पीडयामास देहं लङ्घेश्वरो भृशम् ॥ ४२ ॥

बहुत देर बाद रावण को चेत हुआ । चेत होने पर लोकों को रुलाने वाले रावण ने महाराज मान्धाता पर बड़े बड़े शस्त्र चलाये और वह उन्हें बहुत पीड़ित करने लगा ॥ ४२ ॥

मूर्च्छितं तु वृपं दृष्टा प्रहृष्टास्ते निशाचराः ।

चुक्रुशुः सिंहनादांश्च प्रक्षवेलन्तो महाबलाः ॥ ४३ ॥

रावण के प्रहारों से महाराज मान्धाता भी मूर्च्छित हो गये । उनके मूर्च्छित होते ही राक्षस सिंहनाद करके गर्जने लगे ॥ ४३ ॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन अयोध्याधिपतिस्तदा ।

दृष्टा तं पन्त्रिभिः शत्रुं पूज्यमानं निशाचरैः ॥ ४४ ॥

किन्तु मुहूर्त भर ही मूर्च्छित रह, अयोध्याधिपति महाराज मान्धाता सचेत हो गये । सचेत होने पर उन्होंने देखा कि, रावण के मंत्री रावण की बड़ी बड़ाई कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

जातकोपो दुराधर्षश्चन्द्रार्कसदृशद्युतिः ।

महता शरवर्षेण पातयद्राक्षसं बलम् ॥ ४५ ॥

यह देख, दुराधर्ष और चन्द्रमा की तरह द्युतिमान महाराज मान्धाता अत्यन्त कुद्ध हुए और बाणों की वर्षा से राक्षसी सेना को छस्त करने लगे ॥ ४५ ॥

चापस्यैव निनादेन तस्य बाणरवेण च ।

सञ्चचाल ततः सैन्यमुद्भूत इव सागरः ॥ ४६ ॥

उस समय खलबलाते हुए समुद्र की तरह महाराज मान्धाता के धनुष की ठंकार से और बाणों की सरसराहट से रावण की सेना खलबला उठी ॥ ४६ ॥

तद्युद्धमभवद्योरं नरराक्षससङ्कुलम् ।

अथाविष्टौ महात्मानौ नरराक्षस सत्तमौ ॥ ४७ ॥

इस प्रकार नर और राक्षस का घोर संग्राम होने लगा । तदनन्तर महात्मा नरराज मान्धाता और राक्षसश्रेष्ठ रावण ॥ ४७ ॥

कार्मुकासिधरौ वीरौ वीरासनगतौ तदा ।

मान्धाता रावणं चैव रावणश्चैव तं नृपम् ॥ ४८ ॥

धनुष और तलवार ले और वोरासन बांध लड़ने लगे ॥४८॥

क्रोधेन महताविष्टौ शरवर्षं मुपोचतुः ।

तौ परस्परसंक्षोभात्प्रहारैःक्षतविक्षतौ ॥ ४९ ॥

दोनों ही महाक्रोध में भर एक दूसरे के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे । उस समय ज्ञुब्ध हो कर प्रहार करते हुए दोनों ही के शरीर शस्त्रों के आघात से घायल हो गये ॥ ४९ ॥

कार्मुकेऽस्त्रं समाधाय रौद्रमस्त्रममुञ्चत ।

आग्नेयेन तु मान्धाता तदस्त्रं पृथ्यवारयत् ॥ ५० ॥

रावण ने धनुष पर रौद्रास्त्र रख कर छोड़ा, तब मान्धाता ने आग्नेयास्त्र से उसको निवारण किया ॥ ५० ॥

गान्धर्वेण दशग्रीवो वारुणेन च राजराट् ।

गृहीत्वा स तु ब्रह्मास्त्रं सर्वभूतभयावहम् ॥ ५१ ॥

जब रावण ने गन्धर्वास्त्र चलाया, तब मान्धाता ने उसको वारुणास्त्र से निवारण किया । फिर रावण ने सब प्राणियों को भयभीत करने वाला ब्रह्मास्त्र उठाया ॥ ५१ ॥

वेदयामास मान्धाता दिव्यं पाशुपतं महत् ।

तदस्त्रं घोररूपं तु त्रैलोक्यभयवर्धनम् ॥ ५२ ॥

तब महाराज मान्धाता ने दिव्य पाशुपतास्त्र हाथ में लिया । त्रिलोकी को भयभीत करने वाले उस महाभयङ्कर अस्त्र को ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा त्रस्तानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

वरदानात्तु रुद्रस्य तपसाराधितं महत् ॥ ५३ ॥

देख कर, सब चराचर प्राणी श्रव्य हो गये । उस अख्य की महाराज ने तप द्वारा महादेव जी को प्रसन्न कर वरदान में पाया था ॥ ५३ ॥

ततः संकम्पते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

देवाः संकम्पिताः सर्वे लयं नागाश्च सङ्घन्ताः ॥५४॥

उस समय चराचर समेत तीनों लोक थर्ह उठे । देवता काय उठे और नाग भाग कर पाताल में घुस गये ॥ ५४ ॥

अथ तौ मुनिशार्दूलौ ध्यानयोगादपश्यताम् ।

पुलस्त्यो गालवश्चैव वारयामास तं नृपम् ॥५५॥

इसी बीच में मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य जी और गालव ने योगबल से इस भावी अनर्थ को जान लिया । तब वे दोनों वहाँ पहुचे और मान्धाता को उस महाख्य के चलाने से रोका ॥ ५५ ॥

सोपालंभैश्च विविधैर्वर्कयै राक्षससत्तमम् ।

तौ तु कृत्वा तदा प्रीतिं नरराक्षसयोस्तदा ।

संप्रस्थितौ सुसंहृष्टौ पथा येनैव चागतौ ॥ ५६ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु तृतीयः सर्गः ॥

उन्होंने रावण के विविध प्रकार के वचन कह कर विकारा भी । तदनन्तर महाराज मान्धाता और राक्षसराज रावण में मैत्री हो गयी और दोनों ही हर्षित होते हुए जिस जिस मार्ग से आये थे ; उसी उसी मार्ग से चले गये ॥ ५६ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त तीसरा सर्ग पूरा हुआ ।

## प्रक्षिप्तेषु चतुर्थः सर्गः

—०—

गताभ्यामय विप्राभ्यां रावणो राक्षसाधपः ।  
दशयोजनसाहस्रं प्रथमं तु मरुत्पथम् ॥ १ ॥

उन दोनों ब्राह्मणों ( पुलस्त्य और गालव ) के चले जाने पर राक्षसराज रावण दस हज़ार योजन को दूरी पर प्रथम वायुमार्ग में चला गया ॥ १ ॥

यत्र तिष्ठन्ति नित्यं हि हंसाः सर्वगुणान्विताः ।  
अथ ऊर्ध्वं तु गत्वा वै मरुत्पथमनुत्तमम् ॥ २ ॥

जहाँ पर सर्वगुणसम्पन्न हंस पक्षी सदा रहते हैं । इससे भी ऊँचे दूसरे पवनमार्ग में रावण चढ़ गया ॥ २ ॥

दशयोजनसाहस्रं तदेव परिगण्यते ।

तत्र सन्निहिता मेघास्त्रिविधा नित्यशः स्थिताः ॥ ३ ॥

इस वायुमण्डल का परिमाण भी इस हज़ार योजन का माना जाता है । यहाँ तीन प्रकार के मेघ सदा रहते हैं ॥ ३ ॥

आग्रेयाः पक्षिणो ब्राह्मास्त्रिविधास्तत्र ते स्थिताः ।

अथ गत्वा तृतीयं तु वायोः पन्थानमुत्तमम् ॥ ४ ॥

ये अग्निज, पक्षज और ब्रह्मज यहाँ सदा रहते हैं । तदनन्तर रावण दूसरे से तीसरे वायुमार्ग में चढ़ गया जो कि, बड़ा उत्तम है ॥ ४ ॥

नित्यं यत्र स्थिताः सिद्धाश्चारणश्च मनस्विनः ।  
दशैव तु सहस्राणि योजनानां तथैव च ॥ ५ ॥

वहाँ बड़े बड़े मनस्वी सिद्ध और चारण वास करते हैं। इसका भी परिमाण दस हज़ार योजन का है ॥ ५ ॥

चतुर्थं वायुमार्गं तु शीघ्रं गत्वा परन्तप ।

वसन्ति यत्र नित्यस्था भूताश्च सविनायकाः ॥ ६ ॥

शत्रुविनाशी राज्ञसराज रावण शीघ्र तीसरे से चौथे वायु-मण्डल में पहुँचा। यहाँ पर भूत और विनायकगण सदा वास किया करते हैं ॥ ६ ॥

अथ गत्वा स वै शीघ्रं पञ्चमं वायुगोचरम् ।

दशैव च सहस्राणि योजनानां तथैव च ॥ ७ ॥

चौथे वायुमण्डल से रावण तुरन्त पांचवें वायुमण्डल में पहुँचा। इस मण्डल का भी परिमाण दस हज़ार योजन का है ॥ ७ ॥

गङ्गा यत्र सरिच्छेष्टा नागा वै कुमुदादयः ।

कुञ्जरास्तत्र तिष्ठन्ति ये तु मुञ्चन्ति सीकरम् ॥ ८ ॥

यहाँ पर नदियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गा और कुमुदादि हाथी रहते हैं; जो जल की बूँदें टपकाया करते हैं ॥ ८ ॥

गङ्गातोयेषु क्रीडन्ति पुण्यं वर्षन्ति सर्वशः ।

ततो रविकरभ्रष्टं वायुना पेशलीकृतम् ॥ ९ ॥

ये बड़े बड़े गजेन्द्र श्रीगङ्गा जी में विहार करते और पवित्र जल बरसाया करते हैं। वहाँ सूर्य की किरणों से छूटा हुआ और पवन द्वारा निर्मल ॥ ९ ॥

जलं पुण्यं प्रपतति हिमं वर्षति राघव ।

ततो जगाम षष्ठं स वायुमार्गं महाद्युते ॥ १० ॥

और पवित्र हो कर जल गिरता है । हे राम ! वहाँ हिम वर्फ़ की भी वर्षा होती है । हे महाद्युते ! फिर रावण छठवें वायुमण्डल गया ॥ १० ॥

योजनानां सहस्राणि दशैव तु स राक्षसः ।

यत्रास्ते गरुडो नित्यं ज्ञातिवान्धवसत्कृतः ॥ ११ ॥

इस वायुमण्डल का भी परिमाण दस हज़ार का है । वहाँ गरुड़ जी अपने कुदुमियों और वान्धवों से सत्कारित हो रहा करते हैं ॥ ११ ॥

दशैव तु सहस्राणि योजनानां तथेऽपरि ।

सप्तमे वायुमार्गे च यत्रैते क्रुषयः स्मृताः ॥ १२ ॥

तदनन्तर रावण दस हज़ार योजन के भी ऊपर सातवें वायु-मण्डल में, जहाँ सप्तर्षिगण वास करते हैं, गया ॥ १२ ॥

अत ऊर्ध्वं तु गत्वा वै सहस्राणि दशैव तु ।

अष्टमं वायुमार्गं तु यत्र गङ्गा प्रतिष्ठिता ॥ १३ ॥

तदनन्तर रावण दस हज़ार योजन के भी ऊपर आठवें वायु-मण्डल में गया, जहाँ पर श्रीगङ्गा जी हैं ॥ १३ ॥

आकाशगङ्गा विख्याता आदित्यपथसंस्थिता ।

वायुना धार्यमाणा सा महावेगा महास्वना ॥ १४ ॥

उन महावेग वाली और महाशब्द करने वाली प्रसिद्ध आकाश-गङ्गा को पवन आदित्य मार्ग में धारण किये हुए हैं ॥ १४ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि चन्द्रमा यत्र तिष्ठति ।

अशीतिं तु सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ॥ १५ ॥

आठवें वायुमण्डल के ऊपर चन्द्रमा हैं। यह अस्सी हज़ार योजन की दूरी पर है ॥ १५ ॥

चन्द्रमास्तिष्ठते यत्र नक्षत्रग्रहसंयुतः ।

शतं शतसहस्राणि रश्मयश्चन्द्रमण्डलात् ॥ १६ ॥

यहाँ पर नक्षत्रों और ग्रहों सहित चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमण्डल से सैकड़ों हज़ारों किरणें निकलती हैं ॥ १६ ॥

प्रकाशयन्ति लोकांस्तु सर्वसत्त्वमुखावहाः ।

ततो दृष्ट्वा दशग्रीवं चन्द्रमा निर्दहन्निव ॥ १७ ॥

और लोकों को प्रकाशित कर सुखी करती हैं। फिर चन्द्रमा ने मानों देखते ही रावण को जलाया ॥ १७ ॥

स तु शीताग्निं शीघ्रं प्रादहद्रावणं तदा ।

नासहस्तस्य सचिवाः शीताग्निभयपीडिताः ॥ १८ ॥

चन्द्रमा अपने शीताग्नि से रावण को शीघ्र भस्म करने लगे। तब रावण के मंत्री उस ठंड को न सह सके। वे भय से पीड़ित हुए ॥ १८ ॥

रावणं जयशब्देन प्रहस्तोऽथैनमव्रीत् ।

राजञ्शीतेन वत्स्यामो निवर्त्मम इतो वयम् ॥ १९ ॥

तब महाराज की जय हो, कह कर, प्रहस्त ने रावण से कहा— हे राजन्! हम लोग तो मारे शीत के पेंडे जाते हैं। अतः हम लोग यहाँ नहीं उहर सकते। हम तो यहाँ से लौटे जाते हैं ॥ १९ ॥

चन्द्ररश्मिप्रतापेन रक्षसां भयमाविशत् ।

स्वभाव एष राजेन्द्र शीतांशोर्दहनात्मकः ॥ २० ॥

हे राजेन्द्र ! चन्द्रमा की किरणों के प्रभाव से रक्षस मयभीत हो गये हैं । क्योंकि चन्द्रमा का शीतांश्चि से जलाने का स्वभाव ही है ॥ २० ॥

एतच्छ्रुत्वा प्रहस्तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।

विस्फार्य धनुरुद्यम्य नाराचैस्तमपीडयत् ॥ २१ ॥

प्रहस्त के इन वचनों को सुन, रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और धनुष पर रोदा चढ़ा चन्द्रमा को बाणों से पीड़ित करने लगा ॥ २१ ॥

अथ ब्रह्मा तदागच्छत्सोमलोकं त्वरान्वितः ।

दशग्रीव महावाहो साक्षाद्विश्रवसः सुत ॥ २२ ॥

तब तो तत्काल ब्रह्मा जो चन्द्रलोक में आ उपस्थित हुए और रावण से बोले—हे दशानन ! हे महावाहु ! हे विश्रवा के पुत्र ! ॥ २२ ॥

गच्छ शीघ्रमितः सौम्य मा चन्द्रं पीडयस्व वै ।

लोकस्य हितकामो वै द्विजराजो महाव्रुतिः ॥ २३ ॥

हे सौम्य ! तुम यहां से तुरन्त चले जाओ और चन्द्रमा को पीड़ित मत करो । क्योंकि यह महाकान्तिमान द्विजराज चन्द्रदेव, सदा लोकों के हितसाधन हो में प्रवृत्त रहते हैं ॥ २३ ॥

मन्त्रं च सम्प्रदास्यामि प्राणात्ययगतिर्यदा ।

यस्त्वेतं संस्मरेन्मन्त्रं नासौ मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

मैं तुमको एक मंत्र बतलाता हूँ। प्राणों पर सङ्कट आ पड़ने पर, यह स्मरण करने योग्य है। जो इस मंत्र का जप करता है, उसे मृत्यु का भय नहीं रहता ॥ २४ ॥

**एवमुक्तो दशग्रीवः प्राञ्जलिर्देवमब्रवीत् ।**

**यदितुष्टोऽसि मे देव लोकनाथ महाब्रत ॥ २५ ॥**

यदि मन्त्रश्च मे देयो दीयतां मम धार्मिक ।

यं जप्त्वाहं महाभाग सर्वदेवेषु निर्भयः ॥ २६ ॥

असुरेषु च सर्वेषु दानवेषु पतत्रिषु ।

**त्वत्प्रसादात् देवेश स्यामजेयो न संशयः ॥ २७ ॥**

ब्रह्मा जी के वचन सुन, रावण ने हाथ जोड़ कर कहा—हे देव ! हे लोकनाथ ! हे महाब्रत ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे मंत्रोपदेश देना चाहते हैं, तो हे धार्मिक ! मुझे मंत्रोपदेश दीजिये ; जिससे मैं उस मंत्र का जप कर, सब देवताओं, असुरों, दानवों और पक्षियों से, आपके अनुग्रह से निस्संशय अजेय हो जाऊँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

**एवमुक्तो दशग्रीवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।**

**प्राणात्ययेषु जप्त्व्यो न नित्यं राक्षसाधिप ॥ २८ ॥**

जब रावण ने इस प्रकार कहा, तब ब्रह्मा जी कहने लगे । हे राक्षसाधिप ! इस मंत्र को नित्य मत जपना । जब प्राणों पर कभी सङ्कट आ पड़े, तब ही इसे जपना चाहिये ॥ २८ ॥

**अक्षसूत्रं गृहीत्वा तु जपेन्मत्रमिमं शुभम् ।**

**जप्त्वा तु राक्षसपते त्वमजेयो भविष्यसि ॥ २९ ॥**

इस मंत्र को रुद्राक्ष की माला पर जपना चाहिये । हे राक्षस-राज ! इसका जप करने से तुम अजेय हो जाओगे ॥ २६ ॥

अजप्त्वा राक्षसपते न ते सिद्धिर्भविष्यति ।

शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन राक्षसपुञ्ज्व ॥ ३० ॥

अगर जप न करोगे तो तुम्हारी कार्यसिद्धि न होगी । हे राक्षसश्रेष्ठ ! सुनो, मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ ३० ॥

मन्त्रस्य कीर्तनादेव प्राप्स्यसे समरे जयम् ।

नमस्ते देवदेवेश सुरासुर नमस्कृत ॥ ३१ ॥

जिसका जप करने से युद्ध में तुम्हारी जीत हुआ करेगी । हे देवदेवेश ! हे सुरासुर नमस्कृत ! तुमको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

भूतभव्य महादेव हरिपिङ्गललोचन ।

बालस्त्वं वृद्धरूपी च वैयाघ्रवसनच्छद ॥ ३२ ॥

हे भूतभव्य ! हे महादेव ! हे हरिपिङ्गल लोचन ! तुमको प्रणाम है । तुम बालक हो, वृद्ध हो, और व्याघ्रचर्म धारण करते हो ॥ ३२ ॥

अर्चनीयोऽसि देव त्वं त्रैलोक्य प्रभुरीश्वरः ।

हरो हरितनेमी च युगान्तदहनोऽनलः ॥ ३३ ॥

हे देव ! तुम पूजनीय हो, तीनों लोकों के स्वामी हो और ईश्वर हो, तुम हर हो, तुम हरितनेमी हो, तुम युगान्त हो, तुम दहनकारी अनल (अग्नि) हो ॥ ३३ ॥

गणेशो लोकशम्भुश्च लोकपालो महाभुजः ।

महाभागो महाशूली महादंष्ट्री महेश्वरः ॥ ३४ ॥

तुम गणेश, लोकशम्भु, लोकपाल, महाभुज, महाभाग, महाशूली, महादंष्ट्र और महेश्वर हो ॥ ३४ ॥

कालश बलरूपी च नीलग्रीवो महोदरः ।

देवान्तगस्तपोन्तश्च पश्चनां पतिरव्ययः ॥ ३५ ॥

तुम काल, बलरूपी, नीलग्रीव, महोदर और देवान्तक, तपस्या में पारगामी, अविनाशी, पशुपति हो ॥ ३५ ॥

शूलपाणिर्वृषः केतुर्नेता गोपा हरो हरिः ।

जटी मुण्डी शिखण्डी च लकुटी च महायशाः ॥ ३६ ॥

तुम शूलपाणि, वृषकेतु, नेता, गोपा, हरहरि, जटी, मुण्डी, शिखण्डी, लकुटी और महायशा हो ॥ ३६ ॥

भूतेश्वरो गणाध्यक्षः सर्वात्मा सर्वभावनः ।

सर्वगः सर्वहारी च स्त्रष्टा च गुरुरव्ययः ॥ ३७ ॥

तुम भूतेश्वर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा और सर्वभावन हो । तुम सर्वग, सर्वहारी, स्त्रष्टा और अविनाशी गुरु हो ॥ ३७ ॥

कमण्डलुधरो देवः पिनाकी धूर्जटिस्तथा ।

माननीयश्च ओङ्कारो वरिष्ठो ज्येष्ठसामगः ।

मृत्युश्च मृत्युभूतश्च पारियात्रश्च सुव्रतः ॥ ३८ ॥

तुम कमण्डलुधारी देव हो, तुम पिनाकी, धूर्जटी, मान्य, ओंकार, वरिष्ठ, ज्येष्ठ, सामग हो । तुम मृत्यु के भी मृत्यु, पारियात्र और सुव्रत हो ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचारी गुहावासी वीणापणवतूणवान् ।

अमरो दर्शनीयश्च बालसूर्यनिभस्तथा ॥ ३९ ॥

तुम ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वीणा-पटव-तूण-धारी, अमर, दर्शनीय  
और बालसूर्य के समान हो ॥ ३६ ॥

श्मशानवासी भगवानुमापतिरनिन्दितः ।

भगस्याक्षिनिपाती च पूष्णो दशननाशनः ॥ ४० ॥

तुम श्मशानवासी, भगवान्, उमापति, अनिन्दित, भगवन्यन,  
.निपाती और पूषा के दात तोड़ने वाले हो ॥ ४० ॥

ज्वरहर्ता पाशहस्तः प्रलयः काल एव च ।

उल्कामुखोग्निकेतुश्च मुनिर्दीपो विशांपतिः ॥ ४१ ॥

तुम ज्वरहारी, पाशहस्त, प्रलयरूपोकाल, उल्कामुख, अग्निकेतु,  
मुनि, दीप और विशांपति हो ॥ ४१ ॥

उन्मादो वेपनकरश्चतुर्थे लोकसत्तमः ।

वामनो वामदेवश्च प्राक्प्रदक्षिणवामनः ॥ ४२ ॥

तुम उन्मादी, वेपनकर, चतुर्थ लोक सत्तम, वामन, वामदेव,  
प्राक्प्रदक्षिण और वामन हो ॥ ४२ ॥

भिक्षुश्च भिक्षुरूपी च त्रिजटी कुटिलः स्वयम् ।

शक्रहस्तप्रतिष्ठंभी वसूनां स्तंभनस्तथा ॥ ४३ ॥

तुम भिक्षु, भिक्षुरूपी, त्रिजटी, कुटिल और इन्द्र के हाथ के  
स्तम्भन करने वाले हो और तुम वसुरोधी हो ॥ ४३ ॥

ऋतुऋतुकरः कालो मधुर्मधुकलोचनः ।

वानस्पत्योवाजसनो नित्यमाश्रम पूजितः ॥ ४४ ॥

तुम क्रतु, क्रतुकर, काल, मधु, मधुकलाचन, वानस्पत्य,  
वाजसन और नित्याश्रम पूजित हो ॥ ४४ ॥

जगद्धाता व कर्ता च पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ।  
धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिधर्मा भूतभावनः ॥ ४५ ॥

तुम जगत् के धाता, कर्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष,  
विरूपाक्ष, त्रिधर्म, और भूतभावन हो ॥ ४५ ॥

त्रिनेत्रो बहुरूपश्च सूर्यायुतसमप्रभः ।  
देवदेवोऽतिदेवश्च चन्द्राङ्कितजटस्तथा ॥ ४६ ॥

तुम त्रिनेत्र, बहुरूप, और दस हजार सूर्यों के समान प्रभा वाले  
हो । तुम देवदेव, अतिदेव और चन्द्राङ्कित जटाधारी हो ॥ ४६ ॥

नर्तको लासकश्चैव पूर्णेन्दुसद्वशाननः ।  
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च सर्वजीवमयस्तथा ॥ ४७ ॥

तुम नर्तक, लासक, ( कीड़ा करने वाले ) पूर्णमासी के चन्द्रमा  
की तरह मुखवाले, ब्रह्मण्य, शरण्य और सर्वजीवमय हो ॥ ४७ ॥

सर्वतूर्यनिनादी च सर्वबन्धविमोक्षकः ।  
मोहनो बन्धनश्चैव सर्वदा निधनोत्तमः ॥ ४८ ॥

तुम सर्वतूर्यनिनादी, सब बन्धनों से कृदाने वाले, मोहन, बन्धन,  
और सदा निधनोत्तम हो ॥ ४८ ॥

पुष्पदन्तो विभागश्च मुख्यः सर्वहरस्तथा ।  
हरिश्मश्रुर्धनुर्धारी भीमो भीमपराक्रमः ॥ ४९ ॥

तुम पुष्पदन्त, विभाग, मुख्य, सर्वहर, हरिश्मश्रु, धनुर्धारी,  
भीम और भीमपराक्रम हो ॥ ४९ ॥

मया प्रोक्तमिदं पुण्यं नामाष्टशतमुत्तमम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं शरण्यं शरणार्थिनाम् ॥ ५० ॥

मेरे कथित ये १०८ उत्तम नाम, समस्त पापों को नष्ट करने वाले, पुण्यदायी और रक्षा के अभिलाषी की रक्षा करने वाले हैं ॥ ५० ॥

जप्तमेतदशग्रीवं कुर्याच्छत्रुविनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु चतुर्थः सर्गः ॥

हे दशग्रीव ! इन नामों के जपने से शत्रु का नाश होता है ॥ ५१ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

—:\*:—

### प्रक्षिप्तेषु पञ्चमः सर्गः

—:०:—

दत्वा तु रावणस्यैवं वरं स कमलोद्धवः ।

पुनरेवागमतिक्षमं ब्रह्मलोकं पितामहः ॥ १ ॥

हे राम ! लोकपितामह और कमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी, रावण को इस तरह वर दे कर, अति शीघ्र ब्रह्मलोक को चले गये ॥ १ ॥

रावणोऽपि वरं लब्ध्वा पुनरेवागमत्तथा ।

केनचित्कथं कालेन रावणो लोकरावणः ॥ २ ॥

रावण भी वरप्राप्त कर वहाँ से लौटा । फिर कुछ दिनों बाद लोकों को रुक्खाने वाला रावण ॥ २ ॥

पश्चिमार्णवमागच्छत्सचिवैः सह राक्षसः ।

द्वीपस्थो दृश्यते तत्र पुरुषः पावकप्रभः ॥ ३ ॥

अपने मंत्रियों को साथ लिये हुए पश्चिमसागर पर गया ।  
वहाँ एक द्वीप ( टापू ) में उसने अग्नि के समान एक पुरुष देखा ॥ ३ ॥

महाजाम्बूनदप्रख्य एक एव व्यवस्थितः ।

दृश्यते भीषणाकारो युगान्तानलसन्निभः ॥ ४ ॥

वह सौने की तरह कान्तिमान पुरुष वहाँ अकेला था और  
वह युगान्त की आग की तरह प्रकाशमान भयझुर आकार बाला  
था ॥ ४ ॥

देवानामिव देवेशो ग्रहाणामिव भास्करः ।

शरभाणां यथा सिंहो इस्तिष्वैरावतो यथा ॥ ५ ॥

देवताओं में जिस प्रकार महादेव जी, ग्रहों में जैसे सूर्य हैं  
शरभों में जैसे सिंह है, हाथियों में जैसे ऐरावत है, ॥ ५ ॥

पर्वताना यथा मेरुः पारिजातश्च शाखिनाम् ।

तथा तं पुरुषं दृष्ट्वा स्थितं पद्ये महाबलम् ॥ ६ ॥

समस्त पर्वतों में जैसे सुमेरु है और वृक्षों में जैसे कल्पवृक्ष  
है, वैसे ही समस्त पुरुषों में इस महाबलवान पुरुष को देख  
कर, ॥ ६ ॥

अब्रवीच दशग्रीवो युद्धं मे दीयतामिति ।

अभवत्स्य सा दृष्टिर्ग्रहमाला इवाकुला ॥ ७ ॥

रावण ने उससे कहा कि, मुझसे युद्ध करो। उस समय रावण की द्वृष्टि ग्रहमाला की तरह चलायमान हो गयी ॥ ७ ॥

दन्तान्सन्दशतः शब्दो यन्त्रस्येवाभिभिद्यतः ।

जगर्जोच्चैः स बलवान्सहामात्यो दशाननः ॥ ८ ॥

उसके दौतों के पीसने का ऐसा शब्द हुआ जैसा कि, यन्त्र की रगड़ का ( चक्री चलने का )। तब मंत्रियों सहित रावण बड़े ज़ोर से गर्जा ॥ ८ ॥

स गर्जन्विविधैर्नदैलंबहस्तं भयानकम् ।

दंष्ट्रालं विकटं चैव कम्बुग्रीवं महोरसम् ॥ ९ ॥

वह अनेक प्रकार के शब्द कर गर्जने लगा। गर्जते गर्जते वह लंबे हाथों वाला, भयङ्कराकार, दंष्ट्रयुक्त, विकटाकार, कम्बुग्रीव, चौड़ी छाती वाला ॥ ९ ॥

मण्डूककुक्षिं सिंहास्यं कैलासशिखरोपमम् ।

पद्मपादतलं भीमं रक्ततालुकराम्बुजम् ॥ १० ॥

महानादं महाकायं मनोनिलसमं जवे ।

भीममाबद्धतूणीरं सघण्टावद्धचामरम् ॥ ११ ॥

ज्वालामालापरिक्षिसं किङ्किणीजालनिःस्वनम् ।

मालया स्वर्णपद्मानां कण्ठदेशेऽवलम्बया ॥ १२ ॥

ऋग्वेदमिव शोभन्तं पद्ममालाविभूषितम् ।

सोऽञ्जनाचलसङ्काशं काञ्चनाचलसन्निभम् ॥ १३ ॥

मेंढक की तरह उदरवाला, सिंहवदन, कैलास शिखर के समान चरण वाला, लाल तालू वाला, लाल हाथ वाला, भयङ्कर,

महाकाय वाला, महानाद करने वाला, मन और वायु की तरह वेगवान्, भीम, पीठ पर तरक्स बांधे हुए, घंटा, एवं चमर सहित, व्वाला की माला से शोभायमान, किङ्गिणीजाल की तरह मधुर शब्द करने वाला, गले में सुवर्ण के कमलपुष्प का हार पहिने हुए, ऋग्वेद की तरह शोभायमान, कमल पुष्प की तरह द्युतिमान ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

**प्राहरद्राक्षसपतिः शूलशत्यृष्टिपट्टिशैः ।**

**द्रीपिना स सिंह इव कृषभेणोव कुञ्जरः ॥ १४ ॥**

**सुमेरुरिव नागेन्द्रैर्नदीवैर्गैरिवार्णवः ।**

**अकम्पमानः पुरुषो राक्षसं वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥**

महापुरुष के ऊपर रावण ने शूल, शक्ति, यष्टि और पट्टों की वर्षा की। चीते के आकमण से जैसे सिंह, बैल के आकमण से जैसे हाथी, हस्तिराज के आकमण से जैसे सुमेरु, और नदी के वेग से जैसे महासागर ज्ञुब्ध नहीं होता, वैसे ही उस महापुरुष ने रावण के चलाये शब्दों के प्रहारों से ज्ञुब्ध न हो कर, रावण से कहा ॥ १४ ॥ १५ ॥

**युद्धश्रद्धां हि ते रक्षो नाशयिष्यामि दुर्मते ।**

**रावणस्य च यो वेगः सर्वलोकभयङ्करः ॥ १६ ॥**

हे राक्षस ! हे दुर्मते ! मैं तेरी युद्ध लालसा को नष्ट कर दूँगा । हे राम ! रावण का जो समस्त लोकों का भय देने वाला युद्ध का वेग था ॥ १६ ॥

**तथा वेगसहस्राणि संश्रितानि तमेव हि ।**

**धर्मस्तस्य तपश्चैव जगतः सिद्धिहेतुकौ ॥ १७ ॥**

उससे सहज गुना अधिक युद्धवंग उस महापुरुष में था ।  
इसके अतिरिक्त जगत् की सिद्धि के मूलकारण धर्म और  
तप ॥ १७ ॥

ऊरु ह्याश्रित्य तस्थाते मन्यथः शिश्रमाश्रितः ।  
विश्वेदेवाः कटीभागेमरुतो बस्तिपाश्वयोः ॥ १८ ॥

उसकी जांघों के आश्रित थे धरथवा जांघों का सहारा लिये  
हुए थे । कामदेव उसके शिश्रम में था विश्वेदेव कमर में, मरुदगण  
पेड़ू और दोनों कोखों में थे ॥ १८ ॥

मध्येऽष्टौ वसवस्तस्य समुद्राः कुक्षितः स्थिताः ।  
पाश्वादिषु दिशः सर्वाः सर्वसन्धिषु मारुतः ॥ १९ ॥

उसके शरीर के बीच में आठों वसु, समस्त समुद्र उसकी  
कोख में, समस्त दिशाएँ उसके पाश्वादि में और मरुत उसके  
जोड़ों में थे ॥ १९ ॥

पृष्ठं च भगवान् रुद्रो हृदयं च पितामहः ।  
पितरश्चाश्रिताः पृष्ठं हृदयं च पितामहाः ॥ २० ॥

उसके पृष्ठभाग पर रुद्र और पितर तथा हृदय में ब्रह्मा-  
विराजमान थे ॥ २० ॥

गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि यानि च ।  
सुवर्णवरदानानि कक्षलोमानुगानि च ॥ २१ ॥

पवित्र गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान इत्यादि समस्त पुण्य-  
घर्द्धक दान उसकी कोख के रोम थे ॥ २१ ॥

हिमवान्हेमकूटश्च मन्दरो मेरुरेव च ।

नरं तु तं समाश्रित्य अस्थि भूतान्यवस्थिताः ॥ २२ ॥

हिमालय, हेमकूट, मन्दर और मेरुपर्वत ये सब उस पुरुष की हड्डियों के स्थान में थे ॥ २२ ॥

पाणिर्वज्रोऽभवत्स्य शरीरे वौरवस्थिता ।

कुकाटिकायां सन्ध्या च जलवाहाश्च ये धनाः ॥ २३ ॥

बज्ज्र उसकी हथेली में और आकाश उसके शरीर में था । सन्ध्या और जलवृष्टि करने वाले मेघ उसकी ग्रीवा में थे ॥ २३ ॥

बाहू धाता विधाता च तथा विद्याधरादयः ।

शेषश्च वासुकिश्वैव विशालाक्ष इरावतः ॥ २४ ॥

कम्बलाश्वतरौ चोभौ कर्केटकधनञ्जयौ ।

स च घोरविषो नागस्तक्षकः सोपतक्षकः ॥ २५ ॥

धाता, विधाता और विद्याधर उसकी दोनों भुजाओं में विद्यमान थे । अनन्त, वासुकि, विशालाक्ष, ऐरावत, कम्बल, अश्वतर, कर्केट, धनञ्जय, घोरविष, तक्षक और उपतक्षक ॥ २४ ॥ २५ ॥

करजानाश्रिताश्चैव विषवीर्यमुमुक्षवः ।

अग्निरास्यमभूतस्य स्कन्धौ रुद्रैरधिष्ठितौ ॥ २६ ॥

ये सब बड़े बड़े विषैले नाग उसके हाथों और नखों में बसते थे । अग्नि उसके मुख में, रुद्र उसके कन्धों पर ॥ २६ ॥

पक्षपासर्तवश्चैव दंष्ट्रयोरुभयोः स्थिताः ।

नासे कुहूरमावास्या छिद्रेषु वायवः स्थिताः ॥ २७ ॥

पक्ष, मास, वत्सर और द्रश्यों मृत्युएँ उसकी दन्तपंकि में, पूर्णिमा और अमावास्या उसके नाक के छेदों में और उननचास पवन उसके शरीर के रन्धों में थे ॥ २७ ॥

**ग्रीवातस्याभवद्वेवी वीणा चापि सरस्वती ।**

**नासत्यौ श्रवणे चोभौ नेत्रे च शशिभास्करौ ॥२८॥**

वीणा लिये हुए भगवती सरस्वती देवी उसके कण्ठ में रहती थीं, दोनों अश्विनीकुमार उसके दोनों कानों में और चन्द्र पवन सूर्य उसके दोनों नेत्रों में थे ॥ २८ ॥

**वेदाङ्गानि च यज्ञाश्च तारारूपाणि यानि च ।**

**सुवृत्तानि च वाक्यानि तेजांसि च तपांसि च ॥२९॥**

हे राम ! समस्त वेदाङ्ग और यज्ञ उसकी आँख की पुतलियाँ थीं, तेज और तप उसके सुन्दर बचन थे ॥ २९ ॥

**एतानि नररूपस्य तस्य देहाश्रितानि वै ।**

**तेन वज्रप्रहारेण लब्धमात्रेण लीलया ॥ ३० ॥**

**पाणिना पीडितं रक्षो निपपात महीतले ।**

**पतितं राक्षसं ज्ञात्वा विद्राव्य स निशाचरान् ॥३१॥**

ये सब उस नररूपी पुरुष की देह का आश्रय लिये हुए थे । उस पुरुष ने वज्र के समान रावण के प्रहार को सह कर, विना प्रयास रावण को हाथ से पकड़ कर दबा दिया । उसके दाव से पीड़ित हो, रावण ज़मीन पर गिर पड़ा । रावण को गिरा हुआ जान, उसने रावण के साथी अन्य राक्षसों को भी भगा दिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥

**ऋग्वेदप्रतिमः सोऽथ पद्ममालाविभूषितः ।**

**प्रविवेश च पातालं निजं पर्वतसन्निभः ॥ ३२ ॥**

ऋग्वेद के समान और कमलों की माला धारण किये हुए  
वह स्वयं पर्वत की कन्दरा के समान मार्ग से पाताल में चला  
गया ॥ ३२ ॥

उत्थाय च दशग्रीव आहूय सचिवान्स्वयम् ।

क गतः सहसा ब्रूत प्रहस्तशुकसारणाः ॥ ३३ ॥

कुञ्ज देर बाद रावण उठ कर और स्वयं अपने मंत्रियों को बुला  
कर, उनसे पूँछने लगा कि, हे प्रहस्त ! हे शुक ! हे सारण ! वह  
पुरुष कहाँ चला गया ? ॥ ३३ ॥

एवमुक्ता रावणेन राक्षसास्तें तदाब्रुवन् ।

प्रविष्टः सनरोऽत्रैव देवदानवर्दर्पहा ॥ ३४ ॥

जब रावण ने इस प्रकार पूँछा, तब उन राक्षसों ने उत्तर देते  
हुए कहा—वह देवताओं और दानवों का दर्प दलन करने वाला  
पुरुष इस जगह घुस गया है ॥ ३४ ॥

अथ संगृह्य वेगेन गरुत्मानिव पन्नगम् ।

स तु शीघ्रं विलद्वारं सम्प्रविश्य च दुर्मतिः ॥ ३५ ॥

गरुड़ जिस प्रकार साँप को पकड़ने के लिये, बड़े वेग से झपटते  
हैं, उसी प्रकार दुर्मति रावण पराक्रम प्रदर्शित कर बड़े वेग से बिल  
के द्वार पर पहुँचा और निर्भय हो उसमें घुस गया ॥ ३५ ॥

प्रविवेश च तद्द्वारं रावणो निर्भयस्तदा ।

स प्रविश्य च पश्यद्वै नीलाञ्जनचयोपमान् ॥ ३६ ॥

जिस समय रावण निर्भय हो, उस बिल के मुँह में घुसा,  
उस समय भीतर जाने पर वह काजल के ढेर की तरह देख  
पड़ा ॥ ३६ ॥

केयूरधारिणः शूरान् रक्तमाल्यानुलेपनान् ।

वरहाटकरत्राद्यैर्विधैश्च विभूषितान् ॥ ३७ ॥

बाजू पहिने शूर, लाल माला से भूषित, लाल चन्दन से सुशोभित, श्रेष्ठ और सोने तथा रत्नों के समूह से अलड्कूत ॥ ३७॥

दृश्यन्ते तत्र नृत्यन्त्यस्तिस्थः कोटयो महात्मनाम् ।

नृत्योत्सवा वीतभया विमला पावकप्रभाः ॥ ३८ ॥

रावण ने वहाँ पर देखा कि, तीन करोड़ भयरहित विमल पावक की तरह महात्मा पुरुष, उत्सव में लीन हो नाच रहे हैं ॥ ३८ ॥

नृत्यन्त्यः पश्यते तांस्तु रावणो भीमविक्रमः ।

द्वारस्थो रावणस्तत्र तासु कोटिषु निर्भयः ॥ ३९ ॥

घेर पराक्रमी रावण उनको देख कर ज़रा भी न डरा और दरवाज़े पर खड़ा खड़ा, उनका नाच देखने लगा ॥ ३९ ॥

यथा दृष्टः स तु नरस्तुल्यांस्तानपि सर्वशः ।

एकवर्णनिकवेषानेकरूपान्महौजसः ॥ ४० ॥

रावण ने जिस पुरुष को पहिले देखा था, उसी पुरुष जैसे थे सब पुरुष थे । वे सब एक रंग, एक वेष और एक रूप के थे तथा बड़े तंजत्वी थे ॥ ४० ॥

चतुर्भुजान्महौत्साहांस्तत्रापश्यत्स राक्षसः ।

तांस्तु दृष्ट्वा दशग्रीव ऊर्ध्वरोमा बभूव ह ॥ ४१ ॥

उन चार भुजाओं वाले महाउत्साही पुरुषों को रावण ने देखा । उनको देखने से रावण का शरोर रोमाञ्चित हो गया ॥ ४१ ॥

स्वयंभुवा दत्तवरस्ततः शीघ्रं विनिर्ययौ ।

अथापश्यत्परं तत्र पुरुषं शयने स्थितम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मा जो का वरदान था, अतः उसके प्रभाव से रावण वहाँ से ( जीता जागता ) तुरन्त निकल आया । तदनन्तर रावण ने देखा कि, अन्य स्थान पर एक और पुरुष शश्या पर पड़ा से रहा है ॥ ४२ ॥

पाण्डुरेण महार्हेण शयनासन वेश्मना ।

शेते स पुरुषस्तत्र पावकेनावशुणितः ॥ ४३ ॥

उसका घर, सेज और विस्तरे सफेद रंग के तथा बहुमूल्यवान् थे । वह मनुष्य अग्नि से मुख ढाँप कर से रहा है ॥ ४३ ॥

दिव्यस्सगुलेपा च दिव्याभरणभूषिता ।

दिव्याम्बरधरा साध्वी त्रिलोक्यस्यैकभूषणम् ॥ ४४ ॥

दिव्यमाला, दिव्यआभूषण और दिव्य वसन पहिने हुए तीनों लोकों में अद्वितीय थी थी । ( वलिक कहते हैं कि, ) वह त्रिलोकी का एक गहना थी ॥ ४४ ॥

बाल्यव्यजनहस्ता च देवी तत्र व्यवस्थिता ।

लक्ष्मी देवी सपदा वै भ्राजते लोकसुन्दरी ॥ ४५ ॥

कमल हाथ में जिये त्रिलोकसुन्दरी लक्ष्मी देवी, उस पुरुष की बग़ल में बैठी, चँचर डुलाती हुई, शोभायमान हो रही थी ॥ ४५ ॥

प्रविष्टः स तु रक्षेन्द्रो दृष्टा तां चारुहासिनीम् ।

जिवृक्षुः सहसा साध्वीं सिंहासनसमास्थिताम् ॥ ४६ ॥

रावण वहाँ जा और वैसी सुन्दरी तथा मतोहर हँसने वाली  
सिंहासनोपस्थित उस सतो को देख, उस पर मोहित हो  
गया ॥ ४६ ॥

**विनापि सचिवैस्तत्र रावणो दुर्मतिस्तदा ।**

**हस्ते ग्रहीतुमन्विच्छन्मन्मथेन वशीकृतः ॥ ४७ ॥**

उस समय रावण के साथ उसका कोई मंत्री न था । दुर्मति  
रावण ने काम से पोड़ित हो, उसे हाथ से वैसे ही पकड़ना  
चाहा ; ॥ ४७ ॥

**सुप्रमाशीविषं यद्वद्रावणः कालनोदितः ।**

**अथ सुसो महावाहुः पावकेनावगुणितः ॥ ४८ ॥**

जैसे काल का भेजा हुआ कोई पुरुष सोते हुए भयानक विष-  
धर सर्प का जगावे । ( कारण इसका यह था कि रावण के सिर पर  
काल खेल रहा था । ) अब उस पुरुष ने, जो अपने मुँह को आग  
( की चादर ), से ढक कर सो रहा था ॥ ४८ ॥

**ग्रहीतुकामं तं ज्ञात्वा व्यपविद्धपटं तदा ।**

**जहासोच्चैर्भृशं देवस्तं दद्वा राक्षसाधिपम् ॥ ४९ ॥**

यह जान कर कि, रावण उस सती पर हाथ लपकाया चाहता  
है, अपने मुँह को चादर उघारी और राक्षसराज रावण को देख  
वह बड़े ज़ोर से हँसा ॥ ४९ ॥

**तेजसा सहसा दीसो रावणो लोकरावणः ।**

**कृत्तमूलो यथा शाखी निपपात महीतले ॥ ५० ॥**

उस समय रावण उस तेज से सहसा दग्ध होने लगा और  
जड़ कटे हुए बुक्क की तरह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ५० ॥

पतितं राक्षसं ज्ञात्वा वचनं चेदमब्रवीत् ।

उत्तिष्ठ राक्षसश्रेष्ठ मृत्युस्ते नाद्य विद्यते ॥ ५१ ॥

रावण को गिरा हुआ जान, उस पुरुष ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ !  
उठ बैठो । इस समय तुम्हारी मौत नहीं आयी है ॥ ५१ ॥

प्रजापतिवरो रक्ष्यस्तेन जीवसि राक्षस ।

गच्छ रावण विस्तब्धो नाधुना मरणं तव ॥ ५२ ॥

हे राक्षस ! प्रजापति ब्रह्मा का वर मानना आवश्यक है । इसी  
लिये तू जीवित है । हे रावण ! तू यहाँ से बेखटके चला जा ।  
इस समय तू मरने वाला नहीं है ॥ ५२ ॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन रावणो भयमाविशत् ।

एवमुक्तस्तदोत्थाय रावणो देवकण्टकः ॥ ५३ ॥

लोमहर्षणमापनो ह्यब्रवीत्तं महाद्युतिम् ।

को भवान्वीर्यसम्पन्नो युगान्तानलसन्निभः ॥ ५४ ॥

एक मुहूर्त बाद जब रावण सचेत हुआ, तब वह बहुत डरा  
हुआ था । उस पुरुष के मुख से उन वचनों के निकलते ही  
देवकण्टक रावण उठ बैठा, किन्तु उसका शरीर रोमाञ्चित हो  
गया था । रावण ने (उठ कर) उस महाद्युतिमान् पुरुष से  
कहा, आप ऐसे पराक्रमी और कालाञ्चि के समान कौन  
हैं ? ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ब्रूहि त्वं को भवान्देव कुतो भूत्वा व्यवस्थितः ।

एवमुक्तस्ततो देवो रावणेन दुरात्मना ॥ ५५ ॥

हे देव ! आप बतलावें कि, आप कौन हैं और कहाँ से आ कर यहाँ विराजमान हुए हैं ? जब दुरात्मा रावण ने उस पुरुष से इस प्रकार पूँछा ॥ ५५ ॥

प्रत्युवाच हसन्देवो मेघगम्भीरया गिरा ।

किं ते मया दशग्रीव वध्योऽसि नचिरान्मम ॥५६॥

तब उस पुरुष ने मेघ की तरह गम्भीर स्वर से मुसक्काते हुए कहा—यह बात जान कर तू ज्ञा करेगा । अब मेरे हाथ से तेरे मारे जाने में बहुत विलंब नहीं है ॥ ५६ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्राञ्जलिर्विक्यमब्रवीत् ।

प्रजापतेस्तु वचनान्नाहं मृत्युपथं गतः ॥ ५७ ॥

यह सुन रावण ने हाथ जोड़ कर कहा—इस समय मैं ब्रह्मा जी के वरदान से नहीं मरा ॥ ५७ ॥

न स जातो जनिष्यो वा मम तुल्यः सुरेष्वपि ।

प्रजापतिवरं यो हि लङ्घ्येद्वीर्यमाश्रितः ॥ ५८ ॥

औरों की तो मजाल ही ज्ञा है, देवताओं में भी ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ और आगे होगा भी नहीं, जो अपने बल बूते पर ब्रह्मा जी के वरदान को उल्लङ्घन करे ॥ ५८ ॥

न तत्र परिहारोऽस्ति प्रयत्नश्चापि दुर्बलः ।

त्रैलोक्ये तं न पश्यामि यो मे कुर्याद्वरं वृथा ॥५९॥

ब्रह्मा जी का वरदान अन्यथा नहीं हो सकता और उसको अन्यथा करने के लिये कोई उपाय भी काम नहीं दे सकता । मुझे

तो तीनों लोकों में ऐसा कोई भी नहीं देख पड़ता, जो ( ब्रह्मा से प्राप्त ) मेरे वर का वृथा कर दे ॥ ५६ ॥

अमरोऽहं सुरश्रेष्ठ तेन मां नाविशद्धयम् ।

अथापि च भवेन्मृत्युस्त्वद्स्तान्नान्यतः प्रभो ॥ ६० ॥

हे सुरश्रेष्ठ ! मैं तो अमर हूँ । अतः मैं इसके लिये नहीं डरता । किन्तु हे प्रभो ! मेरी आपसे यह विनाय अवश्य है कि, अगर मुझे मरना ही पड़े, तो मैं आपके हाथ से मारा जाऊँ ॥ ६० ॥

यशस्य श्लाघनीयं च त्वद्स्तान्मरणं मम ।

अथास्य गात्रे संपश्यद्रावणो भीमविक्रमः ॥ ६१ ॥

क्योंकि आपके हाथ से मारे जाने से मेरी नामवरी होगी और लोग बड़ाई करेंगे । तदनन्तर भीमविक्रमी रावण ने उस महापुरुष के शरीर को देखा ॥ ६१ ॥

तस्य देवस्य सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

आदित्या मरुतः साध्या वसवोऽथाश्विनावपि ॥ ६२ ॥

उसके शरीर में उसने सचराचर तीनों लोकों को देखा । सूर्य, मरुत, साध्य, वसु, अश्विनी-कुमार ॥ ६२ ॥

रुद्राश्व पितरश्वैव यमो वैश्रवणस्तथा ।

समुद्रा गिरियो नद्यो वेदाविद्यास्योऽग्रयः ॥ ६३ ॥

रुद्र, पितर, यम, कुवेर, समुद्र, पहाड़, नदी, वेद, विद्या, तीनों अग्नि ॥ ६३ ॥

ग्रहास्तारागणा व्योम सिद्धा गन्धर्वचारणाः ।

महर्षयो वेदविदो गरुडोऽथ भुजङ्गमाः ॥ ६४ ॥

ग्रह, तारागण, आकाश, सिद्ध, गन्धर्व, चारण, वेदवित्  
महर्षिगण, गरुड, नाग ॥ ६४ ॥

ये चान्ये देवतासङ्घाः संस्थिता दैत्यराक्षसाः ।

गात्रेषु शयनस्थस्य दृश्यन्ते सूक्ष्ममूर्तयः ॥ ६५ ॥

अन्य देवतागण तथा दैत्य पवं राक्षस ये सब ही सूक्ष्म रूप  
से उस पुरुष के शरीर में देख पड़े ॥ ६५ ॥

आह रामोऽथ धर्मात्मा ह्यगस्त्यं मुनिसत्तमम् ।

द्वीपस्थः पुरुषः कोऽसौ तिस्रः कोट्यस्तु काश ताः ॥ ६६ ॥

यह कथा सुन कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने अगस्त्य जो से  
पूँछा कि, आपने उस द्वीपस्थित जिन महापुरुष की कथा कही,  
वे थे कौन ? और वे तीन करोड़ पुरुष कौन थे ? ॥ ६६ ॥

शयानः पुरुषः कोऽसौ दैत्यदानवदर्पहा ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा ह्यगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६७ ॥

दैत्यो और दानवों का दर्पनाश करने वाला वह शयन करता  
हुआ पुरुष कौन था ? श्रीरामचन्द्र जी के इन प्रश्नों को सुन अगस्त्य  
जी कहने लगे ॥ ६७ ॥

श्रूयतामभिधास्यामि देवदेव सनातन ।

भगवान्कपिलो नाम द्वीपस्थो नर उच्यते ॥ ६८ ॥

हे सनातन देवदेव ! मैं बतलाता हूँ, आप सुनिये । उस द्वीप  
में विराजमान महापुरुष कपिलदेव जी थे ॥ ६८ ॥

ये तु नृत्यन्ति वै तत्र स्वरास्ते तस्य धीमतः ।

तुल्यतेजः प्रभावास्ते कपिलस्य नरस्य वै ॥ ६९ ॥

और जो पुरुष वहाँ नाच रहे थे, वे समस्त पुरुष उन बुद्धिमान कपिलदेव जी के समान तेजस्वी और प्रभाव वाले थे ॥ ६६ ॥

नासौ क्रुद्धेन दृष्टस्तु राक्षसः पापनिश्चयः ।

न बभूव तदा तेन भस्मसाद्राम रावणः ॥ ७० ॥

हे राम ! क्रोधपूर्वक उस महापुरुष ने रावण की ओर नहीं देखा था, नहीं तो वह पापी रावण निश्चय ही उस समय भस्म हो जाता ॥ ७० ॥

खिञ्चगात्रो नगप्रख्यो रावणः पतितो भुवि ।

वाक्शरैस्तं विभेदाशु रहस्यं पिशुनो यथा ॥ ७१ ॥

जब खिञ्चगात्र हो रावण पृथिवी पर गिर पड़ा, तब उस महापुरुष ने रावण से बड़े कठोर वचन कहे । उन वचनों से उस महापुरुष ने रावण को वैसे ही छेद डाला, जैसे चुगलखोर मनुष्य किसी दूसरे के गुप्त रहस्य को खोल, उस पुरुष को छेद डालता है ॥ ७१ ॥

अथ दीर्घेण कालेन लब्धसंज्ञः स राक्षसः ।

आजगाम महातेजा यत्र ते सचिवाः स्थिताः ॥ ७२ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु पञ्चमः सर्गः ॥

महातेजस्वी रावण बहुत देर बाद सचेत हो कर, वहाँ चला आया, जहाँ उसके मंत्री ठहरे हुए ( उसकी प्रतीक्षा कर रहे ) थे ॥ ७२ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

## चतुर्विंशः सर्गः

—००—

निर्वर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् ।

जहे पथि नरेन्द्रपिंदेवदानवकन्यकाः ॥ १ ॥

जब रावण ( वहाँ से ) लड़ा को लौटा, तब उस समय रास्ते में उसने हर्षित अन्तःकरण से राजर्षियों, देवताओं और दानवों की कन्याएँ हरण की ॥ १ ॥

दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति ।

हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ॥ २ ॥

वह दुष्ट जिस किसी सुन्दरी ( अविवाहित ) कन्या या, ( विवाहिता ) स्त्री को रास्ते में देख लेता, उसके बन्धुजनों को मार कर उसे हर कर अपने विमान में बिठा लेता था ॥ २ ॥

एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।

यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार रावण ने कितनी ही राक्षस-कन्याएँ, असुर कन्याएँ, मनुष्य-कन्याएँ, पन्नग-कन्याएँ, यज्ञ-कन्याएँ अपने विमान में बैठा लीं ॥ ३ ॥

ता हि सर्वाः समं दुखान्मुमुक्षुर्बाष्पजं जलम् ।

तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निमयसम्भवम् ॥ ४ ॥

वे वेच्चारी दुखी हो री रही थीं । वे सब शोक से आर्त हो, एक ही साथ शोकाग्नि और भय से उत्थन आँखु बहाने लगीं । उनके वे आँखु अग्निज्वाला की तरह उष्ण थे ॥ ४ ॥

ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः ।

आपूरितं विमानं तद्यशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ५ ॥

उन सब अत्यन्त सुन्दरी ललनाओं से वह विमान वैसे ही भर गया था, जैसे कि, समुद्र नदियों के जल से भर जाता है । वे सब भय और दुःख के मारे अमङ्गलकारी आँसू वहां रही थीं ॥ ५ ॥

नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः ।

दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ॥ ६ ॥

उस विमान में नागों, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवों की सैकड़ों कन्याएँ रो रही थीं ॥ ६ ॥

दीर्घकेशः सुचार्वग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।

पीनस्तनतटा मध्ये वज्रवेदिसमप्रभाः ॥ ७ ॥

उनके लंबे लंबे केश, सुन्दर आंग और पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुख थे । उनके कठोर स्तन और पतलों कमरें थीं । इनके स्तनों के बीच का भाग हीरे की जड़ाऊ भूमि की तरह उजला था ॥ ७ ॥

रथकूवरसङ्काशैः श्रोणीदेशैर्मनोहराः ।

स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभा ॥ ८ ॥

रथकूवर (रथ का जुशों) की तरह उनकी कमरे पतलों पतलों थीं । वे सब वड़ी सुन्दरी थीं और नपाये हुए सोने की तरह उनके शरीर की कान्ति थीं ॥ ८ ॥

शोकदुःखभयत्रस्ता विहलाश्च सुमध्यमाः ।

तासां निःश्वासवातेन सर्वतः सम्प्रदीपितम् ॥९ ॥

वे सब पतली कमरवाली सुन्दरी ललनाएँ घबड़ायी हुई थीं और मारे शोक और भय के ग्रस्त थीं । उनकी उसासों के पवन से वह निमान सर्वत्र प्रदीप सा हो कर ॥ ६ ॥

अग्निहोत्रमिवाभाति सन्निरुद्धापिपुष्पकम् ।

दशग्रीववशं प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥१०॥

ऐसा जान पड़ता था, मानों उसमें अग्निहोत्र हो रहा हो । दुष्ट रावण के पाजे पड़ी उन शोकाकुल ललनाओं ॥ १० ॥

दीनवक्त्रत्रेणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव ।

काचिच्छिन्तयती तत्र किं तु मां भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥

के मुख मलिन और आँखें शोकाकुल हो गयी थीं । सिह के पंजे में फँसी मृगी की तरह वे सब पीड़ित हो रही थीं । उनमें से कोई तो यह सोच कर घबड़ा रही थी कि, यह दुष्ट कहीं मुझको खा न डाले ॥ ११ ॥

काचिद्ध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम् ।

इति मातृः पितृन्स्मृत्वा भर्तृन्नातृस्तथैव च ॥ १२ ॥

और उनमें से कोई कोई दुःखार्त हो सोच रही थी कि, कदाचित् यह हमको मार डाले । इस प्रकार अपने अपने माता, पिता, भाई और पति का स्मरण कर के ॥ १२ ॥

दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः ।

कथं तु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ॥ १३ ॥

दुःख और शोक से भरी वे सब चिलाप कर रही थीं । चिलाप कर कोई कहती कि, मेरे विना मेरा पुत्र कैसे जीता वचेगा ॥ १३ ॥

कथं माता कथं भ्राता निमग्नः शोकसागरे ।

हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ॥ १४ ॥

कोई कहती कि, मेरा भाई और मेरी माता शोक समुद्र में निमग्न होगी । हा ! मैं अपने उस पति के विना क्या करूँगी ॥ १४ ॥

मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुखःभागिनीम् ।

किं नु तददुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ॥ १५ ॥

अतएव हे मृत्युदेव ! मैं तुम्हारी प्रार्थना करती हूँ कि, तुम मुझ दुःखियारों को ले चलो । हा ! पूर्वजन्म में हमसे ऐसा कौनसा पापकर्म बन पड़ा था ॥ १५ ॥

एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे ।

न खलिवदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मना ॥ १६ ॥

जिससे आज हम सब इस प्रकार दुःखित हो, शोकसागर में पड़ी हैं । हमको तो अपने इस दुःख की अब समाप्ति ही दिखाई नहीं पड़ती ॥ १६ ॥

अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ।

यद्युर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ॥ १७ ॥

हा ! इस मनुष्यलोक को धिक्कार है । क्योंकि इस जैसा अधम लोक दूसरा नहीं, जहाँ हमारे निर्बल पतियों को इस बलवान् रावण ने बैसे ही ॥ १७ ॥

सूर्योदयता काले नक्षत्राणीव नाशिताः ।

अहो सुबलवद्रक्षो वधोपायेषु रज्यते ॥ १८ ॥

नष्ट कर डाला ; जैसे सूर्योदय होते ही नक्षत्रों का प्रकाश नष्ट हो जाता है । हा ! यह रात्रि स बड़ा ही बलवान् है । इसी से तो यह जहाँ चाहता है, वहाँ मारता काटता घूमता फिरता है ॥ १८ ॥

अहोदुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ।

सर्वथा सदृशस्तावद्विक्रमोस्य दुरात्पनः ॥ १९ ॥

अहो ! यह कामी ऐसे दुराचरों में रत रह, अपने को निन्दित नहीं समझता । यह जैसा दुष्ट है, वैसा ही यह पराक्रमी भी है ॥ १९ ॥

इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ।

यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ॥ २० ॥

परस्त्रीगमन करना बहुत बुरा काम है । यह रात्रिसाधम परस्त्रियों में प्रीत रखता है और उनके साथ रमण करना चाहता है ॥ २० ॥

तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यात् दुर्मतिः ।

सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येऽभ्युदीरिते ॥ २१ ॥

सो यह दुर्मति परस्त्री के कारण ही मारा भी जायगा । उन पतिव्रता स्त्रियों के मुख से इन वचनों के निकलते ही ॥ २१ ॥

नेदुर्दुन्दुभयः खस्थाः पुष्पवृष्टिः पपात च ।

शसः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ॥ २२ ॥

आकाश में नगाडे बजे और फूलों की धर्षा हुई। स्त्रियों के इस शाप से रावण का पराक्रम नष्ट हो गया और उसकी प्रभा ज्ञाण पड़ गयी ॥ २२ ॥

**पतिव्रताभिः साध्वीभिर्भूव विमना इव ।**

**एवं विलपितं तासां शृण्वन् राक्षसपुङ्गवः ॥ २३ ॥**

उन पतिव्रता एवं साध्वी स्त्रियों के शाप को सुन, रावण उदास हो गया। रावण इस प्रकार उन स्त्रियों का विलाप सुनता हुआ ॥ २३ ॥

**प्रविवेश पुरीं लङ्घां पूज्यमानो निशाचरैः ।**

**एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥ २४ ॥**

निशाचरों से सत्कारित हो लङ्घा नगरी में जा पहुँचा। इतने में कामरूपिणी भयङ्कर राक्षसी ॥ २४ ॥

**सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्य सा ।**

**तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ॥ २५ ॥**

जो रावण की वहिन थी, आकर रावण के सामने अचानक पृथिवी पर गिर पड़ी। रावण ने वहिन को उठाया और उसे समझा बुझा कर ॥ २५ ॥

**अब्रवीत्किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम् ।**

**सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥**

उससे पूँछा—हे भद्रे ! बात क्या है ? शीघ्र बतलाओ कि, तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो ? लाल लाल नेत्र वाली निशाचरी ने आँखों में आँसू भर कर कहा, ॥ २६ ॥

कृतास्मि विधवा राजस्त्वया बलवता वलात् ।

एते राजस्त्वया वीर्याहैत्या विनिहता रणे ॥ २७ ॥

हे राजन् ! तुम बलवान हो, अतः बलपूर्वक तुमने मुझे विधवा कर डाला । तुमने अपने विक्रम के प्रभाव से युद्ध में दैत्यों का संहार किया ॥ २७ ॥

कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश ।

प्राणेभ्योऽपि गरीयान्मे तत्र भर्ता महाबलः ॥ २८ ॥

तुमने १४ हज़ार कालकेय दैत्यों के मारने के समय मेरे प्राणों से अधिक प्यारे महाबलवान पति को भी ॥ २८ ॥

सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातुरगन्धिना ।

त्वयास्मि निहता राजन्स्यमेव हि बन्धुना ॥ २९ ॥

हे तात ! तुमने शत्रु समझ कर मार डाला । अतः तुम मेरे नाम मात्र के भाई हो । तुमने उसे क्या मारा मानों मुझे ही मार डाला ॥ २९ ॥

राजन्वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतं ह्यहम् ।

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ॥ ३० ॥

हे राजन् ! अब तुम्हारे कारण मुझे विधवापन भोगना पड़ा । तुमको उचित था कि, संग्राम में अपने बहनों की रक्षा करते ॥ ३० ॥

स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे ।

एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ॥ ३१ ॥

दिनु तुमने तो उसको स्वयं मार डाला । तिस पर भी तुमको  
लाज नहीं आती । इस प्रकार रोती और विलाप करती हुई अपनी  
बहिन की बातें सुन ॥ ३१ ॥

**अब्रवीत्सान्त्वयित्वातां सामपूर्वमिदं वचः ।**

**अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ॥ ३२ ॥**

रावण ने ढाँढ़स बँधाते हुए उससे नम्रता पूर्वक कहा—बहिन !  
तुम रोओ मत ! किसी बात के लिये डरो मत ॥ ३२ ॥

**दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्रतः ।**

**युद्धप्रमत्तो व्याक्षिसो जयकांक्षी क्षिपञ्चरान् ॥ ३३ ॥**

मैं दान मान और अनुग्रह से यत्तपूर्वक तुझे सदा सन्तुष्ट  
करता रहूँगा । उस समय विजय की अभिलाषा से युद्ध करता  
हुआ, मैं उन्मत्त सा हो रहा था और निरन्तर बाणों को छोड़ रहा  
था ॥ ३३ ॥

**नाहमज्ञासिषं युध्यन्स्वान्परान्वापि संयुगे ।**

**जामातरं न जाने स्म प्रहरन्युद्धदुर्मदः ॥ ३४ ॥**

उस युद्ध में मुझे अपने विराने का कुछ भी ध्यान नहीं था ।  
उस समय मुझे यह ज्ञान न था कि, मेरा वहनेाई कहाँ है । युद्ध में  
उन्मत्त हो मैं प्रहार कर रहा था ॥ ३४ ॥

**तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः ।**

**अस्मिन्काले तु यत्प्राप्तं तत्करिष्यामि ते हितम् ॥ ३५ ॥**

इसी से तेरा स्वामी मेरे हाथ से मारा गया । जो हुआ सो  
हुआ, इस समय जो तेरे हित की बात होगी, वही मैं करने को  
तैयार हूँ ॥ ३५ ॥

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पाश्वतः ।

चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ॥ ३६ ॥

अब तू अपने भाई ऐश्वर्यवान् खर के पास जाकर रह । तेरा महाबली भाई खर अब से १४ हज़ार राक्षसों का अधिपति होगा ॥ ३६ ॥

प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ।

तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्रातायं वै खरः प्रभुः ॥ ३७ ॥

उसे अधिकार होगा कि, वह अपने अधीनस्थ राक्षसों को जहाँ चाहें वहाँ भेजे और जिसको जो कुछ देना चाहे दे । वह खर तेरी मौसी का पुत्र है ॥ ३७ ॥

भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन्निशाचरः ।

शीघ्रं गच्छ त्वयं वीरो दण्डकान्परिक्षितुम् ॥ ३८ ॥

सो वह सदा तेरी आङ्गा में रहेगा । अतः हे वीर खर ! तुम दण्डक वन की रक्षा के लिये जाओ ॥ ३८ ॥

दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ।

तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति तदा खरः ॥ ३९ ॥

महाबली दूषण उसका सेनापति होगा । वहाँ पर शूरवीर खर सदा तुम्हारी आङ्गा का पालन करेगा ॥ ३९ ॥

रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेव भविष्यति ।

एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ॥ ४० ॥

यह कामरूपी राक्षसों का स्वामी होगा । यह कह कर दशग्रीव खर के साथ रहने के लिये सैनिक राक्षसों को आङ्गा दी ॥ ४० ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् ।  
 स तैः परिवृतः सर्वै राक्षसैर्धरदर्शनैः ॥ ४१ ॥  
 आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ।  
 स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।  
 सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसदण्डके वने ॥ ४२ ॥

इति चतुर्विंशः सर्गः ॥

बल-वीर्य-युक्त एवं भयझुर सूरत शक्ति के १४ हजार राक्षसों को साथ ले खर निर्भीक हो दण्डक वन में तुरन्त जा पहुँचा और वहाँ निष्कण्टक राज्य करने लगा । वह शूर्पणखा वहीं दण्डक वन में रहने लगी ॥ ४२ ॥ ४२ ॥

उत्तरकाण्ड का चौबीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

### पञ्चविंशः सर्गः

—:०:—

स तु दत्त्वा दशग्रीवो बलं धोरं खरस्य तत् ।

भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ॥ १ ॥

दशग्रीव उस खर को धोर सेना दे और अपनी बहिन को धीरज बँधा, हर्षित और स्वस्थ हुआ ॥ १ ॥

ततो निकुम्भिला नाम लङ्घोपवनमुत्तमम् ।

तद्राक्षसेन्द्रो बलवान्प्रविवेश सहानुगः ॥ २ ॥

तदनन्तर राक्षसराज रावण अपने अनुचरों को साथ ले निकुम्भिला नामक लङ्घा के एक उत्तम उपवन में गया ॥ २ ॥

ततो यूपशताकीर्णसौम्य चैत्योपशेषाभितम् ।

ददर्श विष्ट्रितं यज्ञं श्रिया संप्रज्वलन्निव ॥ ३ ॥

उसने सैकड़ों यज्ञस्तम्भों और विविध प्रकार की यज्ञशालाओं से सुशोभित उस स्थान को अत्यन्त सुसज्जित देखा ॥ ३ ॥

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् ।

ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ॥ ४ ॥

फिर वहाँ उसने काले हिरन का चर्म ओढ़े, दण्ड कमण्डल लिये, भयङ्कर रूपधारी अपने पुत्र मेघनाद को देखा ॥ ४ ॥

तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः ।

अब्रवीत्किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्वतः ॥ ५ ॥

रावण ने अपनी बीसों भुजाओं को फैला मेघनाद को अपनी छाती से लगा कर उससे कहा —हे बेटा ! तुम यह क्या कर रहे हो ? मुझसे समस्त यथार्थ वृत्तान्त कहो ॥ ५ ॥

उशना त्वब्रवीत्तत्र यज्ञसम्पत्समृद्धये ।

रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः ॥ ६ ॥

तब महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने यज्ञसम्पत्ति बढ़ाने के लिये राक्षस राज रावण से कहा ॥ ६ ॥

अहमाख्यामि ते राजञ्श्रूयतां सर्वमेव तत् ।

यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविस्तराः ॥ ७ ॥

हे राजन ! मैं आप से सब वृत्तान्त कहता हूँ । आप सुनिये । आपके पुत्र ने अत्यन्त विस्तार के साथ सात प्रसिद्ध यज्ञों का किया है ॥ ७ ॥

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः ।  
 राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥  
 माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुंभिः सुदुर्लभे ।  
 वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात्पृथिवीरिह ॥ ९ ॥

अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, और वैष्णव  
 इन द्वः यज्ञों को कर चुकने के बाद जब ( इसने ) माहेश्वर यज्ञ, जिसे  
 हर कोई नहीं कर सकता, किया ; तब तुम्हारे पुत्र ने साक्षात् शिव  
 सेदुर्लभ वरदान प्राप्त किये ॥ ८ ॥ ९ ॥

कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम् ।  
 मायां च तामसीं राम यया सम्पद्यते तमः ॥ १० ॥

इसने इच्छाचारी, दिव्य और आकाश में स्थिर रहने वाला एक  
 रथ पाया है और इसे तामसी नाम्नी माया भी प्राप्त हुई है । हे  
 राम ! इस माया के द्वारा अंधेरा छा जाता है ॥ १० ॥

एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर ।

प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥ ११ ॥

हे राक्षसेश्वर ! जो इस माया को जानता है, उसकी गति  
 जानने की सामर्थ्य देवताओं और असुरों में भी नहीं है ॥ ११ ॥

अक्षयाविषुधी वाणीश्वापं चापि सुदुर्जयम् ।

अस्त्रं च वलवद्राजञ्जलित्रिविधवंसनं रणे ॥ १२ ॥

हे राजन् ! इनके अतिरिक्त इसे कभी रीते न होने वाले दो  
 तरकस, दुर्जेय धनुष, तथा संग्राम में शत्रु का नाश करने वाला  
 एक वडा वलवान शख्त मिला है ॥ १२ ॥

एतान्सर्वान्वरांलुब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन ।

अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिवक्षन् स्थितो हृहम् ॥१३॥

हे दशानन ! तुम्हारे इस पुत्र ने आज यज्ञ की समाप्ति में  
ये समस्त वरदान पाये हैं । आज यज्ञ समाप्त होने पर हम दोनों  
आपसे मिलना चाहते थे ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीदशग्रीवो न शोभनमिदं कृतं ।

पूजिताः शत्रवो यस्माद्द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥ १४ ॥

यह सुन रावण ने कहा—हे पुत्र ! यह काम तो तुमने अच्छा  
नहीं किया । क्योंकि विविध उपचारों से तुमने मेरे शत्रु इन्द्रादि  
देवताओं की भी पूजा की है ॥ १४ ॥

एहीदानीं कृतं यद्धि सुकृतं तत्र संशयः ।

आगच्छ सौम्य गच्छाम स्वपेव भवनं प्रति ॥ १५ ॥

अस्तु, जो किया सो ठीक ही किया । इसमें सन्देह नहीं कि,  
इन कार्यों के करने से पुण्य की प्राप्ति अवश्य होगी । आओ ! अब  
घर चलें ॥ १५ ॥

ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः ।

ख्योऽवतारयामास सर्वास्ता वाष्पगद्गदाः ॥१६॥

यह कह रावण अपने पुत्र और विभीषण को साथ ले अपने घर  
गया और उन सब रोती हुई ख्यों को विमान से उतारा ॥१६ ॥

लक्षिष्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम् ।

तस्य तासु मर्ति ज्ञात्वा धर्मत्मा वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥

वे सब अच्छे लक्षणों वाली रक्त स्वरूप लियाँ, देवताओं, दानवों और राक्षसों की कन्याएँ थीं। उन सब लियों के प्रति रावण का दुष्ट अभिप्राय जान धर्मात्मा विभीषण ने कहा ॥ १७ ॥

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोर्थं कुलनाशनैः ।

धर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वपतेन विचेष्टसे ॥ १८ ॥

हे राजन् ! तुम यह जानते ही हो कि यश, धन और कुलनाशक आचरणों से पाप होता है। तिस पर भी तुम प्राणियों की सताने के लिये मनमानी करते हो ॥ १८ ॥

ज्ञातींस्तान्धर्षयित्वेमास्त्वयानीता वराङ्गनाः ।

त्वामतिक्रम्य मधुना राजन्कुम्भीनसी हृता ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जिस प्रकार तुमने इन लियों के बन्धुजनों को नीचा दिखा कर इनको हरा है; उसी प्रकार मधु ने तुम्हें नीचा दिखाने के लिये, तुम्हारी वहिन कुम्भीनसी को हरा है ॥ १९ ॥

रावणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नावगच्छामि किं त्विदम् ।

कोऽयं यस्तु त्वयाख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥॥२०

रावण ने कहा—मैं नहीं समझ सकता कि, तुम कह क्या रहे हो। जिसका तुमने नाम लिया वह मधु है कौन ? ॥ २० ॥

विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।

श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥ २१ ॥

तब विभीषण ने क्रोध में भर रावण से कहा—परखीहरण रूप आपके इस पाप का फल जो प्राप्त हुआ, उसे सुनो ॥ २१ ॥

मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः ।

माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ॥२२॥

हम लोगों के नाना सुमाली के ज्येष्ठ भ्राता माल्यवान वृद्ध हैं और समझदार निशाचर हैं ॥ २२ ॥

पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत् ।

तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताऽभवत् ॥२३॥

मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्या नलोद्धवा ।

भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातृणां धर्मतः स्वसा ॥ २४ ॥

वे हमारी माता के पिता के बड़े भाई हैं और हम लोगों के मान्य हैं । उनकी लड़की की लड़की कुम्भीनसी—( अर्थात् हम लोगों की मौसी ) अनला की बेटी हम लोगों की धर्म की बहिन हुई ॥ २३ ॥ २४ ॥

सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा ।

यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलो॥षिते ॥ २५

हे राजन् ! उसी कुम्भीनसी को महाबली मधु नामक राक्षस हर कर ले गया है । उस समय तुम्हारा पुत्र तो यज्ञ करने में लगा हुआ था और मैं तप करने के लिये जल में स्थित था ॥ २५ ॥

कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ ।

निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह संपतान् ॥ २६ ॥

हे महाराज ! उस समय कुम्भकर्ण से रहा था । सो आप के कृपापात्र राक्षसश्रेष्ठ मंत्रियों को मार कर ॥ २६ ॥

धर्षयित्वा हृता राजन् गुप्ताप्यन्तःपुरेतत्र ।

श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ॥२७॥

तुम्हारे अन्तःपुर में रक्षित कुम्भीनसी को बरज्जारी हर क्षे  
गया है । उसकी इस उद्घटना को सुन कर भी मैंने उसे क्षमा  
कर दिया, उसे मारा नहीं ॥ २७ ॥

यस्मादवश्यं दातव्या कन्या खर्ते हि भ्रातुभिः ।

तदेतत्कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मतेः ॥ २८ ॥

क्योंकि मैंने सोचा कि, कुआरी बहिन का विवाह करना भ्राता  
का आवश्यक कर्त्तव्य है । सो तो किया ही नहीं गया था । है  
दुर्मति ! यह दुर्घटना तुम्हारे ही दुष्कर्मी का फल है ॥ २८ ॥

अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ।

विभीषणवचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ॥ २९ ॥

सो तुमको इस कन्याहरण रूप पाप का फल इसी लोक में  
( हाथों हाथ ) मिल गया । इसे तुम याद रखो । विभीषण के इन  
वचनों को सुन राक्षसेन्द्र रावण ॥ २९ ॥

दौरात्म्येनात्मनोद्भूतस्तसाम्भा इव सागरः ।

ततोऽब्रवीइशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ ३० ॥

अपने उस दुष्कर्म से बैसा ही सन्तप्त दुश्चा, जैसे पानी के  
गर्म होने से समुद्र खलबला उठता है । तदनन्तर वह मारे क्रोध  
के लाल लाल नेत्र कर कहने लगा ॥ ३० ॥

कल्पयतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ।

भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ॥ ३१ ॥

तुरन्त मेरा रथ तैयार करो, मेरे शूर योद्धा लड़ने के लिये  
कमर कस तैयार हों, मेरा भाई कुम्भकर्ण और मुख्य मुख्य  
राज्ञस ॥ ३१ ॥

वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ।

अद्य तं समरेऽहत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ॥ ३२ ॥

विविध प्रकार के शस्त्र ले सवारियों पर सवार हों। आज में  
उस मधु को, जो रावण से भी नहीं डरता ॥ ३२ ॥

सुरलोकं गमिष्यामि युद्धाकाङ्क्षी सुहृदवृत्तः ।

अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्युग्याणि रक्षसाम् ॥ ३३ ॥

मार कर लड़ने के लिये अपने हितैषियों के साथ देवलोक में  
जाऊँगा। (रावण को आज्ञा पा) मुख्य मुख्य चार हज़ार  
अक्षौहिणी राज्ञस आगे चले ॥ ३३ ॥

नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षणाम् ।

इन्द्रजित्वग्रतः सैन्यात्सैनिकान्परिगृह्यच ॥ ३४ ॥

उनके पास विविध प्रकार के हथियार थे। वे लड़ने की अभिलाषा से चले। मेघनाद सब सेनापतियों को साथ ले आगे हो लिया ॥ ३४ ॥

जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ।

विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्माचरन् ॥ ३५ ॥

बीच में रावण और सब के पीछे कुम्भकर्ण था। किन्तु धर्मात्मा  
विभीषण लङ्का में रह गये और वे अपने धर्माचरण में लगे  
रहे ॥ ३५ ॥

शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ।  
खरस्रष्टैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमार्महोरगैः ॥ ३६ ॥

वचे हुए अन्य समस्त राक्षस मधुपुरी की ओर रवाना हो गये । वे ऊटों, घोड़ों, सूसों और बड़े बड़े सांपों के ऊपर सवार थे ॥ ३६ ॥

राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाकाशं निरन्तरम् ।  
दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ॥ ३७ ॥

उस समय वे राक्षस आकाश को ढक कर जाने लगे । देवताओं से बैर रखने वाले सैकड़ों दैत्य ॥ ३७ ॥

रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन्हि पृष्ठतः ।

स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ॥ ३८ ॥

रावण को देवताओं पर चढ़ाई करने के लिये जाते देख, उसके पीछे लग लिये । रावण चलते चलते मधु के नगर में पहुँचा ॥ ३८ ॥

न दर्दश मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ।

सा च प्रव्हाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ॥ ३९ ॥

वहाँ पर उसे मधु तो न देख पड़ा, किन्तु उसे वहाँ उसकी बहिन कुम्भीनसी मिली । वह भाई को देख, हाथ जोड़ उसके पैरों पर गिर पड़ी ॥ ३९ ॥

तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ।

तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ ४० ॥

क्योंकि वह रावण से डरती थी। उस समय कुम्भीनसी को पैरों पर गिरी हुई देख, रावण ने उसे उठाया और कहा डर मत ॥ ४० ॥

रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ।

साऽब्रवीद्यदि मे राजन्प्रसन्नस्त्वं महाभुज ॥ ४१ ॥

मैं राक्षसश्रेष्ठ रावण हूँ। अब बतला कि, मैं तेरे लिये क्या करूँ? उत्तर मैं कुम्भीनसी ने कहा—हे राजन्! हे महाभुज! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं ॥ ४१ ॥

भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ।

न हीदशं भयं किञ्चित्कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ ४२ ॥

तो हे मानद! अब आप मेरे पति का वध न करें। क्योंकि कुलीन स्त्रियों के लिये (पतिवध सा) दूसरा और कोई भय ही नहीं है ॥ ४२ ॥

भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ।

सत्यवाग्भव राजेन्द्रमामवेक्षस्व याचतीम् ॥ ४३ ॥

समस्त विपत्तियों से बढ़ कर कुलीन स्त्रियों के लिये विधवापन की विपत्ति है। हे राजेन्द्र! आप अपने वचन को सत्य कीजिये। मैं प्रार्थना कर रही हूँ। आप मेरी ओर देखिये ॥ ४३ ॥

[ नोट—कुलीन स्त्रियों के लिये विधवापन से बढ़ कर अन्य कोई विपत्ति नहीं है। कुम्भीनसी के इस कथन से स्पष्ट है कि, उस समय कुलीन राक्षसों के घरानों में भी पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी, और विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता था। ]

त्वयाऽप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम् ।

रावणस्त्वब्रवीद्गृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ॥ ४४ ॥

आपने स्वयं अभी अपने मुख से रुहा है कि, “डरो मत” । तब रावण हर्षित हो, सामने खड़ी हुई अपनी मौसेरी बहिन से बोला ॥ ४४ ॥

क चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम् ।

सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं\* जयाय हि ॥ ४५ ॥

शीघ्र बतला तेरा पति कहाँ है । मैं उसे अपने साथ ले कर जय के लिये स्वर्गलोक को जाऊँगा ॥ ४५ ॥

तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोस्मि पधोर्वधात् ।

इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ॥ ४६ ॥

तेरे ऊपर दया कर और तेरे स्नेहवश मैं अब मधु का वध नहीं करूँगा । यह सुन कर, कुम्भोनसी ने अपने साते हुए पति को जगाया ॥ ४६ ॥

अब्रवीत्संप्रहृष्टेव राक्षसी सा पतिं वचः ।

एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ॥ ४७ ॥

और हर्षित हो उससे कहा—मेरे महाबली भाई रावण यहाँ आये हुए हैं ॥ ४७ ॥

सुरलोक जयाकाङ्क्षी सहाय्ये त्वां वृणोति च ।

तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ॥ ४८ ॥

वे देवलोक जीतने के लिये जा रहे हैं और तुम्हारी सहायता चाहते हैं । अतः हे राक्षस ! अपने भाई बंदों सहित उनकी सहायता के लिये उनके साथ जाओ ॥ ४८ ॥

\* पाठान्तरे—“जयावहे” ।

स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ।  
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥ ४९ ॥

मुझे देखते ही स्नेहवश रावण ने तुमको अपना बहनोई मान लिया है । अतः उनको सहायता देना तुमको उचित है । कुम्भीनसी के यह वचन सुन निशाचर मधु ने कहा कि, मैं अवश्य उसकी सहायता करूँगा ॥ ४९ ॥

ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्याय्यमुपेत्य सः ।

पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥

तदनन्तर मधु, राक्षसश्रेष्ठ रावण से मिला और उसने यथा विधि, यथोचित, एवं धर्मानुसार रावण का सत्कार किया ॥ ५० ॥

प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेशमनि वीर्यवान् ।

तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५१ ॥

बलवान रावण ने मधु के भवन में सत्कार प्राप्त कर वहाँ एक रात वास कर, अगले दिन वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी की ॥ ५१ ॥

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ।

राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

इति पञ्चविंशः सर्गः ॥

इन्द्र के समान राक्षसराज रावण, कुबेर के वासस्थान कैलास पर्वत के शिखर पर गया और वहाँ अपनी सेना का शिविर स्थापित किया ॥ ५२ ॥

उत्तरकाण्ड का पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



## षट् विंशः सर्गः

—\*—

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ।

अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥

सायंकाल होने पर पराक्रमी रावण ने अपनी सेना सहित वहाँ वास किया ॥ १ ॥

उदिते विमले चन्द्रे तुल्य पर्वत वर्चसि ।

प्रसुमं सुमहत्सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥

कुछ देर बाद पर्वत के समान विमल चन्द्रमा उदय हुआ । तब विविध प्रकार के आयुधों को धारण किये हुए वह विशाल वाहिनी से गयी ॥ २ ॥

रावणस्तु महावीर्यो निषणः शैलमूर्धनि ।

स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादपशोभितान् ॥ ३ ॥

किन्तु रावण, उस पर्वत की चोटी पर लेटा हुआ, विविध प्रकार के पेड़ों और चन्द्रोदय के कारण उस पर्वत की अनेक शोभाओं को देखने लगा ॥ ३ ॥

कर्णिकारवनैर्दीपैः \*कदम्बवकुलैस्तथा ।

पद्मिनीभिश्च फुलाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागमन्दारतरुभिस्तथा ।

चूतपाटललोध्रैश्च प्रियंगवर्जुनकेतकैः ॥ ५ ॥

\* पाठान्तरे—“कदम्बगहनैस्तथा” ।

तगरैनारिकेरैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।  
एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्धासितवनान्तरे ॥ ६ ॥

भली भौति चमचमाते कर्णिकार वृक्षों के बन, कदम्ब, मौल-  
सिरी, मन्दाकिनी का जल, पुष्पित कमलों का बन, चम्पा, अशोक,  
नागकेसर, मन्दार, आम, गुलाब, लोध्र, प्रियड्गु, अर्जुन, केवड़ा,  
तगर, नारियल, चिरोंजी, कटहर तथा अन्य वृक्षों से वह स्थान  
भूषित हो रहा था ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

किन्नरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः ।  
समं सम्प्रजग्युर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥

उस बन में, काम से विकल और मधुर कण्ठ वाले किन्नररगण  
एकत्र हो, साथ साथ, चित्त को हर्षित करने वाले गीत गा रहे  
थे ॥ ७ ॥

विद्याधरा मदक्षीवा मदरक्तान्तलोचनाः ।  
योषिद्धिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥

मदमाते विद्याधर मद से लाल लाल नेत्र किये, अपनी स्त्रियों  
के साथ हर्षित हो क्रीड़ा कर रहे थे ॥ ८ ॥

घण्टानामिव सन्नादः शुश्रुवे मधुरस्वनः ।  
अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥

कुबेर के भवन में गाने वाली अप्सराओं की बड़ी रसीली और  
मीठी ध्वनि, घंटे के नाद की तरह, सुन पड़ती थी ॥ ९ ॥

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।  
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥ १० ॥

हवा चलने पर वृक्षों से पुष्पों की वर्षा होती थी । जिनसे वह सारे का सारा पर्वत सुखासित हो रहा था । उन फूलों से वसन्त ऋतु के फूलों जैसी सुगन्धि निकल रही थी ॥ १० ॥

मधुपुष्परजः पृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।

प्रवर्वौ वर्धयन्कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥ ११ ॥

पुष्पपरागयुक्त मकरन्द की गन्ध से भलीभांति युक्त पर्वं सुखदायी पवन, रावण का कामेहोपन करता हुआ बहने लगा ॥ ११ ॥

गेयात्पुष्पसमृद्धया च शैत्याद्वायोर्गिरेगुणात् ।

प्रदृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥ १२ ॥

रावणः स महावीर्यः कामस्य वशमागतः ।

विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥ १३ ॥

उस समय रात्रि होने पर चन्द्रोदय होने से, संगीत सुनने से, पुष्पों की वृद्धि से एवं वायु की शीतलता से तथा पर्वत की शोभा से बलवान राक्षसराज रावण कामदेव के वश में हो, बारंबार लंबी सांसे लेता हुआ, चन्द्रमा की ओर देखने लगा ॥ १२ ॥ १३ ॥

एतस्मिनन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता ।

सर्वाप्सरोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १४ ॥

इतने हो में वहाँ समस्त भूषणों से भूषित, समस्त अप्सराओं में श्रेष्ठ, चन्द्राननी रम्भा देख पड़ी ॥ १४ ॥

दिव्यचन्दनलिपाङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ।

दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥ १५ ॥

उस समय वह अपने अंगों में चन्दन लगाये हुए थी। उसके बालों में कल्पवृक्ष के फूल गुथे हुए थे। वह किसी अच्छे जलसे में शामिल होने के लिये जलदी जलदी जा रही थी ॥ १५ ॥

चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ।

समुद्रहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥ १६ ॥

उसके नेत्र सुन्दर और कुच कठोर थे। करधनी से भूषित उसके पीन नितम् रति के आश्रयस्थल थे ॥ १६ ॥

कृतैर्विशेषकैराद्रैः पडतुकुमुमोद्भवैः ।

बभावन्यतमेव श्रीःकान्तिश्रीद्युतिकीर्तिभिः ॥ १७ ॥

द्वःश्रों ऋतुओं में उत्पन्न हुए फूलों के बने हुए विविध प्रकार के आभूषणों को पहिने हुए रम्भा कान्ति, शोभा और कीर्ति में दूसरी लहरी की तरह जान पड़ती थी ॥ १७ ॥

नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुणिता ।

यस्या वक्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ॥ १८ ॥

वह सजल मेघ की तरह नीली साढ़ी पहिने थी। उसका मुख चन्द्रमा की तरह था और सुन्दर भौंहें धनुष की तरह तनी हुई थीं ॥ १८ ॥

ऊरु करिकराकारौ करौ पल्लव कोमलौ ।

सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ॥ १९ ॥

उसकी जाँघे हाथी की सुँड़ की तरह और उसके दोनों हाथ पक्षों से भी अधिक कोमल थे। वह रम्भा रावण की सैनिक छावनी में हो कर जा रही थी कि, उस पर रावण की दूषिट पड़ी ॥ १९ ॥

तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामवाणवर्शं गतः ।  
करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानेऽभ्यभाषत ॥२०॥

उस समय रावण काम के वशीभूत तो था हो, अतः उसने उठ कर तुरन्त रम्भा का हाथ पकड़ लिया । यद्यपि रम्भा उस समय बहुत लज्जायी ; तथापि रावण ने मुमक्षा कर उससे कहा ॥२०॥

क गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।  
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥

हे वरारोहे ! तुम कहाँ जातो हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? यह समय किसके अभ्युदय का है कि, जो तुम्हारे साथ भोग करेगा ? ॥ २१ ॥

त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।  
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥२२॥

हे प्रिये ! कमल जैसे सुगन्धियुक्त तुम्हारे अधरों का अमृतपान कर, आज कौन व्यक्ति परितृप्त होगा ॥ २२ ॥

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।  
कस्योरस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥ २३ ॥

हे भीरु ! तुम्हारे सुन्दर बड़े बड़े और सुवर्ण घट की तरह गोल स्तन, जो आपम में सब हुए हैं, किस पुरुष की छाती का स्पर्श करेंगे ? ॥ २३ ॥

सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामाचितं पृथु ।  
अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥२४॥

हे भामिनी ! सुवर्ण चक्र की तरह सैने को करधनी से भूषित मौटी और स्वर्गतुल्य सुखदायी तुम्हारी इन जाँघों पर कौन सवार होगा ? २४ ॥

मद्विशिष्टः पुमान्कोऽन्न शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।

मापतीत्य हि यच्च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥२५॥

हे भीरु ! इस जगत में मुझसे बढ़ कर कौन पुरुष है ? इन्द्र, विष्णु अथवा अश्विनीकुमार कोई भी मेरी बराबरी नहीं कर सकता । अतः मुझे छाड़ कर तेरा अन्य के पास जाना अच्छी बात नहीं ॥ २५ ॥

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ।

त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥ २६ ॥

हे बड़े नितम्बों वालो ! आओ इस शिला पर विश्राम करो । त्रिलोकी में मुझे छाड़ दूसरा कोई प्रभु ( तुझे मिलना कठिन है । ) नहीं है ॥ २६ ॥

तदेवं प्राञ्जलिः प्रहो याचते त्वां दशाननः ।

भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥२७॥

देख, मैं दग्धवीय, ( तेरे ) प्रभु का प्रभु और तीनों लोकों का विधाता हो कर भी, नम्रतापूर्वक हाथजोड़ तुझसे प्रार्थना करता हूँ । अतः हे सुन्दरी ! मेरा कहना मान ले ॥ २७ ॥

एवमुक्ताऽब्रवीद्रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ।

प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥ २८ ॥

रावण के ऐसे वचन सुन, रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़ कर बोली—हे राज्ञसराज ! आप मेरे बड़े हैं, अतः आपको ऐसा कहना उचित नहीं ॥ २८ ॥

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि ।  
तद्धर्षतः स्नुषा तेहं तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

प्रत्युत यदि अन्य कोई मेरा अपमान करता हो तो, आपको उसके हाथ से मेरी रक्षा करनी चाहिये । धर्मानुसार मैं आपकी पुश्पबधू हूँ । मैं यह आपसे सत्य ही सत्य कहती हूँ ॥ २६ ॥

अथाब्रवीदशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।

रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥ ३० ॥

यह कह रम्भा नोचे को मुख कर अपने चरणों की ओर निहारती हुई खड़ी रही । रावण को देखते ही उसका शरीर थर्णने लगा ॥ ३० ॥

सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ।

बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर रावण ने रम्भा से कहा कि, यदि तुम मेरे पुत्र की भार्या होती तो तू मेरी पुश्पबधू हो सकती थी । इसके उत्तर में रम्भा ने कहा—सो बात तो है ही ॥ ३१ ॥

धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुञ्जव ।

पुत्रः प्रियतरः प्राणैभ्रातुर्वैश्वरणस्य ते ॥ ३२ ॥

विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूवर इत्ययम् ।

धर्मतो यो भवेद्विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥ ३३ ॥

हे राज्ञसपुङ्गव ! मैं धर्म से तुम्हारी पुत्रवधू हूँ । सुनो, तुम्हारे भाई कुबेर का, प्राणों से भी अधिक प्यारा नलकूबर नाम का त्रैलोक्य में प्रसिद्ध एक पुत्र है । वह धर्म का पालन करने में ब्राह्मण जैसा, पराक्रम में द्वितीय जैसा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

क्रोधाद्यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ।

तस्यास्मि कृतसङ्केता लोकपालसुतस्य वै ॥ ३४ ॥

क्रोध में अग्नि जैसा और द्वारा में पृथिवी के समान है । उस लोकपाल-कुमार के सङ्केतानुसार ॥ ३४ ॥

तमुहिंश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ।

यथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रतितिष्ठति ॥ ३५ ॥

आज मैं उनके पास जाती हूँ । उनके पास जाने ही को मैंने ये सारा शृङ्खार किया है । मुझ पर जैसा उनका अनुराग है, वैसा अनुराग अन्य किसी पर नहीं है ॥ ३५ ॥

तेन सत्येन मां राजन्मोक्तुमर्हस्यरिन्दम् ।

स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ॥ ३६ ॥

हे अरिन्दम ! उस वादे को पूरा करने के लिये, तुमको उचित है कि मुझे क्लोड़ दो । क्योंकि वह धर्मात्मा उत्कण्ठापूर्वक मेरी बाट जोह रहा होगा ॥ ३६ ॥

तत्र विघ्नं तु तस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ।

सद्विराचरितं मार्गं गच्छ राज्ञसपुङ्गव ॥ ३७ ॥

सो आपको उसके काम में विघ्न डालना उचित नहीं । हे राज्ञसश्रेष्ठ ! साधुजन जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं उसी मार्ग का अनुसरण आप भी करें ॥ ३७ ॥

माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मि ते ।

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ॥ ३८ ॥

आप मेरे मान्य हैं, आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये । रम्भा के ये बचन कहने पर रावण ने उससे बड़ी नम्रता से कहा ॥ ३८ ॥

स्नुषास्मि यद्वोचस्त्वमेकपलीष्वयं क्रमः ।

देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥ ३९ ॥

तुमने जो यह कहा कि—“मैं तुम्हारी पुत्रबधू हूँ,” से यह ठीक नहीं । क्योंकि यह नियम तो उन छियों के लिये है, जिनका एक पति होता है । इस बात को देवता भी मानते हैं और सनातन से यही बात निश्चित है ॥ ३६ ॥

पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः ।

एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ ४० ॥

अप्सरा के न तो एक पति होता है और न देवता के एक स्त्री । यह कह कर रावण ने रम्भा को पर्वत की शिला पर लिटा लिया ॥ ४० ॥

कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे ।

सा विमुक्ता ततो रम्भा ऋष्टमाल्यविभूषणा ॥ ४१ ॥

और कामभोग में आसक हो उसके साथ विहार करना आरम्भ किया । जब वह भोग कर चुका, तब रम्भा की वह पुष्प-माला जो वह पहिने हुए थी मसल गयी और गहने भी ढीले ढाले हो गये ॥ ४१ ॥

गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ।

लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितप्लुवा ॥ ४२ ॥

गजेन्द्र की क्रीड़ा से विलोाइत नदी की तरह, रमभा विकल हो गयी। उसके सिर के बाल विखर गये। वृक्ष के पत्तों की तरह उसके हाथ कौपने लगे ॥ ४२ ॥

**पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी ।**

**सा वेपमाना लज्जन्ती भीताकर कृताञ्जलिः ॥ ४३ ॥**

पवन के झोंकों से झकोरी हुई पुष्पलता की तरह कौपती, लज्जाती और भयभीत रमभा, हाथ जोड़े हुए ॥ ४३ ॥

**नलकूबरमासाद्य पादयोनिपापत ह ।**

**तदवस्थां च तां दृष्टा महात्मानलकूबरः ॥ ४४ ॥**

नलकूबर के पास गयी और पास पहुँच वह उसके चरणों में गिर पड़ी। महात्मा नलकूबर ने उसकी दशा को देख, उससे ॥ ४४ ॥

**अब्रवीत्किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे ।**

**सा वैनिःश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ ४५ ॥**

कहा ; हे भद्रे ! यह क्या ? तुम मेरे चरणों पर क्यों गिरी ? तब रमभा कौपती हुई और लंबी लंबी शोषे लेती हुई तथा हाथ जोड़ कर, ॥ ४५ ॥

**तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ।**

**एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ॥ ४६ ॥**

सब हाल ज्यों का त्यों कहने लगी। ( वह बोली ) हे देव ! रावण स्वर्गलोक में जाने के लिये यहां आया है ॥ ४६ ॥

**तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता ।**

**आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ ४७ ॥**

वह समस्त सेना सहित आज की रात यहाँ बिता रहा था । हे अरिन्दम ! रावण ने मुझको आपके पास आते हुए देख लिया ॥ ४७ ॥

गृहीता तेन पृष्ठास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ।

मया तु सर्वं यत्सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥ ४८ ॥

और मुझे पकड़ कर पूँछा कि, तू किसके पास जाती है ? मैंने उससे जो सच्ची बात थी सो सब कह दी ॥ ४८ ॥

काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत्तद्वचो मम ।

याच्यमानो मया देवस्तुषातेहमिति प्रभो ॥ ४९ ॥

किन्तु वह तो काम से अन्धा हो रहा था ; अतः उसने मेरी एक भी बात न सुनी । मैंने बहुत प्रार्थना की कि, हे प्रभो ! मैं तेरी पुत्रवधू हूँ ॥ ४९ ॥

तत्सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात्तेनास्मि धर्षिता ।

एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ॥ ५० ॥

किन्तु उसने मेरी एक भी बात न सुनी और मेरे साथ बलात्कार किया अर्थात् बलपूर्वक मेरे साथ विहार किया । हे सुव्रत ! अतः आप मेरा यह अपराध क्षमा करें ॥ ५० ॥

नहि तुल्यं बलं सौम्य ख्वियाश्च पुरुषस्य हि ।

एतच्छ्रुत्वा तु संकुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५१ ॥

हे सौम्य ! खी का बल कभी भी पुरुष के समान नहीं होता । यह सुन कर कुबेर के पुत्र को क्रोध चढ़ आया ॥ ५१ ॥

धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं सम्प्रविवेश ह ।  
तस्यतत्कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५२ ॥

सारा वृत्तान्त सुन उसने ध्यान लगा कर ( योगबल से ) उसके साथ किये गये बलात्कार का सारा वृत्तान्त जान लिया ॥ ५२ ॥

मुहुर्तात्क्रोधताप्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना ।  
गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृस्य यथाविधि ॥ ५३ ॥

तब क्रोध के मारे लाल लाल आँखें कर, उसने उसी समय हाथ में जल ले कर और समस्त इन्द्रियों को स्पर्श कर, एवं विधि-पूर्वक आचमन कर ॥ ५३ ॥

उत्सर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ।  
अकामा तेन यस्मात्त्वं बलाद्वद्रे प्रधर्षिता ॥ ५४ ॥

राक्षसराज रावण को अति दारुण शाप देते हुए ( रम्भा से ) कहा—हे भद्रे ! तेरी इच्छा के विरुद्ध उसने तेरे साथ बलात्कार किया है ॥ ५४ ॥

तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ।  
यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ ५५ ॥

अतः फिर वह इस प्रकार दूसरी खो पर उसकी ( इच्छा के विरुद्ध ) बलात्कार न कर सकेगा । यदि वह फिर किसी खो के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करेगा ॥ ५५ ॥

मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ।  
तस्मिमनुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥ ५६ ॥

तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जायगे । उसके मुँह से जलती हुई आग की तरह इस शाप के निकलते हो ॥ ५६ ॥

देव दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्चयुता ।  
पितामहमुखाश्वैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥ ५७ ॥

देवताओं के नगाड़े बजने लगे और आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी । ब्रह्मा आदि समस्त देवता प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥

ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वा तस्य मृत्युं च रक्षसः ।  
श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ॥ ५८ ॥

क्योंकि इन सब देवताओं ने लोक की दुर्गति करने वाले दशग्रीव की मौत का यह द्वार (उपाय) समझा । दशग्रीव ने जब से इस रोमाञ्चकारी शाप को सुना ॥ ५८ ॥

नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ।  
तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।  
नलकूवरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥ ५९ ॥  
इति पट्टविंशः सर्गः ॥

तब से उसने अकामा स्त्रियों पर बलात्कार करना त्याग दिया । जिन प्रतिव्रता स्त्रियों को पहले वह ले गया था, उनको जब नलकूवर के शाप का वृत्तान्त अवगत हुआ, तब वे भी अपने मन में बड़ो प्रसन्न हुईं ॥ ५९ ॥

उत्तरकाण्ड का क्रबोसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## सप्तविंशः सर्गः

—:०:—

**कैलासं लङ्घयित्वा तु ससैन्यबलवाहनः ।**

**आससाद् महातेजा इन्द्रलोकं दशाननः ॥ १ ॥**

**अब कैलास पर्वत को लाँघ कर, महातेजस्वी दशग्रीव फौज फाटा और सवारियों सहित इन्द्रलोक में पहुँचा ॥ १ ॥**

[ नोट—इस वर्णन से जान पड़ता है कि, इन्द्रलोक भी इसी पृथिवी-मण्डल पर कहीं था और इन्द्रादि देवता पृथिवी के किसी उत्तरी भाग में रहा करते थे । यदि ऐसा न होता तो सेना के साथ की सवारियाँ इन्द्रलोक में कैसे जा सकती थीं । ]

**तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः ।**

**देवलोके बभौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥**

चारों ओर से चंग कर जब राक्षसी सेना इन्द्रलोक में पहुँची तब ऐसा कोलाहल हुआ जैसा कि, खलबलाते हुए समुद्र में होता है ॥ २ ॥

**श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात् ।**

**देवानथाब्रवीत्तत्र सर्वनिव समागतान् ॥ ३ ॥**

रावण की चढ़ाई का वृत्तान्त जान कर, इन्द्र का सिंहासन डाल उठा । जब सब दंवता जमा हो गये ; तब उन्होंने उनसे कहा ॥ ३ ॥

**आदित्यांश्च वसूनस्त्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् ।**

**सज्जा भवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥**

एकत्र हुए बारह आदित्य, आठ बसु, चारह रुद्र, साध्यगण तथा उननचास मरुदूगण से कहा—आप लोग दुष्ट रावण के साथ लड़ने के लिये तैयार हों ॥ ४ ॥

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमायुधि ।

सन्निवृत्त्वा सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥

संग्राम में इन्द्र हो के समान प्रभाव वाले महाबली समस्त देवता लोग इन्द्र के ऐसे वचन सुन, लड़ने की अभिलाषा मन में रखे हुए कवचादि धारण करने लगे ॥ ५ ॥

स तु दीनः परित्रिस्तो यहेन्द्रो रावणं प्रति ।

विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

उधर इन्द्र, रावण से भयभीत हो भगवान् विष्णु के निकट गये और उनसे बोले ॥ ६ ॥

विष्णो कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति ।

अहोऽतिबलवद्रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! इस राक्षस रावण के विषय में मुझे क्या करना चाहिये । हाय, यह अति बली रावण लड़ने के लिये आ रहा है ॥ ७ ॥

वरप्रदानादबलवान् खल्वन्येन हेतुना ।

तत्तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥

वह केवल वरदान के बल से बलवान् हो रहा है । क्योंकि साक्षात् ब्रह्मा जी ने उससे जो कह दिया है, उसे सत्य करना ही पड़ेगा ॥ ८ ॥

तद्यथा नमुचिर्वित्रो वलिनरकशम्बरौ ।

त्वद्वलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥

अतः हे भगवन् ! जिस प्रकार नमुचि, वृत्र, वलि, नरक और शम्बर को आपकी अपार सहायता से मैंने भस्म कर डाला ; उसी प्रकार क्रोई उपाय इस समय भी कीजिये ॥ ६ ॥

नहन्यो देवदेवेश त्वद्वते मधुसूदन ।

गतिः परायणं चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १० ॥

क्योंकि हे देवदेवेश मधुसूदन ! इस चराचरयुक्त त्रैलोक्य में तुमको छोड़ न तो कोई दूसरा आश्रयदाता है और न कोई रक्षक ही ॥ १० ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः ।

त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्त्वाहं सुरेश्वरः ॥ ११ ॥

आप ही सनातन-पद्मनाभ श्रीमन्नारायण हैं, आप ही ने इन समस्त लोकों को स्थापित किया है और आप ही का बनाया हुआ मैं सुरपति बना हुआ हूँ ॥ ११ ॥

त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

त्वामेव भगवन् सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! इस चराचरमय समस्त जगत् के बनाने वाले आप ही हैं, और युगान्त में ये सब आप ही मैं लीन भी हो जाता है ॥ १२ ॥

तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ।

असिच्चक्षसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रति ॥ १३ ॥

अतः हे देवदेव ! जिस प्रकार मेरी जीत हो आप मुझे वही उपाय बतला दें । अथवा बतलावें कि खड्ग, चक्र, धारणा कर आप स्वयं रावण से युद्ध करेंगे ? ॥ १३ ॥

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ।

अब्रवीन् पस्त्रासः कर्तव्यः श्रूयतां च मे ॥ १४ ॥

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।

हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ १५ ॥

वे देवदेव भगवान् श्रीमन्नारायण, इन्द्र के इन वचनों को सुन कर बोले—तुम डरो मत ! सुनो । इस दुष्ट रावण को न तो देवता जीत सकते हैं और न दैय । न कोई अन्य ही इसे मार सकता है । वरदान के प्रभाव से अभी यह दुर्जय है ॥ १४ ॥ १५ ॥

सर्वथा तु महत्कर्म करिष्यति बलोत्कटः ।

राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥ १६ ॥

इस समय तो यह बड़ा पराक्रम दिखलावेगा । पुत्र की सहायता से यह महाभयद्वारा युद्ध करेगा । यह बात मुझे ज्ञानदृष्टि से अवगत हो चुकी है ॥ १६ ॥

यत्तु मां त्वमभाषिष्ठा युद्धस्वेति सुरेश्वर ।

नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥ १७ ॥

हे सुरेश्वर ! मुझसे तुमने जो रावण के साथ युद्ध करने के लिये कहा—सो मैं उसके साथ ( अभी ) न लड़ूँगा ॥ १७ ॥

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते ।

दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्वि रावणात् ॥ १८ ॥

क्योंकि शत्रु को मारे विना विष्णु समरभूमि से लौटते नहीं, किन्तु रावण चरदान के बल ( अभी ) सुरक्षित है ; अतः मेरा अभीष्ट पूर्ण होना कठिन है ॥ १८ ॥

प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो ।

भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥ १९ ॥

हे शतयज्ञकारो सुरपति ! किन्तु मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि, इस राक्षस की मौत का कारण मैं ही होऊँगा ॥ १६ ॥

अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम् ।

देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥ २० ॥

मैं ही इसे परिवार सहित मार कर ( तुम समस्त ) देवताओं को हर्षित करूँगा । परन्तु मारूँगा समय आने पर, अभी नहीं ॥ २० ॥

एतत्तेकथितं तत्त्वं देवराज शचीपते ।

युद्धस्व विगतत्रासः सुरैः सार्थं महाबल ॥ २१ ॥

हे महाबली शचीपति देवराज ! जो वास्तव में बात थी वह मैंने तुमको बतला दी । अब तुम जाएंगे और निडर हो कर, देवताओं को अपने साथ ले रावण से लड़ो ॥ २१ ॥

ततो रुद्राः सहादित्या वसवो मरुतोऽश्विनौ ।

सन्नद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ॥ २२ ॥

तदनन्तर आरह रुद्र, वारह आदित्य, आठ चतु, उननचास मरुदगण और दोनों अश्विनीकुमार, कवचों को पहिन पहिन कर, नगर से निकले और इन लोगों ने राक्षसों के ऊपर आक्रमण किया ॥ २२ ॥

एतस्मिनन्तरे नादः शुश्राव रजनीक्षये ।

तस्य रावण सैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥ २३ ॥

इतने में रावण की सेना के राज्ञस सबेरा होते ही विकट युद्ध करने लगे । चारों ओर से उन सैनिक दोरों का कोलाहल सुनाई पड़ने लगा ॥ २३ ॥

ते प्रबुद्धा महावीर्या अन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ।

संग्राममेवाभिमुखा अभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥ २४ ॥

वे महावीर्यवान राज्ञस परस्पर एक दूसरे को देख और उत्साह पाकर, हर्षित अन्तःकरण से युद्ध में अग्रसर हो, लड़ने लगे ॥ २४ ॥

ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ।

तदक्षयं महासैन्यं दृश्वा समरमूर्धनि ॥ २५ ॥

तदनन्तर राज्ञसों की अपार अक्षय वाहिनी को देख, देवताओं की सेना में खलबली मच गयी ॥ २५ ॥

ततो युद्धं समभवदेवदानवरक्षसाम् ।

घोरं तुमुलनिहादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर विनिधि आयुधधारो देवता, राज्ञस और दानवों का बड़े कोलाहल के साथ तमुल युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २६ ॥

एतस्मिनन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।

युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥ २७ ॥

उसी अवसर में भयङ्कर शङ्ख सूरत के रावण के शूरवीर मंत्रिगण युद्ध करने के लिये तैयार हुए ॥ २७ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापाश्वर्महोदरौ ।

अकम्पने निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥ २८ ॥

मारीच, प्रहस्त, महापाश्वर्म, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक तथा सारण ॥ २८ ॥

संहादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः ।

जम्बुमाली महाहादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥ २९ ॥

संहाद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाहाद और राक्षस विरूपाक्ष ॥ २९ ॥

सुसम्ब्रो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ।

त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ ३० ॥

सुसम्ब्र, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष और राक्षस सूर्यशत्रु ॥ ३० ॥

महाकायोऽतिकायश्च देवान्तक नरान्तकौ ।

एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्येऽमहाबलः ॥ ३१ ॥

महाकाय, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक ; इन सब महावीर्य युक्त राक्षसों को साथ ले कर, महाबलवान ॥ ३१ ॥

रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ।

स दैवतगणान्सर्वाज्ञानाप्रहरणैः शितैः ॥ ३२ ॥

व्यध्वंसयत्समं क्रुद्धो वायुर्जलधरानिव ।

तद्वैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥ ३३ ॥

सुमाली, जो रावण का नाना था, देवताओं की सेना में घुस गया। वह विविध प्रकार के पैने पैने शख्सों से क्रोध में भर उनको ऐसे ध्वस्त करने लगा, जैसे हवा मेघों को ध्वस्त करती है। हे राम! देवताओं की सेना, राक्षसों द्वारा मारी जा कर, ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

प्रणुञ्चं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव ।

एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसुनामष्टमो वसुः ।

सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ॥ ३४ ॥

सिंह से ब्रह्म सृगों की तरह दसों दिशाओं को भाग खड़ी हुई। इतने में शूरवीर और वसुओं में अष्टम वसु, जिनका नाम सावित्र था, समरभूमि में आये ॥ ३४ ॥

सैन्यैः परिवृतो हृष्टैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।

त्रासयञ्चत्रुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ॥ ३५ ॥

वह हर्षित हो, बहुत सो सेना को साथ लिये हुए अनेक प्रकार के अल्प शख्सों को चला, शत्रुसैन्य को ब्रह्म करते हुए समरभूमि में आये ॥ ३५ ॥

तथादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च तौ समम् ।

निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ॥ ३६ ॥

त्वष्टा और पूषा नाम के दो महाबलवान आदित्य देवता भी, निर्भय हो अपनी सेना सहित समरभूमि में आये ॥ ३६ ॥

ततो युद्धं समभवत्सुराणां सह राक्षसैः ।

क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ३७ ॥

देवता लोग, राक्षसों की कीर्ति को न सह कर और रण से मुँह न फेर, राक्षसों से लड़ने लगे ॥ ३७ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विविधान्समरे स्थितान् ।  
नानाप्रहरणेऽर्जद्धुः शतसहस्राः ॥ ३८ ॥

तब वे सब राक्षस भी विविध धोर अख्य शस्त्र चला चला कर, संग्राम में स्थित सैकड़ों हज़ारों देवताओं का संहार करने लगे ॥ ३८ ॥

देवाश्च राक्षसान्योरान्महाबलपराक्रमान् ।  
समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

देवता लोग भी युद्ध में महाबलवान पराक्रमी राक्षसों को अपने चमचमाते अख्यों के आघात से यमालय भेजने लगे ॥ ३९ ॥

एतस्मिन्बन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ।  
नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सेऽभ्यवर्तत ॥ ४० ॥

हे राम ! इतने में राक्षस सुमाली विविध प्रकार के हथियार ले और क्रोध में भर, लड़ने के लिये सामने गया ॥ ४० ॥

स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ।  
व्यध्वंसयत संकुद्धो वायुर्जलधरं यथा ॥ ४१ ॥

जैसे हवा बादलों की घटाओं को दूर भगा देती है, वैसे ही सुमाली भी क्रोध में भर विविध प्रकार के पैने शस्त्रों का प्रयोग कर, देवसेना को नष्ट करने लगा ॥ ४१ ॥

ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ।  
हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ॥ ४२ ॥

वे सब देवता राज्ञसों के बाणों की महावृष्टि, तथा शूलों, प्रासों आदि दारुण शस्त्रों की मार के सामने समरभूमि में न ठहर सके ॥ ४२ ॥

ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ।

वसुनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ॥ ४३ ॥

जब सुमाली ने देवताओं को भगा दिया ; तब वसुओं में अष्टम वसु सावित्र ने क्रोध में भर उसका सामना किया ॥ ४३ ॥

संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ।

विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ॥ ४४ ॥

महातेजस्वी सावित्र ने सावधान हो और अपनी रथाढ़ वाहिनी को साथ ले, राज्ञसों पर प्रहार करना आरम्भ किया और अपने ओर विक्रम से सुमाली को युद्ध में रोक दिया ॥ ४४ ॥

ततस्तयोर्महद्युद्धमभवल्लोपमहर्षणम् ।

सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ ४५ ॥

तब संग्राम भूमि में पीठ न दिखाने वाले दोनों सुमाली और वसु का रोमाञ्चकारी बड़ा भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ ४५ ॥

ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ।

निहतः पन्नगरथःक्षणेन विनिपातितः ॥ ४६ ॥

महाबली वसु ने बड़े बड़े बाणों को चला उसके सर्परथ को टुकड़े टुकड़े कर क्षणमात्र में गिरा दिया ॥ ४६ ॥

इत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् ।

गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ॥ ४७ ॥

सैकड़ों बाणों को चला और उसके रथ को नष्ट कर, वसु ने सुमाली का वध करने के लिये हाथ में गदा उठायी ॥ ४७ ॥

ततः प्रगृह्य दीपाग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ।

तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ॥ ४८ ॥

सावित्र ने प्रज्वलित और कालदण्ड के समान अपनी गदा उठा सुमाली के सिर में मारी ॥ ४८ ॥

सा तस्योपरि चोलकाभा पतन्ती विवभौ गदा ।

इन्द्रप्रमुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ॥ ४९ ॥

जिस प्रकार इन्द्र का चलाया वज्र गर्जता हुआ पर्वतशिखर पर गिरता है, उसी प्रकार वह उल्का की तरह प्रभायुक्त गदा सुमाली के सिर पर गिरी ॥ ४९ ॥

तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं दद्वशे तदा ।

गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ॥ ५० ॥

उस गदा के प्रहार से सुमाली की न हड्डी देख पड़ी, न सिर और न मांस हो । गदा ने उन सब को भस्म कर एक ढेर कर दिया ॥ ५० ॥

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ।

व्यद्रवन्सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ।

विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावतस्थिरे ॥ ५१ ॥

इति सप्तविंशः सर्गः ॥

वे राक्षस उसको युद्ध में मरा हुआ देख, रोते और आपस में कहा सुनी करते हुए चारों ओर भाग गये ।

सावित्रि के द्वारा खदेड़े हुए राज्ञस समरभूमि में खड़े न रह सके ॥ ५१ ॥

उत्तरकाशड का सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—: \* : —

### अष्टविंशः सर्गः

—: ० : —

सुमालिनं हतं द्विष्ठा वसुना भस्मसात्कृतम् ।

स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वाऽर्दितं सुरैः ॥ १ ॥

सावित्रि वसु द्वारा सुमाली का नष्ट और भस्म होना देख तथा समस्त राज्ञसी सेना का देवताओं द्वारा पीड़ित हो कर भागना देख ॥ १ ॥

ततः स बलवान् क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ।

निवर्त्य राक्षसान्सर्वान्मेघनादो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

महाबली रावणपुत्र मेघनाद अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और अपनी समस्त राज्ञसी सेना को लौटा कर स्वयं युद्ध करने को उद्यत हुआ ॥ २ ॥

स रथेन महार्हेण कामगेन महारथः ।

अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

प्रज्वलित आग जिस प्रकार वन की ओर लपकती है, वैसे ही वह महारथी मेघनाद, इच्छानुसार चलने वाले विशाल रथ पर बैठ, देवताओं की सेना पर दौड़ा ॥ ३ ॥

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।

विदुदुर्बुद्धिः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥ ४ ॥

विविध प्रकार के आयुधों से सुसज्जित मेघनाद को समरभूमि में प्रवेश करते देखते ही समस्त देवता भाग खड़े हुए ॥ ४ ॥

न बभूव तदा कश्चिद्युयुत्सोरस्य संमुखे ।

सर्वानाविद्धय वित्रस्तां ततः शक्रोऽब्रवीत्सुरान् ॥ ५ ॥

उसके सामने कोई भी खड़ा न रह सका । समस्त देवसेना को भयभीत हो भागते देख, उनसे इन्द्र कहने लगे ॥ ५ ॥

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्त्धवं रणे सुराः ।

एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥ ६ ॥

हे देवताओं ! तुमको न तो डरना चाहिये न भागना चाहिये । तुम सब लोग लैटे । देखो यह मेरा कभी न हारने वाला पुत्र लड़ने जाता है ॥ ६ ॥

ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः ।

रथेनाद्वृतकल्पेन संग्रामे सोऽभ्यवर्तते ॥ ७ ॥

इन्द्रनन्दन जयन्तदेव एक बड़े विलक्षण रथ पर सवार हो समरक्षेत्र में आया ॥ ७ ॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम् ।

रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजग्निरे ॥ ८ ॥

तब वे समस्त देवता इन्द्र के पुत्र को धेर कर आये और रावण-पुत्र मेघनाद पर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां युद्धं समभवत्सदृशं देवरक्षसाम् ।

महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥

अब पुनः देवताओं और राक्षसों की एवं जयन्त और मेघनाद की बराबरी की लड़ाई होने लगी ॥ ६ ॥

ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणिः ।

सारथेः पातयामास शरान्कनकभूषणान् ॥ १० ॥

इतने में मेघनाद ने मातलिपुत्र गोमुख (जो जयन्त का रथ हाँक रहा था) के बहुत से सुवर्णभूषित वाण मारे ॥ १० ॥

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।

तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात्प्रत्यविध्यत ॥ ११ ॥

इसके जवाब में शचीसुत जयन्त ने भी कोध में भर मेघनाद के सारथि को और मेघनाद को भी वाण मार कर भली भाँति धायल किया ॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ।

रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १२ ॥

तब तो मेघनाद क्रोध में भर औले तरेरता हुआ वाणों की वर्षा कर इन्द्र के पुत्र को पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥

ततो नानाप्रहरणाज्ञितधारान्सहस्रशः ।

पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः ॥ १३ ॥

फिर मेघनाद अत्यन्त कोप कर अनेक प्रकार के पैने हज़ारों आयुध देवताओं की सेना के ऊपर चलाने लगा ॥ १३ ॥

शतघ्नीमुसलप्रासगदाखञ्जपरश्वधान् ।

महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयमास रावणिः ॥ १४ ॥

शतघ्नी, मूसल, गदा, प्रास, खड्ड, परश्वध और बड़े बड़े पर्वत-खगड़ों से वह देवसेना पर प्रहार करने लगा ॥ १४ ॥

ततः प्रव्यथिता लोकाः सञ्ज्ञे च तमस्ततः ।

तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः ॥ १५ ॥

इस प्रकार से मेघनाद शत्रुसैन्य पर प्रहार कर रहा था कि, इसी बीच में उसको माया से चारों ओर अन्यकार ढाँ गया । जिस से त्रिलोकवासी समस्त प्रजा घबड़ा उठो ॥ १५ ॥

ततस्तदैवतबलं समन्तात्तं शचोसुतम् ।

बहुप्रकारमस्थमभवच्छरणीडितम् ॥ १६ ॥

जयन्त को धेर कर जो देवसेना आयो थी, वह मेघनाद के बाणों से पीड़ित हो गयी और बहुप्रकार से विकल हो उठी ॥ १६ ॥

नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताथवा ।

तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात्परिधावत ॥ १७ ॥

उस समय दोनों ओर की सेना की ऐसी दशा हो गयी कि, उन्हें अपने बिराने का ज्ञान तक न रह गया कि, यह देवता पक्ष का व्यक्ति है कि राक्षस पक्ष का । युद्धभूमि में जिधर देखो उधर बड़ी दुर्ब्यवस्था उत्पन्न हो गयी । सब सैनिक घबड़ाये हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ १७ ॥

देवा देवान्निजघ्नुस्ते राक्षसान् राक्षसास्तथा ।

संमूढास्तमसाच्छब्दा व्यद्रवन्नपरे तथा ॥ १८ ॥

यहाँ तक कि, देवता देवता को, राक्षस राक्षस ही को मारने लगे । वीर लोग अन्धकार से घबड़ा कर और अत्यन्त घबड़ा कर भागने लगे ॥ १८ ॥

**एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।**

**दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्ण शचीपुत्रोऽपवाहितः ॥ १९ ॥**

यह दशा देख, पराक्रमी वीर पुलोमा नामक दैत्य, शची के पुत्र जयन्त को ले कर भाग गया ॥ १९ ॥

**संगृह्ण तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा ।**

**आर्यकः स हि तस्यासीत्पुलोमा येन सा शची ॥२०॥**

वह पुलोमा शची का पिता था । अतः वह जयन्त का नाना अपने धेवते को ले समुद्र में घुस गया ॥ २० ॥

**ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः ।**

**अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः सम्पदुद्गुः ॥ २१ ॥**

तब समरभूषि में जयन्त को न देख और उसे नष्ट हुआ जान, देवता बड़े दुःखी और व्यथित हो, वहाँ से भाग खड़े हुए ॥ २१ ॥

**रावणिस्त्वय संकुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः ।**

**अभ्यधावत देवांस्तान्मुमोच च महास्वनम् ॥२२॥**

फिर मेघनाद अपनी सेना को साथ लिये हुए क्रोध में भर सिंहनाद करता हुआ देवताओं को खदेढ़ने लगा ॥ २२ ॥

**दृष्टा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च विद्रुतम् ।**

**मातर्लिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ॥ २३ ॥**

१ प्रणाशनं—अदर्शनं । ( गो० )

इन्द्र ने अपने पुत्र को वहाँ न देख तथा देवताओं को युद्ध छोड़ कर भागते देख, मातलि से कहा—मेरा रथ लाश्चो ॥ २३ ॥

स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः ।

उपस्थितो मातलिना वाह्नमानो महाजवः ॥ २४ ॥

इन्द्र के दिव्य, विशाल (देखने में) महाभयङ्कर और तेज़ चलने वाले रथ को तैयार कर शीघ्र ले आया ॥ २४ ॥

ततो मेघा रथे तस्मिस्तडित्त्वन्तो महाबलाः ।

अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिःख्नाः ॥ २५ ॥

उस रथ में विजली सहित बड़े बलवान मेघ लगे हुए थे और उसके अग्रभाग में वायु से चालित विजली बड़े ज़ोर से कड़-कड़ाती जाती थी ॥ २५ ॥

नानावाद्यान्यवाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ।

ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥ २६ ॥

जिस समय इन्द्र, पुरो से निकले; उस समय गन्धर्व लोग तरह तरह के बाजे बजाते और अप्सराएँ रथ के आगे नाचती जाती थीं ॥ २६ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरशिवभ्यां समरुद्गणैः ।

वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥ २७ ॥

रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुदगण विविध प्रकार के आगुधों को लिये हुए, इन्द्र के रथ को धेर कर चले जाते थे ॥ २७ ॥

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषः पवनो ववौ ।

भास्करो निष्प्रभश्चैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २८ ॥

इन्द्र की रणयात्रा के समय रुखों हवा चलने लगी, सूर्य प्रभाहीन हो गये और आकाश से महाउद्धकापात हुआ ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशग्रीवः प्रतापवान् ।

आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥

इस बीच में रावण भी विश्वकर्मा के बनाये दिव्य रथ पर सवार हुआ ॥ २६ ॥

पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः ।

येषां निःश्वासवातेन प्रदीपमिव संयुगे ॥ ३० ॥

उस रथ में ऐसे बड़े भारी भारी सौंप लिपटे हुए थे, जिनको देखने से देखने वाले के (मारे भय के) रोंगटें खड़े हो जाते थे। उन महाविषधर सर्पों की फुफकारों से समरभूमि में उजियाला हो जाता था ॥ ३० ॥

दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिवारितः ।

समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ॥ ३१ ॥

दैत्य और राक्षस उस रथ को घेरे हुए थे। रावण का वह दिव्य रथ युद्धभूमि में इन्द्र के रथ के सामने जा डटा ॥ ३१ ॥

पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ।

सोऽपि युद्धाद्विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥ ३२ ॥

रावण अपने पुत्र मेघनाद को इन्द्र के साथ लड़ने की मनाई कर, स्वयं लड़ने लगा। तब मेघनाद भी रणक्षेत्र छोड़ अलग जा चैठा ॥ ३२ ॥

ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ।

शस्त्राणि वर्षतां तेषां मेघानामिव संयुगे ॥ ३३ ॥

अब पुनः देवताओं और राक्षसों का विकट युद्ध आरम्भ हुआ । दोनों ही ओर से मेघों से जलवृष्टि की तरह शस्त्रों को वर्षा होने लगी ॥ ३३ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।

नाज्ञायत तदा राजन्युद्धं केनाभ्यपद्यत ॥ ३४ ॥

हे राजन ! दुष्ट कुम्भकर्ण भी बहुत से शस्त्र लिये हुए था, पर उसको यह ज्ञान न था, कि मैं किससे लड़ूँ अथवा उसे यह तक मालूम न हुआ कि विपक्षी कौन है ॥ ३४ ॥

दन्तैः पादैर्भुजैर्हस्तैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।

येन तेनैव संक्रुद्धस्ताडयामास देवताः ॥ ३५ ॥

अतः उसके आगे देवता पड़ जाता उसे वह दाँतों से, लातों से, मूँकों से, शाक्कयों से तोमरों से और मुद्गरों से अथवा उस समय उसके हाथ जो वस्तु (रणभूमि में) आ जाती, उसीसे क्रोध में भर, मारने लगता था ॥ ३५ ॥

स तु रुद्रैर्महाघोरैः सङ्गम्याथ निशाचरः ।

प्रयुद्धस्तैश्च सङ्ग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

लड़ते लड़ते वह महाभयानक रुद्रों से जा भिड़ा । रुद्रों के शस्त्रप्रहार से उसका सारा शरीर चलनी हो गया ॥ ३६ ॥

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः ।

रणे विद्रान्तिं सर्वं नानाप्रहरणैस्तदा ॥ ३७ ॥

उधर राज्ञसी सेना की मरुदगणों के साथ निकट लड़ाई हो रही थी। मरुदगणों ने विविध प्रकार के अव्य शब्दों से सारी राज्ञसी सेना को भगा दिया ॥ ३७ ॥

केचिद्दिनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ।  
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥ ३८ ॥

कितने ही राज्ञस तो मारे गये और कितने ही धायल हो रण-भूमि में पड़े तड़फ़ड़ाने लगे और कितने ही अपनी सवारियों पर मूर्छित हो गिर कर उनसे चिपट गये ॥ ३८ ॥

रथान्नागान्खरानुष्ट्रान्पन्नगांस्तुरगांस्तथा ।  
शिशुमारान्वराहांश्च पिशाचवदनानपि ॥ ३९ ॥  
तान्समालिंग्य बाहुभ्यां विष्टव्याः केचिदुत्थिताः ।  
देवैस्तु शख्संभिन्ना मस्त्रिरे च निशाचराः ॥ ४० ॥

कितने ही राज्ञस रथों, हाथियों, गधों और बहुत से ऊँटों, साँपों, घोड़ों, सुंसों, सूधरों और पिशाचमुख घोड़ों को अपनी भुजाओं से लिपटाये हुए अधमरे से हो रहे थे और कितने ही देवताओं के शख्सों के प्रहार से मर चुके थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

चित्रकर्म<sup>१</sup> इवाभाति सर्वेषां रणसंप्लवः ।  
निहतानां प्रहुसानां राक्षसानां महीतले ॥ ४१ ॥

उस समय रणभूमि में मर कर अथवा अधमरे हो कर पड़े हुए राज्ञसों से रणभूमि का अद्भुत दृश्य देख पड़ता था ॥ ४१ ॥

<sup>१</sup> चित्रकर्म वाश्वर्यकरभाभातीत्यर्थः । ( गो० )

शोणितोदकनिष्पन्दा काकगृधसमाकुला ।

प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥ ४२ ॥

हत आहत सैनिकों के रक्त की नदी बहने लगी थी । वहाँ गीध और कौश्रों के भुंड के भुंड इकट्ठे हो गये थे । उसमें शस्त्र रूपी मगर ( घडियाल ) देख पड़ते थे ॥ ४२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।

निरीक्ष्य तु बलं सर्वं दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४३ ॥

अत्यन्त प्रतापवान् रावण देवताओं द्वारा अपनी समस्त राजसी सेना का नाश देख, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ ४३ ॥

स तं प्रति विगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।

त्रिदशान्समरे निधनशक्रमेवाभ्यवर्तत ॥ ४४ ॥

वह देवसेना रूपो उमड़ते हुए सागर में तुरन्त धुस पड़ा और देवताओं को मारता मारता इन्द्र के सामने जा पहुँचा ॥ ४४ ॥

ततः शक्रो महज्ञापं विस्फार्य सुमहास्यनम् ।

यस्य विस्फार निर्धोषैः स्तनन्ति स्म दिशो दश ॥ ४५ ॥

रावण को सामने देख, इन्द्र ने अपना विशाल धनुष ढंकारा, जिसके ढंकार का घोरशब्द दसों दिशाओं में प्रतिव्यन्ति हुआ ॥ ४५ ॥

तद्विकृष्य महज्ञापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।

पातयामास स शरान्पावकादित्यवर्चसः ॥ ४६ ॥

इन्द्र ने अपने उस विशाल धनुष को तान कर, अग्नि और सूर्य के समान चमचमाते बाण रावण के मस्तक पर मारे ॥ ४६ ॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचरः ।  
शक्रं कार्षुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४७ ॥

उसी तरह महावीर रावण ने भी धनुष पर बाण रख, इन्द्र के  
ऊपर बाणों की वर्षा की ॥ ४७ ॥

प्रयुध्यतेरथ तयोर्बाणवर्षैः सपन्ततः ।  
नाज्ञायत तदा किञ्चित्सर्वा हि तमसा वृतम् ॥ ४८ ॥

इति अष्टविंशः सर्गः ॥

जब दोनों रथी इस प्रकार निरन्तर युद्ध करते हुए बाणों की वर्षा  
करने लगे, तब चारों ओर अन्धकार ढां गया । अतः उस समय  
किसी को कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता था ॥ ४८ ॥

उत्तरकाण्ड का अट्टाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

### एकोनत्रिंशः सर्गः

—००—

ततस्तमसि सञ्जाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।  
आयुद्धयन्त वलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥ १ ॥

उस समय देवता और राक्षस अपने अपने बल से मतवाले हो,  
एक दूसरे को पीड़ित करते हुए, तुम्हें युद्ध कर रहे थे ॥ १ ॥

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ।  
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥ २ ॥

उस अन्धकार में इन्द्र, रावण और मेघनाद—ये तीन ही सावधान रह सके ॥ २ ॥

स तु दृष्टा बलं सर्वं रावणो निहतं क्षणात् ।  
क्रोधमभ्यगमतीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥ ३ ॥

एक ज्ञान भर में अपनो समस्त सेना का नाश देख, रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और गरजा ॥ ३ ॥

क्रोधात्सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ।  
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ४ ॥

दुर्धर्ष रावण ने रथ पर बैठे हुए सूत से क्रोध में भर कहा—मेरा रथ देवसेना के इस द्वार से उस द्वार तक ले चलो ॥ ४ ॥

अद्यैव त्रिदशान्सर्वान्विक्रमैः समरे स्वयम् ।  
नानाशत्रुमहासारैर्नयामि यमसादनम् ॥ ५ ॥

मैं अभी अपने पराक्रम से अनेक शत्रुओं की वृष्टि कर देवताओं को यमपुर का पाहुन बनाता हूँ ॥ ५ ॥

अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् ।  
त्रिदशान्विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यथेष्ठोपरि ॥६॥

मैं स्वयं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यम को मार, सब के ऊपर मालिक बन कर, रहूँगा ॥ ६ ॥

विषादेनैव कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् ।  
द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम् ॥७॥

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तमहे वयम् ।

नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ॥ ८ ॥

तुम दुःखी न हो कर शीघ्र मेरा रथ हाँका । मुझे उस छोर पर पहुँचाओ । मैंने तुमसे दो बार कहा कि, इस समय जहाँ हम लोग हैं, यह नन्दनवन है । तुम उदयाचल तक मेरा रथ ले चलो ॥ ७ ॥ ८ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुरगान्स मनोजवान् ।

आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥ ९ ॥

रावण के यह वचन सुन, सूत ने शत्रुओं के बीच में हो कर ही मन के वेग के समान चलने वाले घोड़ों को हाँका ॥ ६ ॥

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ।

रथस्थः समरस्थस्तान्देवान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १० ॥

तब समरभूमि में स्थित देवराज इन्द्र ने रावण के इस निश्चय को जान कर, रथ में बैठे हुए देवताओं से कहा ॥ १० ॥

सुराः शृणुतमद्वाक्यं यत्तावन्मम रोचते ।

जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥ ११ ॥

हे देवताओं ! देखो, इस समय मुझे जो ठीक जान पड़ रहा है, वह मैं कहता हूँ । वह यह है कि, रावण को जीवित ही पकड़ लो ॥ ११ ॥

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनोजसा ।

गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥ १२ ॥

क्योंकि एक तो अधिक सेना रहने से यह वैसे ही अधिक बल-वान है, दूसरे यह बड़े वेगवान रथ पर सवार ही हवा की तरह

सेना के बीच से ऐसे जा रहा है, जैसे पूर्णिमासी का महातरङ्ग धारी समुद्र उमड़ता है ॥ १२ ॥

नद्येष हन्तुं शक्योऽय वरदानात्सुनिर्भयः ।

तद्ग्रहीष्यामहे रक्षा यत्ता भवत संयुगे ॥ १३ ॥

फिर वरदान के कारण यह निर्भय है अर्थात् मारा लो जा ही नहीं सकता । अतः शीघ्र तैयार हो जाओ जिससे हम इसे पकड़ लें ॥ १३ ॥

यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया ।

एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १४ ॥

जैसे बलि के बंध जाने पर मैंने त्रिभुवन का राज्य भोगा है, वैसे ही त्रिभुवन की रक्षा के लिये इस पापी रावण को मैं बंदी बनाना चाहता हूँ ॥ १४ ॥

ततोन्यं देशमास्थाय शकः सन्त्यज्य रावणम् ।

अयुध्यत महाराज राक्षसांख्यासयन् रणे ॥ १५ ॥

हे राम ! यह कह देवराज इन्द्र, रावण का सामना लोड़, दूसरी जगह जा कर, राक्षसों को ब्रह्म करते हुए, उनसे लड़ने लौंगे ॥ १५ ॥

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिर्वत्कः ।

दक्षिणेन तु पाश्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥ १६ ॥

युद्ध में युख न मोड़ने वाला रावण बेरोकटोक उत्तर की ओर से देवसेना में घुस गया और दक्षिण की ओर से इन्द्र राक्षसी सेना में घुसे ॥ १६ ॥

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।

देवतानां बलं सर्वं शरवर्षेरवाकिरत् ॥ १७ ॥

रावण सौ योजन तक घुसता ही चला गया । उसने मारे बाणों के समस्त देवसेना को विदारित कर डाला ॥ १७ ॥

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रनष्टं तु स्वकं बलम् ।

न्यवर्तयदसम्भ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥ १८ ॥

इन्द्र अपनी सेना का नाश देख, सावधान हुए और रावण को धेर कर, उसे उधर से लौटाते हुए, स्वयं भी उसके साथ लौटे ॥ १८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादा मुक्तो दानवराक्षसैः ।

हा हताः स्य इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥ १९ ॥

इतने में दानवों और राक्षसों ने बड़ा हाहाकार किया । वे सब यह कह कर कि, हा हम सब मारे गये, उच्च स्वर से चिल्डाने लगे । क्योंकि उन लोगों को निश्चय हो गया कि इन्द्र ने रावण को पकड़ लिया ॥ १९ ॥

ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्छितः ।

तत्सैन्यमति संकुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥ २० ॥

तब तो बड़े क्रोध में भर, मेघनाद रथ पर सवार हो, उस दारुण देवसेना में घुसा ॥ २० ॥

तां प्रविष्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा ।

प्रविवेश सुसंरथस्तत्सैन्यं समभिद्रवत् ॥ २१ ॥

पूर्वकाल में महादेव जी से वरदान में ज्ञा माया मेघनाद ने पाई थी, उसी माया को प्रकट कर देवसेना में घुस वह देवताओं को खदेढ़ने लगा ॥ २१ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ।

महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिषेः ॥२२॥

फिर वह समस्त देवताओं का पीछा करना छोड़, अकेले इन्द्र पर झपटा । परन्तु इन्द्र ने शत्रुपुत्र मेघनाद को देख पाया ॥ २२ ॥

विमुक्तकवचस्तत्र वध्यमानोऽपि रावणिः ।

त्रिदशैः सुमहावीर्यैर्न चकार च किञ्चन ॥ २३ ॥

कवच रहित महाबली मेघनाद देवों के द्वारा प्रहार किये जाने पर भी, ज़रा सा भी विचलित न हुआ ॥ २३ ॥

स मातलि समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।

महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥ २४ ॥

प्रथम तो उसने उत्तम बाण मातलि के मारे, फिर बाणों की वर्षा कर उसने इन्द्र को पीड़ित किया ॥ २४ ॥

ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विसर्ज च सारथिम् ।

ऐरावतं समारुद्ध्य मृगयामास रावणिम् ॥ २५ ॥

तब इन्द्र, रथ और सारथि को छोड़, ऐरावत पर सवार हो रावण पुत्र मेघनाद को ढङ्गे लगे ॥ २५ ॥

स तत्र मायावलवानहृष्योऽथान्तरिक्षगः ।

इन्द्रं मायापरिक्षिसं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ॥ २६ ॥

किन्तु वह महाबली मेघनाद ले अन्तरिक्ष में माया द्वारा अदूश्य हो रहा था । वह इन्द्र पर बाणों की शृंखि कर तथा इन्द्र को अपनी माया में फँसा, उन पर दौड़ा ॥ २६ ॥

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जङ्गेऽथ रावणिः ।  
तदैनं मायया बद्धा स्वसैन्यमभितोनयत् ॥ २७ ॥

जब उसने जाना कि, इन्द्र थक गये, तब माया से इन्द्र को बांध, वह उन्हें अपनी सेना में ले गया ॥ २७ ॥

तं तु द्वष्टा बलात्तेन नीयमानं पद्मारणात् ।  
महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्य चिन्तयन् ॥ २८ ॥

जब महारण से बलपूर्वक इन्द्र को बांध कर, मेघनाद ले गया तब यह देख, देवता चिन्तित हुए ॥ २८ ॥

दृश्यते न स मायावी शक्रजित्समितिञ्जयः ।  
विद्यावानपि येनेन्द्रो माययाऽपहृतो बलात् ॥ २९ ॥

विशेषता यह थी कि, रणविजयी पर्वं मायावी मेघनाद इन्द्र को बांध कर तो ले गया, पर व्ययं अदृश्य ही रहा, उसे कोई भी न देख सका । यद्यपि इन्द्र स्वयं अनेक प्रकार की माया जानते थे, तथापि इन्द्रजीत बरजोरी उनको पकड़ कर ले गया ॥ २९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ।  
रावणं विमुखी कृत्य शरवर्षेरवाकिरन् ॥ ३० ॥

इतने में समस्त देवताओं ने क्रोध में भर, बाणों की वृष्टि कर, रावण को चिकन कर, उसे रण से विमुख कर दिया ॥ ३० ॥

रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वस्तुस्तदा ।  
न शशाक संग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥ ३१ ॥

आदित्य और वसुओं के बीच में फँस, रावण ऐसा ध्वस्त हुआ कि, उसमें डस समय और अधिक लड़ने की शक्ति न रह गयी ॥ ३१ ॥

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।

रावणः पितरं युद्धे दर्शनस्थेऽब्रवीदिदम् ॥ ३२ ॥

रावण मारे प्रहारों के जर्जरित शरीर हो अत्यन्त थक गया । तब प्रेषनाद विता की इस दशा को देख और स्वयं अदृश्य रह कर, यह चोला ॥ ३२ ॥

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ।

जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥ ३३ ॥

हे तात ! हम लोग जीत गये । आप यह जान कर क्लेशित न हों और सावधान हो जाय । अब लड़ाई समाप्त हो गयी । चलिये घर को चलें ॥ ३३ ॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।

स गृहीतो देववलाद्यगदर्पाः सुराः कृताः ॥ ३४ ॥

जो देवताओं की सेना के ही नहीं, वहिक जो त्रिलोकी के स्वामी हैं, उन इन्द्र को मैंने पकड़ लिया है । अब देवताओं का अभिमान चूर चूर हो गया ॥ ३४ ॥

यथेष्टं भुक्ष्व लोकांस्त्रीनिगृह्यारातिमोजसा ।

वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥ ३५ ॥

अब आप तीनों लोकों का यथेष्ट भोग कीजिये और अपने शत्रु को बन्दीगृह में बंद कर दीजिये । अब आपका युद्ध कर श्रम उठाना व्यर्थ है ॥ ३५ ॥

ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।

तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं शक्रहीनाः सुरा गताः ॥ ३६ ॥

तब देवताओं ने युद्ध बंद कर दिया । मेघनाद के ये वचन सुन और इन्द्र को गँवा, देवता वहां से बल दिये ॥ ३६ ॥

अथ स रणविगतमुत्तमौजा-

स्त्रिदशरिपुः प्रथितो निशाचरेन्द्रः ।

स्वसुतवचनमादतः प्रियं

तत्समनुनिशम्य जगादचैव सूनुम् ॥ ३७ ॥

अत्यन्त बलवान् इन्द्रशत्रु एवं प्रसिद्ध राक्षसराज रावण, अपने पुत्र के ऐसे प्रियवचन सुन और रण से लौट, आदर सहित पुत्र से बोला ॥ ३७ ॥

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं

ममकुलवंशविवर्धनः प्रभो ।

यदयमतुलबलस्त्वयाद्य वै

त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्र निर्जिताः ॥ ३८ ॥

हे बेटा ! अति बलवान् पुरुष की तरह पराक्रम प्रकट कर, तूने मेरे कुल और वंश का गैरव बढ़ाया । तूने आज इन्द्र को और देवताओं को भी जीत लिया ॥ ३८ ॥

नय रथमधिरोप्य वासवं

नगरमितो ब्रज सेनया वृतस्त्वम् ।

अहमपि तवं पृष्ठतो द्रुतं

सहसचिवैरनुयामि हृष्टवत् ॥ ३९ ॥

अब तु इन्द्र को रथ पर चढ़ा और अपनी सेना को साथ ले, लड़ा को ले जा। मैं भी तेरे पीछे पीछे अपने मंत्रियों को साथ ले हर्षित हो आता हूँ ॥ ३६ ॥

अथ स बलवृतः सवाहन-

स्त्रिदशपति परिगृह्य रावणिः ।  
स्वभवनमधिगम्य वीर्यवान्

कुतस्मरान्विसर्ज राक्षसान् ॥ ४० ॥

इनि एकोनत्रिशः सर्गः ॥

तदनन्तर बलवान मेघनाद स्वर्गाधीश इन्द्र को पकड़ कर, सेना और वाहनों सहित अपने घर को छला गया और वहाँ जा डसने सैनिकों को अपने अपने घरों को लौट जाने की आज्ञा दी ॥ ४० ॥

उत्तरकाण्ड का उनतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

त्रिशः सर्गः

—०—

जिते महेन्द्रेऽतिवले रावणस्य सुतेन वै ।

प्रजापति पुरस्कृत्य ययुर्लङ्घां सुरास्तदा ॥ १ ॥

इस प्रकार जब इन्द्र पकड़ कर लड़ा में ले जाये गये, तब ब्रह्मा जी को आगे कर समस्त देवता लड़ा में पहुँचे ॥ १ ॥

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातुभिरावृतम् ।

अब्रवीद्गग्ने तिष्ठन्सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥

उस समय पुत्र और भाइयों सहित बैठे हुए रावण से, आकाश-  
स्थित ब्रह्मा जी ने, ग्रान्तिपूर्वक कहा ॥ २ ॥

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ।

अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुलयोऽधिकोपिता ॥ ३ ॥

हे वत्स रावण ! मैं तेरे लड़के की बहादुरी से सन्तुष्ट हूँ । वाह !  
उसकी बहादुरी की बड़ाई ज्ञा की जाय । तुम्हारे समान ; नहीं  
नहीं, वह तुम से भी चढ़ बढ़ कर पराक्रमी है ॥ ३ ॥

जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।

कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि समुत्स्य ते ॥ ४ ॥

तुमने अपने पराक्रम से तीनों लोक जीते और अपनी प्रतिज्ञा  
भी पूरी की । अतः मैं तुम दोनों अर्थात् पिता पुत्र के ऊपर प्रसन्न  
हूँ ॥ ४ ॥

अयं च पुत्रोऽतिवलस्तव रावण वीर्यवान् ।

जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥

हे रावण ! यह तेरा अतिवली पुत्र संसार में इन्द्रजित नाम  
से पुकारा जायगा ॥ ५ ॥

बलवान्दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः ।

यं समाश्रित्य ते राजन्स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥ ६ ॥

हे राजन् ! तुमने जिसकी सहायता से देवताओं को अपने वश  
में कर लिया है, सो तुम्हारा यह निशाचर—पुत्र, बलवान् और  
दुर्जय होगा ॥ ६ ॥

तन्मुच्यतां महावाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।

किं चास्यमोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ ७ ॥

अब हे महावलवान् ! तुम इन्द्र को छोड़ दो और इनके बदले तुम देवताओं से क्या चाहते हो सो भी बतला दो ॥ ७ ॥

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः ।

अमरत्वमहं देव वृणेयद्येष मुच्यते ॥ ८ ॥

इस पर समरविजयी महावली इन्द्रजित बोला—हे देव ! यदि आप इन्द्र को कुड़वाना चाहते हैं, तो मुझे अमरत्व प्रदान कीजिये ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः ।

नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित्प्राणिनो भुवि ॥ ९ ॥

चतुष्पदः पक्षिणश्च भूतानां वा महैजसाम् ।

श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्प्रभुणाव्ययम् ॥ १० ॥

तब महातेजस्वी ब्रह्मा जी ने मेघनाद से कहा— हे मेघनाद ! पृथिवी पर कोई भी प्राणी क्या चैपाये क्या पक्षो, अथवा अन्य बड़े बड़े पराक्रमी प्राणी— कोई भी अमर नहीं है । अविनाशी भगवान् ब्रह्मा जी के वचन सुन इन्द्रजित् ॥ ९ ॥ १० ॥

अथाब्रवीत्स तत्रस्थं मेघनादो महावलः ।

श्रूतां वा भवेत्सद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ ११ ॥

जो महावलवान था, ब्रह्मा जी से बोला कि, सुनिये ! इन्द्र को छोड़ने के बदले आप मुझे वे सिद्धियाँ दें जो मैं माँगूँ ॥ ११ ॥

यमेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम् ।  
 संग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्गिणः ॥ १२ ॥  
 अश्वयुक्तो रथो मद्यमुत्तिष्ठेतु विभावसेः ।  
 तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः ॥ १३ ॥  
 तस्मिन्यद्य समाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ ।  
 युध्येयं देव संग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥ १४ ॥  
 सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् ।  
 विक्रमेण मया त्वेतद्मरत्वं प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥

जब मैं शत्रु को जीतने के लिये निकलूँ और उस समय अग्नि-  
 देव का पूजन कर हननीय द्रव्य की आहुति दूँ, तब उस अग्नि-  
 में से मेरे लिये घोड़ों सहित रथ निकले । उस रथ पर जब तक मैं  
 सवार रहूँ, तब तक मैं अमर रहूँ । यही मेरा निश्चित वर है । हे  
 देव ! यदि मैं उस जप होम को पूरा किये बिना युद्ध करूँ, तो मैं  
 मारा जाऊँ । हे देव ! अत्य यद लोग तो तर द्वारा अमरता चाहते  
 हैं, किन्तु मैं तो अपने पराक्रम के द्वारा अमरत्व चाहता हूँ ॥ १२ ॥  
 १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

एवमस्त्वति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः ।  
 मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥ १६ ॥

तब लोकपितामह ब्रह्मा जी ने कहा—हे इन्द्रजित ! ऐसा ही  
 हो । तब मेघनाद ने इन्द्र को छोड़ दिया । तब सब देवता स्वर्ग  
 को छले गये ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः ।

इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः ॥ १७ ॥

हे राम ! इन्द्र तो कूट गये, किन्तु वे उदास थे एवं उनमें जो देवत्य की कान्ति थी वह अब नहीं रह गयी थी । अतः वे चिन्तामग्न हो कुक्ष सोचने लगे ॥ १७ ॥

तं तु दृष्टा तथाभूतं प्राह देवः पितामहः ।

शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ॥ १८ ॥

इन्द्र को चिन्तित देख ब्रह्मा जो बोले—हे इन्द्र ! चिन्ता क्या करते हो । अपने कुकृत्य का स्मरण करो ॥ १८ ॥

अमरेन्द्र मया बुद्धया प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो ।

एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! मैंने पहिले कुक्ष सृष्टि सङ्कल्प से रखी थीं । उसका एक ही सा रूप रंग और एक ही सी बोली थी ॥ १९ ॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।

ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ॥ २० ॥

उनमें क्या रूप में तथा क्या अन्य लक्षणों में कुक्ष भी अन्तर न था । तब मैंने मन को एकाग्र कर विचारा ॥ २० ॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।

यद्यत्प्रजानां प्रत्यंगं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर सोच विचार कर मैंने उनमें कुक्ष विशेषता दिखलाने के लिये एक स्वतंत्र स्त्री बनायी । उस स्त्री के बनाने में मैंने सब प्रजा के उत्तम उत्तम अंगों का सारभाग ग्रहण किया ॥ २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।

हलं नापेववैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ २२ ॥

मैंने अत्यन्त रूपवती और गुणवती अहल्या नाम की स्त्री बनाई। हल शब्द का अर्थ है—कुरुपता। उस हल अर्थात् कुरुपता से जो उत्पन्न हो उसको हल्य कहते हैं ॥ २२ ॥

यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।

अहल्येत्वेव च मया तस्या नाम प्रीकीर्तितम् ॥ २३ ॥

जिसमें हल्य अर्थात् कुरुपता नहीं उसे अहल्या कहते हैं। (अर्थात् जो सर्वाङ्ग सुन्दरी हो उसका नाम अहल्या है।) इसीसे मैंने उसका नाम अहल्या रखा ॥ २३ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्या सुरर्षभ ।

भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ २४ ॥

हे देवश्रेष्ठ ! उस नारी को बचाने के बाद मेरे मन में इस बात की चिन्ता हुई कि, यह किसकी स्त्री होगी ? ॥ २४ ॥

त्वं तु शक्त तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।

स्थानाधिकतया पत्री ममैषेति पुरन्दर ॥ २५ ॥

किन्तु तुमने अपने मन में सोचा कि, मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ, अतः यह मेरी ही स्त्री होगी ॥ २५ ॥

सा मया न्यास भूता तु गौतमस्य महात्मनः ।

न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ २६ ॥

किन्तु मैंने धरोहर की तरह उसे गौतम मुनि के अधीन कर दिया। वह वही मुनि के पास बहुत दिनों तक रही। तदनन्तर मुनि ने उसे मुझे लौटा दिया ॥ २६ ॥

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः ।

ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥२७॥

परन्तु जब मैंने उस महामुनि की (मानसिक) स्थिरता और तपःसिद्धि देखी; तब मैंने अहल्या पुनः उन्होंके अधीन कर दी और उनसे कह दिया कि, उसे वे अपनी भार्या बना लें ॥ २७ ॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।

आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥ २८ ॥

तब गौतम जी उसके साथ सुखपूर्वक काल बिताने लगे। इस प्रकार अहल्या को गौतम की स्त्री बना देने पर, देवता उसकी प्राप्ति की ओर से आश ढोड़ बैठे ॥ २८ ॥

त्वं कुद्धस्त्वह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः ।

दृष्टवांश तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ २९ ॥

किन्तु तुम काम के बगवतों हो, कुद्ध हुए और ऋषि के आश्रम में जा, तुमने अग्निशिखा के तुल्य उस स्त्री को देखा ॥ २९ ॥

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ।

दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥ ३० ॥

तुमने कामदेव से उन्मत्त हो और क्रोध में भर, उस स्त्री का सतीत्व नष्ट किया। उस समय गौतम ने तुमको अपने आश्रम में देख लिया ॥ ३० ॥

ततः क्रुद्धेन तेनासि शसः परम तेजसा ।

गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥ ३१ ॥

यस्मान्मे धर्षिता पक्वी त्वया वासव निर्भयात् ।  
तस्मात्त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥ ३२ ॥

तब महामुनि गौतम जी ने कुद्र हो तुमको यह शाप दिया कि, हे देवराज ! तुमने अपना रूप बदल कर, मेरी स्त्री का सतीत्व नष्ट किया और कुद्र भी न डरे ; अतः तुम्हारी विपरीत दशा हो जायगी और तुम युद्ध में शत्रु द्वारा पकड़े जाओगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।  
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

हे दुर्बुद्धे ! तुमने यह एक अनुचित प्रथा जारी की । सो इस दृष्टिप्रथा की छूत मनुष्यों को भी लग जायगी । इसमें कुद्र भी सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥

तत्रार्थं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्थं निपतिष्यति ।  
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥

अतः जो पुरुष यह जारकर्म करेगा, उसके आधे पाप के तुम भागी होगे और आधा पाप उस जारकर्म करने वाले को लगेगा । ( इतना ही नहीं ) देवराज्य पर सदा तुम रहने भी न पाओगे ॥ ३४ ॥

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्ध्रुवः स न भविष्यति ।

एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥ ३५ ॥

यह शाप केवल तुम्हारे लिये ही ( व्यक्तिगत ) नहीं है, किन्तु जो कोई इन्द्रपद पर बैठेगा, वही अस्थिर होगा । मेरा शाप इन्द्रमात्र के लिये है । गौतम मुनि ने इस प्रकार तुमसे कहा था ॥ ३५ ॥

तां तु भायां सुनिर्भृत्य सेऽत्र वीतमुमहतपाः ।

दुर्विनीते विनिधनं स मात्रमपमोपतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर च महातपस्वो गैतम जा अपनो खो के विकारते  
हुए बोले—इ दुर्विनीते ! पेरे आश्रम के निकट ही तू रूपहीन हो  
कर रहेगो ॥ ३६ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता ।

तस्माद्गूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३७ ॥

ऐसा रूप और यौवन पा कर भी तेरा चित्त इतना चञ्चल है  
और तूने असन्मार्ग का अचलंबन किंग, अतः अब से तू ही एक  
ऐसी रूपवतो न रहेगो ( अर्यात् तेरा जैसो अन्य लियाँ भी रूपवतो  
हुआ करेंगी । ) ॥ ३७ ॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यति न संशयः ।

यत्तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोयमुपस्थितः ॥ ३८ ॥

केवल तेरे रूपवतो होने के कारण ही यह विम्बाट उपस्थित  
हुआ है, अतः अब से तुझ जैसी और लियाँ भी निस्सन्देह रूप-  
वती हुआ करेंगी ॥ ३८ ॥

तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विता ।

सा तं प्रसादयामास महर्षिर्गैतिमं तदा ॥ ३९ ॥

तभी से प्रजा अधिक रूपवती होने लगी । यह शाय सुन  
अहल्या ने मुनि को प्रसन्न करने के लिये कहा ॥ ३९ ॥

अज्ञानाद्विष्टा विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा ।

न कामकाराद्विष्टे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥

हे विप्र ! इन्द्र ने तुम्हारा रूप धर कर, मुझको छला है । मैं जान न पायी कि, यह इन्द्र है । मैंने जान बूझ कर यह पाप नहीं किया । सो आप मुझे ज़मा करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।

उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४१ ॥

रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।

ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मातुषविग्रहः ॥ ४२ ॥

अहल्या के ऐसे वचन सुन गौतम जी ने कहा—ब्राह्मणों के हितार्थ महाबलवान् भगवान् विष्णु मनुष्यदेह धारण कर इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न होंगे । वे महातेजस्वी महारथी इस संसार में राम के नाम से प्रसिद्ध होंगे तथा वन में आवेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ।

स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यदुष्कृतं कृतम् ॥ ४३ ॥

हे भद्रे ! उनका दर्शन कर के तेरे पाप दूर होंगे । वे श्रीराम-चन्द्र जी ही तेरे इस किये हुए पाप को दूर कर सकेंगे ॥ ४३ ॥

तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ।

वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥ ४४ ॥

हे श्रेष्ठवर्णवाली ! उनका आतिथ्य कर के जब तू मेरे निकट आवेगी, तब तू पुनः मेरे साथ रहने योग्य दी सकेगी ॥ ४४ ॥

एवमुक्त्वा स विप्रिष्ठिराजगाम स्वमाश्रमम् ।

तपश्चचार सुमहत्सा पवी ब्रह्मवादिनः ॥ ४५ ॥

यह कह कर, वे ब्रह्मविष्णु फिर अपने आश्रम को छले गये । तब से इन ब्रह्मवादी की खीं श्रहल्या ने भी बड़ा तप करना आरम्भ किया ॥ ४५ ॥

शापेत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।

तत्स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत्त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥

हे इन्द्र ! गौतम जो के शाप ही से तुम्हारी यह दशा हुई है । हे महाबाहो ! अतः तुम अपने उस कुकृत्य को याद करो ॥ ४६ ॥

तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्याता नान्येन वासव ।

शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥ ४७ ॥

हे इन्द्र ! उसी शाप के कारण शत्रु ने तुमको पकड़ा है । अब तुम सावधानता पूर्वक शीघ्र वैष्णवयज्ञ करो ॥ ४७ ॥

पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिवं ततः ।

पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ॥ ४८ ॥

उस यज्ञ के करने पर शुद्ध हो कर, तुम फिर देवलोक में जा सकोगे । हे देवराज ! युद्ध में तुम्हारा पुत्र जयन्त मारा नहीं गया है ॥ ४८ ॥

नीतः सन्निहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ।

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्टा च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥

पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासन्न देवराट् ।

एतदिन्द्रजितो नाम बलं भूत्कीर्तिं मया ॥ ५० ॥

निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ।

आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत्तदा ॥५१॥

उसे तुम्हारे ससुर पुलोमा समुद्र में ले गये हैं । यह सुन कर इन्द्र ने वैष्णवयज्ञ किया । ( उस यज्ञ के प्रभाव से ) वे परिव्रत हो, स्वर्ग में गये और पुनः राज्यासन पर विराजे । हे रघुनन्दन ! इन्द्रजित इस प्रकार का बली था । दूसरों की तो विसीत ही क्या, उसने देवराज इन्द्र तक को जीत लिया था । अगस्त्य मुनि की बातें सुन, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को आश्र्य हुआ ॥४९॥ ॥५०॥ ५१॥

अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ।

विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

अगस्त्य जी के वचन सुन, वानर तथा राक्षस और विभीषण, जो श्रीरामचन्द्र जी के निकट बैठे थे, यह बोले ॥ ५२ ॥

आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत्तदृदृष्टं पुरातनम् ।

अगस्त्यं त्वब्रवीद्रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५३ ॥

आश्र्य है ! बहुत दिनों बाद आज मुझको फिर पुरानी बातें आद हो आयीं । तब श्रीरामचन्द्र जी ने अगस्त्य जी से कहा कि, आपने जो कहा, वह सत्य है । क्योंकि मैं ये सब बातें सुन चुका हूँ ॥ ५३ ॥

एवं राम समुद्रभूतो रावणो लोककण्टकः ।

सपुत्रो येन संग्रामे जितः शक्रः सुरेश्वरः ॥ ५४ ॥

इति त्रिशूः सर्गः ॥

( अन्त में ) अगस्त्य जी बोले—हे राम ! जिस रावण ने इन्द्र को तथा उनके पुत्र जयन्त को युद्ध में हरा दिया था, उस लोक-कण्ठक रावण की उत्पत्तिकथा यही है ॥ ५४ ॥

[ नोट— लंकाकाण्ड के अन्तिम सर्ग में सुग्रीवादि वानरों और विभीषणादि राक्षसों का अपने अपने स्थानों को जाना कहा जा चुका है । किन्तु ५२वें श्लोक में पुनः उनकी उपस्थिति देख आश्वर्य होता है । ]

उत्तरकाण्ड का तोसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—;\*;—

### एकत्रिंशः सर्गः

—;◦;—

ततो रामो महातेजा विस्मयात्पुनरेव हि ।

उवाच \*प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी विस्मित हो तथा प्रणाम कर ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य जी से बोले ॥ १ ॥

भगवन् राक्षसः क्रूरो यदा प्रभृति मेदिनीम् ।

पर्यट्टिक तदा लोकाः शून्या आसन्दिजोत्तम ॥ २ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! क्रूर स्वभाव रावण जब पृथिवी पर घूमता था, तब क्या इस पृथिवी पर कोई वीर था ही नहीं ? ॥ २ ॥

राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।

धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

उस समय क्या कोई राजा या अन्य कोई राजपुरुष ऐसा न रह गया था, जो रावण को दबा सकता ? ॥ ३ ॥

\* पाठान्तरे—“ प्रश्रुतो । ”

उताहोऽहतवीर्यास्ते बभूवः पृथिवीक्षितः ।

बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता वृपाः ॥ ४ ॥

क्या उस समय राजाओं में दलबन्दी थी अथवा सब राजाओं का तेज और बल नष्ट हो गया था ? अथवा क्या वे उत्तम शख्तों के चलाने की विद्या नहीं जानते थे, जिससे वे सब रावण से हार गये ? ॥ ४ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ।

उवाच रामं प्रहसन्पितामह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन, भगवान् अगस्त्य ऋषि जो हँस कर, श्रोरामचन्द्र जी से ऐसे बोले, मानों ब्रह्मा जी शिव जी से बोलते हों ॥ ५ ॥

इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवर्षभ ।

चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! हे पृथिवीपते ! इस प्रकार राजाओं को पीड़ित करता हुआ रावण ; जब पृथिवी पर धूम रहा था ॥ ६ ॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।

सम्प्राप्तो यत्र सान्निध्यं सदासीद्वसुरेतसः ॥ ७ ॥

तब वह धूमता धूमता स्वर्गतुल्य उस माहिष्मती पुरी में पहुँचा, जहाँ सदा अग्निदेव वास करते थे ॥ ७ ॥

तुल्य आसीन् पस्तस्य प्रभावाद्वसुरेतसः ।

अर्जुनो नाम यत्रायिः शरकुण्डेशयः२ सदा ॥ ८ ॥

१ उताहो—पक्षान्तरे वर्तते । ( गा० ) २ शरकुण्डेशयः—शरास्तरण-  
वत् कुण्डं तत्रशेत् इति । ( गा० )

वहाँ का राजा अर्जुन भी अग्नि के प्रभाव से अग्नि ही के समान था । वहाँ शरकुण्ड में अग्नि सदा दहकता रहता था ॥ ८ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ हैह्याधिपतिर्बली ।

अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ रावणस्तत्र आगतः ।

रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥

हैह्याधिपति बलवान् राजा अर्जुन स्त्रियों के सहित जिस दिवस नर्मदा पर जलविहार करने गया ; उसी दिन रावण भी वहाँ पहुँचा और उसने अर्जुन के मंत्रियों से पृक्षा ॥ ६ ॥ १० ॥

कार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ।

रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेष्युर्वरेण ह ॥ ११ ॥

राजा अर्जुन कहाँ है ? शीघ्र बतलाओ । मैं रावण हूँ । मैं उसके साथ युद्ध करूँगा ॥ ११ ॥

यमागमनमप्यग्रे युष्माभिः सन्निवेद्यताम् ।

इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ॥ १२ ॥

सब से पहले तुम उसे मेरे आने की सूचना दो । राजा अर्जुन के बड़े समझदार उन मंत्रियों ने रावण के इन वचनों को सुन ॥ १२ ॥

अब्रुवन् राक्षसपतिमसान्निध्यं महीपतेः ।

श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ॥ १३ ॥

रावण से कहा कि, इस समय महाराज राजधानी में नहीं हैं । रावण पुरवासियों के मुख से यह सुन ॥ १३ ॥

अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ।  
 स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ॥ १४ ॥

अपश्यद्रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।  
 सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ॥ १५ ॥

प्रपातपतितैः शीतैः सादृहासमिवाम्बुधिः ।  
 देवदानवगन्धवैः साप्सरोभिः सकिन्नरैः ॥ १६ ॥

स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रुयम् ।  
 नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिक प्रतिमञ्जलम् ॥ १७ ॥

फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्टितम् ।  
 उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्सन्निभं गिरिम् ॥ १८ ॥

पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ।  
 चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगायिनीम् ॥ १९ ॥

उस पुरी को छोड़ हिमालय के समान विन्ध्याच्चत पर आया ।  
 वहाँ जा कर उसने वह पर्वत देखा, जो ध्याकाश को स्पर्श करता  
 हुआ सा और पृथिवी को कोड़ कर निकला हुआ सा जान पड़ता  
 था । वह हज़ारों शिखरों से शोभित था और मिंहादि अनेक जन्तु  
 उसकी कन्दराओं में रहते थे । सैकड़ों श्वेत रंग के भरने उससे  
 निकल रहे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत श्रद्धास  
 कर रहा है । देव, दानव, अप्सराओं सहित गङ्धर्व और किन्नर उस  
 पर्वत पर लियों को ले कर क्रीड़ा कर रहे थे । इससे वह बड़ा ऊँचा  
 पर्वत स्वर्ग जैसा जान पड़ता था । स्फटिक के समान स्वच्छ जल  
 से भरी हुई नदियों से वह भूषित था ; अतः वह पर्वत फणधारी

चञ्चल जिह्वा वाले शेष जी की तरह शोभायमान था । हिमालय के समान ऊँचा और कन्दराओं से युक्त, उस विभ्यपर्वत को देखता देखता रावण नर्मदा नदी पर पहुँचा । वह पवित्र नदी स्वच्छ पर्वतों पर बहती और पश्चिम समुद्र में गिरती थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

**महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ।**

**उष्णाभितसैस्तुषितैः संक्षेपित जलाशयाम् ॥ २० ॥**

मैंसे, सृमर, सिंह, शार्दूल, भालू और गजेन्द्र आदि जीव, सूर्य की गर्मी से उत्स हो, नर्मदा के जल में धुस, उसको गंदला कर रहे थे ॥ २० ॥

**चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।**

**सारसैश्च सदामत्तैः कूजद्विः सुसमावृताम् ॥ २१ ॥**

चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जलकुक्कुट और सारस पक्षी उसे बेर कर, सदा मतवाले हो शब्द किया करते थे ॥ २१ ॥

**फुलद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ।**

**विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥ २२ ॥**

मनमोहने वाली नर्मदा ने मानों सुन्दरी कामिनी की तरह कान्ति धारण कर ली थी । पुष्पित वृक्ष उसके भूषण, चक्रवाक उसके कुच, विशालतट उसके नितम्ब, और हसपंक्ति मानों उसकी करधनी थी ॥ २२ ॥

**पुष्परेण्वनुलिसाङ्गीं जलफेनामलांशुकाम् ।**

**जलावगाहसुस्पर्शां फुलोत्पलशुभेषणाम् ॥ २३ ॥**

पुष्पपराग उसका अंगराग, जलफेन उसका सफेद पट, स्नान-  
सुख उसका स्पर्शसुख और पुष्पित कमल ही मानों उसके शुभ्र  
नेत्र थे ॥ २३ ॥

पुष्पकादंवरुद्धाशु नर्मदां सरितां वराम् ।

इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥ २४ ॥

वहाँ रावण तुरन्त पुष्पक से उतर पड़ा और उत्तमा प्रियतमा  
किसी लड़ी की तरह नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी में उसने स्नान  
किया ॥ २४ ॥

स तस्याः पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते ।

उपेष्ठविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ २५ ॥

तदनन्तर रावण अपने मंत्रियों सहित उस अनेक मुनिसेवित  
नर्मदा के रम्य तट पर बैठ गया ॥ २५ ॥

प्रख्याय नर्मदां सोऽथ गङ्गेयमिति रावणः ।

नर्मदा दर्शने हर्षमाप्नवान्स दशाननः ॥ २६ ॥

रावण ने नर्मदा को गङ्गा की तरह बतला उसकी प्रशंसा की  
और उसके दर्शन कर वह हर्षित हुआ ॥ २६ ॥

उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ ।

एष रश्मसहस्रेण जगत्कृत्वेव काश्चनम् ॥ २७ ॥

तदनन्तर उसने अनायास (अथवा खेल ही खेल में) हँस कर  
मारोच, शुक और सारण नामक अपने मंत्रियों से कहा—देखो,  
अपनी सहस्रों किरणों से जगत् को सुवर्ण के वर्ण का कर ॥ २७ ॥

तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसेा मध्यमास्थितः ।

मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २८ ॥

इस समय तीक्ष्ण ताप देने वाले सूर्य श्वाकाश में विराजमान हो रहा है ; किन्तु मुझे यहाँ बैठा हुआ जान, वह चन्द्रमा की तरह ठंडी किरनों से मुझे छू रहा है ॥ २८ ॥

नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।

मद्र्यादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥ २९ ॥

मेरे डर से यह पवन नर्मदा के जल को छू कर शीतल और सुगन्धियुक होने के कारण थकावट को दूर कर रहा है और बड़ी सावधानी से चल रहा है ॥ २९ ॥

इयं वापि सरिच्छेष्टा नर्मदा शर्मवर्धिनी ।

नक्रमीनविहङ्गोर्मिः सभयेवाङ्ग्ना स्थिता ॥ ३० ॥

मगर मच्छ और पक्षियों से युक्त यह मनोहारिणी नर्मदा, तरङ्गों से व्याप्त होने पर भी, डरी हुई ललना के समान जान पड़ती है ॥ ३० ॥

तद्वन्तः क्षताः शख्नैर्त्पैरिन्द्र समैर्युधि ।

चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३१ ॥

इन्द्र के समान पराक्रमी राजाओं के शख्नों की तुम लोगों ने चेटे सही हैं और चन्दन के रस की तरह रुधिर तुम्हारे सब शरीर में लिपटा हुआ है ॥ ३१ ॥

ते युयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।

सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥ ३२ ॥

अतः जैसे सार्वभौमादि मतवाले गजेन्द्र गङ्गा में स्नान करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी इस सुखदायिनी और कल्याणकारिणी नर्मदा में स्नान कर डालो ॥ ३२ ॥

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मने विप्रमोक्षयथ ।

अहमप्यद्य पुलिने शरदिनदुसमप्रभे ॥ ३३ ॥

और इस महानदी में स्नान कर अपने पापों को धो बहाओ। मैं भी अब शारदीय ज्योत्स्ना के समान इस प्रभायुक्त रेतो में ॥ ३३ ॥

पुष्पापहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ।

रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्तशुकसारणाः ॥ ३४ ॥

समहोदरधूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे ।

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥ ३५ ॥

कपर्दी महादेवी जी को पूजा के लिये फूलों की भेंट सजाता हूँ। रावण के ऐसा कहने पर, प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर, धूम्राक्ष आदि मंत्रिवर्ग रूपी हाथियों ने नर्मदा को वैसे ही कुब्ज कर डाला ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महावलाः ॥ ३६ ॥

जैसे वामन, अञ्जन, और पद्म नामक महादिग्गज गङ्गा जी को कुब्ज कर डालते हैं। फिर वे महावली राक्षस लोग, नर्मदा में स्नान कर ॥ ३६ ॥

उत्तीर्य पुष्पाण्याजहुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ।

नर्मदापुलिने हृदे शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥ ३७ ॥

नदी से निकले और रावण की पूजा के लिये फूल इकट्ठे करने लगे । सफेद बादल की तरह नर्मदा नदी की रेती में ॥ ३७ ॥

**राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ।**

**पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥**

उन राक्षसों ने थोड़ी ही देर में पर्वत की तरह फूलों का ढेर कर दिया । जब फूल आगये तब राक्षसराज रावण ॥ ३८ ॥

**अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ।**

**तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥**

स्नान करने को नर्मदा नदी में वैसे ही थुमा ; जैसे गङ्गा जो में महागज घुसता है । तदनन्तर स्नान और जपने योग्य उत्तम मंत्र का जप कर, वह नदी के बाहर आया ॥ ३९ ॥

**नर्मदासलिलात्तस्मादुत्ततार स रावणः ।**

**ततः क्लिनाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ॥ ४० ॥**

नर्मदा के जल से निकल रावण ने गीले कपड़ों को उतार सूखे सफेद कपड़े पहने ॥ ४० ॥

**रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ।**

**तदगतीवशमापना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ ४१ ॥**

फिर वह पूजा का स्थान निश्चय करने के लिये हाथ जोड़े किनारे की ओर चला । उसके पीछे पीछे समस्त राक्षस मूर्ति-मान पर्वतों की तरह चले ॥ ४१ ॥

**यत्रयत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।**

**जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्रतत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥**

राज्ञसराज रावण उहाँ उहाँ जाता था, वहाँ वहाँ राज्ञस लोग  
सुवर्ण का शिवलिङ्ग लिये जाते थे ॥ ४२ ॥

[ नोट—इस श्लोक से प्राचीन काल में मूर्तिपूजा के प्रचलित होने में  
कुछ भी संशय नहाँ रह जाता । साथ ही यह भी विद्ध होता है कि, प्रायः  
तामस प्रकृति के लोग ही शिवपूजन किया रहते थे । ]

बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।

अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥४३॥

रावण ने बालु की वेदी पर उस शिवलिङ्ग को रख, अमृत के  
समान सुगन्धियुक पुष्प व चन्दनादि से पूजन उसका ( शिवलिङ्ग  
का ) किया ॥ ४३ ॥

ततः सतामार्तिहरं परं वरं

वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।

समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ

प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्तं चाग्रतः ॥४४॥

इति एकत्रिंशः सर्गः ॥

भक्तजनों के क्लेशों को हरने ताले, वरदानो, चन्द्रभूषण  
श्रीमहादेव जी की सर्वप्रकार से पूजा कर, राज्ञसश्रेष्ठ रावण  
हाथ पसार कर भक्तिपूर्वक शिवलिङ्ग के सामने नाचने  
लगा ॥ ४४ ॥

उत्तरकाशड का इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



## द्वात्रिंशः सर्गः

—०—

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः स दारुणः ।

पुष्पोपहारं कुरुते तस्मादेशाददूरतः ॥ १ ॥

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।

क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥

राक्षसश्रेष्ठ रावण पुण्यसलिला नर्मदा के तट पर, जहाँ शिव जी का पुण्य से पूजन कर रहा था, वहाँ से कुछ ही दूर हट कर माहिष्मती नगरी का राजा महाविजयी अर्जुन अपनी बहुत सी रानियों के साथ जलविहार कर रहा था ॥ १ ॥ २ ॥

तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ।

करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥ ३ ॥

उस समय उन रानियों के बीच राजा की बैसी ही शोभा हो रही थी ; जैसी कि, हथिनियों के बीच गजराज की होती है ॥ ३ ॥

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।

रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ४ ॥

राजा ने अपनी हजार भुजाओं का बल आजमाने के लिये नर्मदा की धार के जल को अपनी सहस्रों भुजाओं से रोका ॥ ४ ॥

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ।

कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥ ५ ॥

जब अर्जुन ने इम प्रकार जल की धार रोकी, तब जल उमड़ कर तटों के ऊपर तक जा पहुँचा और धार भी उद्टी बहने लगी ॥ ५ ॥

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।

स नर्मदाम्भसेवेगः प्रावृट्काल इवावभौ ॥ ६ ॥

वर्षा की तरह जल के उमड़ने पर मत्स्य, नक्ष, मगर, तट पर के फूल और कुश आदि जलप्रवाह के साथ बहने लगे ॥ ६ ॥

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषित इवाम्भसः ।

पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥ ७ ॥

अर्जुन के रोके हुए जलप्रवाह से रावण की पूजा के लिये एकनित किये हुए सब फूल वह गये ॥ ७ ॥

रावणोऽर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा ।

नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥

रावण अपना पूजन अभी समाप्त नहीं कर पाया था । अतः उसे अधिविच ही में जल की बाढ़ के कारण अपना पूजन क्लोइ देना पड़ा । उस समय वह नर्मदा की ओर घूर कर वैसे ही देखने लगा ; जैसे कोई पुरुष प्रतिकूल आचरण करने वाली अपनी स्त्री की ओर देखे ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसन्निभम् ।

वर्धन्तपम्भसेवेगं पूर्वमाशां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

उसने देखा कि, सागर के वेग के समान जल की धार पश्चिम ओर से पूर्व दिशा की ओर बढ़ रही है ॥ ९ ॥

ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वभावे परमे स्थिताम् ।  
निर्विकाराङ्गनाभासमपश्यद्रावणो नदीम् ॥ १० ॥

थोड़ी ही देर में विकार रहित कामिनों की तरह नर्मदा नदी पूर्ववत् शान्तभाव से ज्यों की त्यों बहने लगी । अतः तटबासी समस्त पक्षी निडर हो गये ॥ १० ॥

सव्येतरकराङ्गुल्या ह्यशब्दास्यो दशाननः ।  
वेगप्रभावमन्येष्टुं सोऽदिशच्छुकसारणौ ॥ ११ ॥

तब रावण ने मुख से कुक्र भी न कह कर, दहिने हाथ को उंगली से शुक और सारण के नदी की बाह का कारण जानने के लिये सङ्केत किया ॥ ११ ॥

तौ तु रावणसन्दिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ।  
व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥ १२ ॥

रावण के आज्ञानुसार वे दोनों बार भाई शुक और सारण, पश्चिम की ओर आकाश में उड़े ॥ १२ ॥

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रज्जनीचरौ ।  
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥ १३ ॥

जब वे दोनों रज्जनीचर उड़ते उड़ते आधे योजन निकल गये, तब उन्होंने देखा कि, एक पुरुष छियों के साथ जलविहार कर रहा है ॥ १३ ॥

बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ।  
मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलचेतसम् ॥ १४ ॥

वह साल वृत्त की तरह ऊँचा है। उसके सिर के बाल खुले हुए हैं उसकी आँखे नशे के कारण सुख्ख हो रही हैं और वह मदिरापान से मतवाला हो रहा है ॥ १४ ॥

**नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ।**

**गिरि पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥ १५ ॥**

सुमेरुपर्वत जिस प्रकार सहस्र चरणों से पृथिवी को दबाये हुए हैं, उसी प्रकार अर्जुन अपनी हजार भुजाओं से नदी के जल को रोके हुए ( अचल अटल ) खड़ा था ॥ १५ ॥

**बालानां वरनारीणं सहस्रेण समावृतम् ।**

**समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्चरम् ॥ १६ ॥**

हजारों सुन्दरी युवतियाँ उसका वैसे ही घेरे हुए थीं ; जैसे हजारों मतवाली हथिनियाँ गजेन्द्र को घेरे हों ॥ १६ ॥

**तमद्भुततरं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ ।**

**सन्निवृत्तावुपागम्य रावणान्तमथोचतुः ॥ १७ ॥**

शुक और सारण उस अद्भुत दृश्य को देख कर लौटे और रावण से, समस्त देखा हुआ वृत्तान्त कहने लगे ॥ १७ ॥

**बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वरः ।**

**नर्मदां रोधवदुद्धा क्रीडापयति योषितः ॥ १८ ॥**

हे राक्षसेश्वर ! बड़े भारी साल वृत्त के समान कोई विशाल पुरुष, बांध की तरह नर्मदा के जल को रोक कर, खियों के साथ जलविहार कर रहा है ॥ १८ ॥

**तेन बाहुसहस्रेण सन्निरुद्धजला नदी ।**

**सागरोदगारसङ्काशानुदगारान्सृजते मुहुः ॥ १९ ॥**

उसकी सहस्र बाहों से रोकी जा कर नर्मदा की धार के जल की, वैसे ही बाढ़ बार बार आती है, जैसे समुद्र में बाढ़ आती है ॥ १६ ॥

इत्येवं भाषमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ ।

रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालसः ॥ २० ॥

उन दोनों शुक सारण राक्षसों के मुख से यह वृत्तान्त सुन, रावण बोला—वही अर्जुन है। तदनन्तर रावण उसीकी ओर चला, क्योंकि उसे युद्ध की बड़ी लालसा थी ॥ २० ॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाधिपे ।

चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजस्तथा ॥ २१ ॥

सकृदेव कृतो रावः सरक्तपृष्ठतो घनैः ।

महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः ॥ २२ ॥

जब रावण अर्जुन से लड़ने के लिये जाने लगा, तब अति प्रचण्ड धूल उड़ाता हुआ पवन, बड़े ज़ोर से चला और दोर गर्जन कर बादलों ने रुधिर की बूँदें बरसायीं। महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारण को ॥ २१ ॥ २२ ॥

संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागावत्रचार्जुनः ।

अदीर्येणैव कालेन स तदा राक्षसो वली ॥ २३ ॥

साथ लिये हुए बलवान् राक्षसराज रावण वहाँ तुरन्त गया, जहाँ अर्जुन जलकीड़ा कर रहा था ॥ २३ ॥

तं नर्मदाहृदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ।

स तत्र स्त्रीपरिवृतं वाशिताभिरिव द्विपम् ॥ २४ ॥

अर्जुन के समान, कृष्णकान्ति वाला रावण, जब उस कुण्ड के समीप पहुँचा, तब उसने अर्जुन को स्थियों के साथ उसी प्रकार जलविहार करते देखा जिस प्रकार गजेन्द्र हथिनियों के साथ जलविहार करता है ॥ २४ ॥

नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् ।

स रोषाद्रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ॥ २५ ॥

इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ।

अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ॥ २६ ॥

युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः ।

रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ॥ २७ ॥

राजा अर्जुन को राक्षसराज रावण ने देखा और देखते ही क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र कर उसने अर्जुन के मंत्रियों से गम्भीर वाणी से यह कहा—हे मंत्रियों! तुम लोग हैहयनृपति अर्जुन से तुरन्त कहो कि, रावण नाम का राक्षसराज तुम्हारे साथ लड़ने के लिये आया है। रावण के ये वचन सुन, अर्जुन के वे मंत्रिगण ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन् ।

युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भो साधु रावण ॥ २८ ॥

अपने अपने हथियार तान कर उठ खड़े हुए और बोले—वाह रे रावण वाह! युद्ध करने के लिये तूने बड़ा अच्छा समय खोजा है ॥ २८ ॥

यः क्षीवं स्त्रीवृतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम् ।

स्त्रीसमक्षगतं यत्त्वं योद्धुमुत्सहसे नृपम् ॥ २९ ॥

कहाँ तो महाराज इस समय मदपान कर मंत्रियों के साथ जल-विहार कर रहे हैं और कहाँ तुम उनके साथ युद्ध करने को आये हो ॥ २६ ॥

क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया ।

युद्धय श्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात् समरेऽर्जुनम् ॥३०॥

आज के दिन माफ करो और आज की रात यहाँ टिके रहो । कल अर्जुन से मिल कर युद्ध कर लेना । यदि पुद्ध करने की तुम्हारी बड़ी प्रबल इच्छा हो ॥ ३० ॥

यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णाममावृत ।

निपात्यास्मान् रणे युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥ ३१ ॥

और यदि तुझको लड़ने की बड़ी डतावली हो, तो हम लोगों के साथ लड़ । हम लोगों को युद्ध में गिरा कर फिर अर्जुन के साथ युद्ध करना ॥ ३१ ॥

ततस्तै रावणामात्यैरमात्यास्ते नृपस्य तु ।

सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥ ३२ ॥

यह सुन रावण के मंत्रियों ने अर्जुन के कितने ही मंत्रियों को तो मार डाला और कितने ही को भूखे होने के कारण खा डाला ॥ ३२ ॥

ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीरगो वभौ ।

अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥३३॥

उस समय रावण के मंत्रियों और अर्जुन के अनुचरों ने लड़ते हुए नर्मदा के तट पर बड़ा भारो को लाहल मचाया ॥ ३३ ॥

इषुभिस्तोपरैः प्रासैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः ।

सरावणा नदीयन्तः समन्तात्समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥

अर्जुन के पक्ष के योद्धा दौड़ दौड़ कर सैकड़ों बाण, तोमर, प्रास, त्रिशूल, वज्र, कर्षणादि शस्त्रों द्वारा रावण और उसके मंत्रियों पर गर्ज गर्ज के प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥

हैह्याधिपयोधानां वेग आसीत्सुदारुणः ।

सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निःस्वनः ॥ ३५ ॥

नक्ष, मत्स्य, मकर सहित सागर में जैसा दारुण शब्द हुआ करता है, वैसा ही हैह्याधिपति अर्जुन के पक्ष के योद्धागण युद्ध की तेज़ी बढ़ने पर दारुण शब्द बड़े ज़ोर से करने लगे ॥ ३५ ॥

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ।

कार्तवीर्यवलं क्रुद्धा निहन्ति स्म स्वतेजसा ॥ ३६ ॥

जब रावण के मंत्रिगण प्रहस्त, शुकसारण आदि क्रुद्ध हो, कार्तवीर्य की सेना का बलपूर्वक नाश करने लगे ॥ ३६ ॥

अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः ।

क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्भयविहलैः ॥ ३७ ॥

तब अर्जुन के अनुचरों ने डरते डरते विहार में रत महाराज अर्जुन के निकट जा रावण और उसके मंत्रियों की इस करतूत का हाल कहा ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स तदार्जुनः ।

उत्तरार जलात्तस्माद् गङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥ ३८ ॥

<sup>१</sup> कर्षण— आयुधविशेषः । (गो०)

सारा हाल सुन, अर्जुन ने उन लोगों से कहा डरा मत । फिर उसने स्त्रियों को जल से इस प्रकार बाहर निकाला, जिस प्रकार अञ्जन नामक दिग्गज अपनी हथिनियों को गङ्गा से बाहर निकाले ॥ ३८ ॥

**क्रोधदूषितनेत्रस्तु स तदार्जुनपावकः ।**

**प्रजञ्चाल महाधोरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥**

कुद्ध होने के कारण लाल लाल नेत्र कर अर्जुन रुपी अग्नि, प्रलय कालीन अग्नि की तरह महाभयङ्कर रूप से भभक उठा ॥ ३८ ॥

**स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ।**

**अभिदुद्राव रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥ ४० ॥**

सोने के बढ़िया बाजूबंदों से शोभायमान वह अर्जुन, गदा हाथ में ले कर, राज्ञसों के ऊपर ऐसा पिल पड़ा, जैसे सूर्य अन्धकार पर पिल पड़ता है ॥ ४० ॥

**बाहुविक्षेपकरणां समुद्रम्य महागदाम् ।**

**गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ॥ ४१ ॥**

राजा अर्जुन, गदा धुमाता हुआ, गरुड़ जी के समान अति वेग से, राज्ञसों के समीप जा पहुँचा ॥ ४१ ॥

**तस्य मार्गं समारुद्धयोविन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः ।**

**स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥ ४२ ॥**

राजा की आते हुए देख, जिस प्रकार विन्ध्यपर्वत सूर्य भगवान् के मार्ग को अटलभाव से रोके हो, उसी प्रकार प्रहस्त,

हाथ में मूसल ले राजा अर्जुन का रास्ता रोक दर खड़ा हो गया ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहवद्धं मदोद्धतः ।

प्रहस्तः प्रेषयन् क्रुद्धो ररास च यथान्तकः ॥ ४३ ॥

फिर भय से उद्धत प्रहस्त ने कोध में भर लोहे के बंदों से युक्त उस भयानक मूसल की राजा को मारने के लिये उस पर छोड़ा तथा काल की तरह वह गजा भी ॥ ४३ ॥

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसन्निभः ।

प्रहस्तकरमुक्तस्य वभूव प्रदहन्निव ॥ ४४ ॥

हाथ से छूटते ही उस मूसल की नोंक से अशोकपुष्प की तरह आग भरकी, मानो राजा अर्जुन को भस्म ही कर डालेगी ॥ ४४ ॥

आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।

निपुणं वश्वयामास गदया गतविक्लवः ॥ ४५ ॥

परन्तु कार्तवीर्यार्जुन ने उस मूसल की, अपने ऊपर आते देख, ज़रा भी घबड़ाये बिना, अपनो गदा के ऊपर उसे बड़ी सावधानी से रोका ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिद्राव सगदो हैहयाधिपः ।

भ्रामयानो गदां गुर्वीं पश्ववाहुशतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर गदाधारी हैहयगति अर्जुन ने, अपनो पाँच सौ हाथ लंबी गदा धुमाते हुए और प्रहस्त की ओर झपट कर, उस पर गदा का प्रहार किया ॥ ४६ ॥

ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।

निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥ ४७ ॥

तब उस गदा के बड़े ज़ोर के प्रहार से प्रहस्त तो वैसे ही गिर पड़ा ; जैसे वज्र की चाट से कोई खड़ा हुआ पर्वत टूट कर गिर पड़ता है ॥ ४७ ॥

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।

समहोदरधूम्राक्षा अपसृष्टारणाजिरात् ॥ ४८ ॥

प्रहस्त को गिरा हुआ देख, मारीच, शुक और सारण, महोदर और धूम्राक्ष लड़ाई के मैदान से भाग गये ॥ ४८ ॥

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते ।

रावणोऽभ्यद्रवत्तर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥

प्रहस्त के गिर जाने और मंत्रियों के भाग जाने पर, रावण बड़ी फुर्ती के साथ अर्जुन पर झपटा ॥ ४९ ॥

सहस्रवाहोस्तद्युद्धं विंशद्वाहोश्च दारुणम् ।

नृपराक्षस्योस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

तदनन्तर हज़ार भुजाओं वाले अर्जुन के साथ बीस भुजा वाले रावण का, रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ५० ॥

सागराविव संक्षुब्धौ चलमूलाविवाचलौ ।

तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥ ५१ ॥

खलबलाते हुए दो समुद्र, गमनशोल दो पर्वत, तेजयुक्त दो सूर्य, दहन करने वाले दो अग्नि ॥ ५१ ॥

बलोद्धतौ यथा नागौ । वाशितार्थे यथा वृष्टौ ।

मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ५२ ॥

हथिनी के लिये युद्ध करने वाले दो बलवान हाथियों की तरह, दो मस्त सौंडों की तरह, बादलों की तरह गर्जते हुए और बलगर्वित दो सिंहों की तरह ॥ ५२ ॥

रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तदा राक्षसार्जुनौ ।

परस्परं गदां गृह्ण ताडयामासतुर्भृशम् ॥ ५३ ॥

रुद्र व काल की तरह, राक्षस रावण और राजा अर्जुन, दोनों ही गदायुद्ध करते हुए, एक दूसरे पर बार बार प्रहार करने लगे ॥ ५३ ॥

वज्रप्रहारानचल यथा घोरान्विषेहिरे ।

गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥

जैसे पर्वत भयद्वार वज्रप्रहार सहते हैं, वैसे ही वे दोनों नर और राक्षस एक दूसरे की गदा की चाटें सह रहे थे ॥ ५४ ॥

यथाऽशनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुतिः ।

तथा तयोर्गदापोर्थैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ ५५ ॥

जैसी की चिजली की कड़क की प्रतिध्वनि होती है, वैसी ही उनकी गदाओं की चटापट की प्रतिध्वनि से समस्त दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं ॥ ५५ ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।

काञ्जनाभं नभश्वके विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ५६ ॥

जब अर्जुन रावण की छाती पर गदा का प्रहार करता, तब बिजली की तरह आकाशमण्डल सुनहली आभा से व्यास हो जाता था ॥ ५६ ॥

तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।

अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ ५७ ॥

उधर रावण की गदा भी अर्जुन की छाती पर बारंबार पड़ कर, पर्वतराज के ऊपर उल्कापात की तरह चमक उठती थी ॥ ५७ ॥

नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः ।

सममासीत्योर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ ५८ ॥

इस गदायुद्ध में न तो अर्जुन ही को और न रावण ही को अकावट मालूम पड़ती थी । दोनों की वरावरी की लड़ाई हो रही थी । पुराकाल में जैसा कि, राजा बलि और इन्द्र का युद्ध हुआ था, वैसा ही इन दोनों का यह युद्ध हो रहा था ॥ ५८ ॥

शृङ्गैरिव वृषायुध्यन् दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।

परस्परं विनिधनन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥

सींगों से आपस में लड़ने वाले दो बैलों की तरह अथवा दाँतों से आपस में लड़ने वाले दो कुञ्जरों की तरह वे दोनों नरश्रेष्ठ और राक्षसश्रेष्ठ एक दूसरे पर चेष्टा कर रहे थे ॥ ५९ ॥

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।

स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।

दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत्क्षितौ ॥ ६१ ॥

( लड़ते लड़ते ) अर्जुन ने क्रोध में भर, अपना समस्त शारीरिक बल लगा, रावण की विशाल द्वाती पर गदा का प्रहार किया । परन्तु वरदान के कारण उसको द्वाती तो न टूटी अर्थात् वह मरा तो नहीं ; किन्तु गदा दो टुकड़े हो पृथिवी पर गिर बेकाम हो गयी ॥ ६० ॥ ६१ ॥

स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावणः ।

अपासपद्धतुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ ६२ ॥

तो भी रावण अर्जुन को चतायो उस गदा के प्रहार से धनुष भर पोछे हट गया और उसको चेट से रोने और चिल्हाने लगा ॥ ६२ ॥

स विहूलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।

सहस्रात्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६३ ॥

जब अर्जुन ने देखा कि, रावण चेट के मारे विकल हो रहा है, तब झट झटक कर उसे ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ जी साँप को पकड़ते हैं ॥ ६३ ॥

स तु बाहुसहस्रेण बलादृश्य दशाननम् ।

बबन्ध बलवान् राजा बलि नारायणो यथा ॥ ६४ ॥

श्रीवामन जी ने जैसे राजा बलि को बाँधा था, वैसे ही बलवान राजा अर्जुन ने अपनी हज़ार भुजाओं से रावण को पकड़ कर बाँध लिया ॥ ६४ ॥

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ।

साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥

जब रावण बँध गया ; तब सिद्ध, चारण और देवता लोगों ने “वाह वाह” कह कर, राजा अर्जुन के सिर के ऊपर फूल बरसाये ॥ ६५ ॥

**व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगरादिव कुञ्जरम् ।**

**ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥ ६६ ॥**

जैसे व्याघ्र हिरण को तथा सिंह गजेन्द्र को पकड़ लेता है, वैसे ही रावण को पकड़ कर, अर्जुन हर्षित हो मेघों की तरह बार बार गर्जने लगा ॥ ६६ ॥

**प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्टा बद्धं दशाननम् ।**

**सहसा राक्षसः क्रुद्ध अभिदुद्राव हैहयम् ॥ ६७ ॥**

इतने में प्रहस्त की मूर्छां दूर हो गयी । तब वह ओध में भर हैहयराज पर झपटा ॥ ६७ ॥

**नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापततां बभै ।**

**उद्भूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥ ६८ ॥**

प्रहस्त के अतिरिक्त कई राक्षस भी अर्जुन पर झपटे । उस समय ऐसा जान पड़ा मानों वर्षाकालीन बादल पानी भरने के लिये समुद्र की ओर दौड़े चले जाते हों ॥ ६८ ॥

**मुश्चमुश्चेति भाषन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासकृत् ।**

**मुसलानि च शूलानि सेत्ससर्ज तदा रणे ॥ ६९ ॥**

वे सब दौड़ते हुए चिल्ला कर कहते जाते थे “कि बोड़ बोड़” और साथ ही राजा अर्जुन के ऊपर मूसल और बर्डियाँ चलाते हुए कहते थे कि, खड़ा रह ! खड़ा रह !! ॥ ६९ ॥

अप्राप्तान्येव तान्याशु असम्भ्रान्तस्तदार्जुनः ।  
आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥ ७० ॥

पर राजा अर्जुन, उनके चलाये शखों को अपने शरीर पर लगने न देते और बौच में ही उनको अनायास गुपक लेते थे ॥७०॥

ततस्तान्येव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।  
भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥ ७१ ॥

अन्त में राजा अर्जुन ने उनको उत्तम और भयानक आयुधों से वैसे ही मार मार कर भगा दिया, जैसे हवा बादलों को उड़ा देती है ॥ ७१ ॥

राक्षसांख्यासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।  
रावणं गृह्ण नगरं प्रविवेश सुहृदवृतः ॥ ७२ ॥

राजा अर्जुन, उन राक्षसों को भली भाँति डरा कर और भगा कर, अपने हितैषियों सहित तथा रावण को बंदी बनाये हुए, अपनी राजधानी में पहुँचा ॥ ७२ ॥

स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्  
करैद्विजैः सपैरैः पुरुहूतसन्निभः ।  
ततोऽर्जुनः स्वां प्रविवेश तां पुरीं  
बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥ ७३ ॥  
इति द्वात्रिंशः सर्गः ॥

उस समय (राजधानीनिवासी) ब्राह्मणों तथा अन्य नगर-निवासियों ने इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन पर धक्षत और पुष्पों की वृष्टि की। सहस्रलोचन इन्द्र जैसे राजा बलि को जीत कर

अमरावती में आये थे, वैसे ही अर्जुन भी रावण को पकड़े हुए  
अपनी माहिष्मती पुरी में पहुँचा ॥ ७२ ॥

उत्तरकाशड का बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—: \* : —

### त्रयस्तिशः सर्गः

—: o : —

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसन्निभम् ।

ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥ १ ॥

राजा कार्तवीर्यर्जुन द्वारा रावण का पकड़ा जाना क्या था,  
मानों वायु का बांध लेना था । स्वर्ग में बार्तालाप करते हुए पुलस्त्य  
जी ने जब देवताओं के मुख से यह बात सुनी ॥ १ ॥

ततः पुत्रकृतस्नेहात्कम्प्यमानो महाधृतिः ।

माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महानृषिः ॥ २ ॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।

पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसम्पातःविक्रमः ॥ ३ ॥

सुनते ही महाधृतिवान् पुलस्त्य जी पुत्रस्नेह के कारण थर्ता उठे ।  
फिर अर्जुन से भैंट करने के लिये पवन के समान वेगवान महर्षि,  
आकाशमार्ग से, मन की समान वेगवती गति से, माहिष्मती में जा  
पहुँचे ॥ २ ॥ ३ ॥

सोऽमरावतिसङ्काशां हृष्टपुष्टजनावृताम् ।

प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥

<sup>१</sup> मनःसम्पातविक्रमः—मनोगतिः । ( गो० )

अमरावती के समान, और हृष्पुष्ट जनों से भरी पूरी उस नगरी के भीतर, वे वैसे ही घुस गये; जैसे ब्रह्मा जी अमरावती में प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दशम् ।

ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन् ॥ ५ ॥

अथवा अति कठिनता से देखने योग्य धीसूर्यनारायण पैदल चल कर आये हैं। तदनन्तर राजा के द्वारपालों अथवा मंत्रियों ने उनके आगमन की सूचना राजा को दी ॥ ५ ॥

पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्वैहयाधिपः ।

शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युदगच्छत्पस्त्विनम् ॥ ६ ॥

राजा ने जब तपस्वी पुलस्त्य जी का नाम अथवा आगमन सुना, तब वे हाथ जोड़े हुए उनकी अगवानी को गये ॥ ६ ॥

पुरोहितोऽस्य गृह्णार्थ्यं मधुपर्कं तथैव च ।

पुरस्तात्प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥

राजा के पुरोहित अर्थ्य और मधुपर्क की सामग्री ले कर राजा के आगे आगे हो लिये। मानों इन्द्र के आगे आगे बृहस्पति चलते हैं ॥ ७ ॥

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ।

अर्जुनो दृश्य सम्भ्रान्तो ववन्देऽन्द्र इवेश्वरम् ॥ ८ ॥

उदय हुए सूर्यभगवान् की तरह उन ऋषि को आया हुआ देख, सहस्रवाहु ने बड़े आदर के साथ वैसे ही उनको प्रणाम किया, जैसे ब्रह्मा जी को इन्द्र प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ।

पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगदगदया गिरा ॥ ९ ॥

राजा ने मधुपर्क, गौ, पाद्य और अर्घ्य निवेदन कर और अत्यन्त हर्षित हो, गदगद कण्ठ से मुनि पुलस्त्य जी से कहा ॥ ९ ॥

अद्यैवमरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ।

अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात्पश्यामि दुर्दशम् ॥ १० ॥

हे द्विजेन्द्र ! आज मुझे आपके अलभ्य दर्शन प्राप्त होने से, मेरी यह माहिष्मती नगरी अमरावती के तुल्य हो गयी है ॥ १० ॥

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् ।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ ११ ॥

हे देव ! आज मेरा तप सिद्ध हुआ, यह सफल हुआ, व्रत पूरा हुआ और जन्म सफल हुआ । अधिक तो क्या आज सब प्रकार मेरी मङ्गल है ॥ ११ ॥

यत्ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव ।

इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।

ब्रह्मनिंकुर्मि किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥ १२ ॥

हे देव ! देवताओं से भी वन्द्य आपके चरणों के मुझे आज दर्शन हुए हैं । हे ब्रह्मन् ! यह राज्य, ये पुत्र, ये लक्ष्मियां आदि हम सब लोग आपकी सेवा के लिये उपस्थित हैं । आप हम लोगों को आज्ञा दीजिये । हम लोग आपकी क्या सेवा करें ॥ १२ ॥

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ठा च पार्थिवम् ।

पुलस्त्यो वाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम् ॥ १३ ॥

यह सुन कर, पुलस्त्य मुनि ने धर्म, अश्वि, और पुत्रों का  
कुशल मङ्गल पूँछा ? तदनन्तर वे हैहयनाथ अर्जुन से बोले ॥ १३ ॥

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।

अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥ १४ ॥

हे नरेन्द्र ! हे कमलनयन ! हे चन्द्रमुख ! तुममें अतुलित बल  
है । तभी तो तुमने दशग्रीव को जीत लिया है ॥ १४ ॥

भयाद्यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दो सागरानिलौ ।

सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः ॥ १५ ॥

अहो ! जिसके भय से सागर और पवन भी चुपचाप आङ्गा  
पाने की प्रतीक्षा किया करते हैं, हे राजन् ! तुमने मेरे उसी रणदुर्जय  
पौत्र को युद्ध में परास्त कर, बांध लिया है ॥ १५ ॥

पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।

मद्वाक्याद्याच्यमानोऽद्य मुश्च वत्स दशाननम् ॥ १६ ॥

तुमने उसका यश पीकर ( अर्थात् दबा कर ) अपना नाम  
विश्रृत्यात् किया है । हे वत्स ! अब मैं तुमसे यही मागता हूँ कि, मेरा  
कहना मान कर, तुम रावण को छोड़ दो ॥ १६ ॥

पुलस्त्याङ्गां प्रगृह्याये न किञ्चन वचोऽर्जुनः ।

मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥ १७ ॥

नृपश्रेष्ठ अर्जुन ने ऋषि की आङ्गा को माथे चढ़ाया और कुछ  
भी आपत्ति किये बिना ही सहर्ष राजसराज रावण को छोड़  
दिया ॥ १७ ॥

स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः  
प्रपूज्य दिव्याभरणस्तगम्बरैः ।

अहिंसकं सख्यमुपेत्य साम्रिकं

प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥ १८ ॥

( छोड़ा ही नहीं बल्कि ) मूल्यवान् वस्त्रों, आभूषणों और बढ़िया पुष्पमालाओं से रावण का सत्कार भी किया । फिर अग्नि के सामने उसके साथ अपने मन को शुद्ध कर मैत्री भी कर ली । तदनन्तर ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य जी को प्रणाम कर, राजा अर्जुन अपने भवन में चला गया ॥ १८ ॥

पुलस्त्येनापि सन्त्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।

परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥ १९ ॥

पुलस्त्य ने भी रावण को विदा किया । यद्यपि अर्जुन ने रावण को गले लगाया और उसको पहुनाई को, तथापि हार जाने के कारण, रावण लज्जित होता हुआ लड़ा को गया ॥ १९ ॥

पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ।

मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २० ॥

ब्रह्मपुत्रं एवं मुनिश्चेष्ट पुजस्य जो भी रावण को छुड़ा, ब्रह्मलोक को चले गये ॥ २० ॥

एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात्प्रधर्षणम् ।

पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महावलः ॥ २१ ॥

महावली रावण, कार्तवीर्य से इस प्रकार पराजित हो, बांधा गया था और फिर पुलस्त्य जो के कहने से वह छूटा था ॥ २१ ॥

एवं बलिभ्यो वलिनः सन्ति राघवनन्दन ।

नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छेय आत्मनः ॥ २२ ॥

हे रघुनन्दन ! इस प्रकार के बलवान से भी अधिक बलवान हैं, अतएव जो कोई अपना भला चाहि, उसे दूसरों का अपमान करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥

ततः स राजा पिशिताशनानाम्

सहस्रबाहोरूपलभ्य मैत्रीम् ।

पुनर्नृपाणां कदनं चकार

चचार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥ २३ ॥

इति श्रयस्त्रिशः सर्गः ॥

तदनन्तर निशाचरराज रावण, सहस्रबाहु अर्जुन से मैत्री कर और गर्व में भर, नृपालों का नाश करता हुआ, पृथिवीमण्डल पर घूमने लगा ॥ २३ ॥

उत्तरकाण्ड का तैतोसर्वां सर्ग पूरा हुआ ।

—————\*

### चतुर्थिशः सर्गः

— : ० : —

अर्जुनेन विमुक्ततस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।

चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विणस्तथा कृतः ॥ १ ॥

राक्षसराज रावण जब अर्जुन द्वारा छोड़ दिया गया, तब वह बेदनारहित हो (अथवा निर्लज्ज) हो, सारी पृथिवी पर घूमने लगा ॥ १ ॥

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुतेऽयं बलाधिकम् ।

रावणस्तं समासाद्य युद्धे हव्यति दर्पितः ॥ २ ॥

जहाँ कहीं वह अधिक बल वान मनुष्य या राक्षस का पता पाता,  
वहीं दैड़ कर जाता और उसे युद्ध के लिये ललकारता था ॥ २ ॥

ततः कदाचित्किञ्चिन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।

गत्वा हव्यति युद्धाय वालिनं हेमपालिनम् ॥ ३ ॥

एक दिन रावण वालिपालित किञ्चिन्धापुरी में पहुँचा और  
उसने सुवर्णमालाधारी वालि को लड़ने के लिये बुलाया ॥ ३ ॥

ततस्तु वानरामात्यास्तारस्तारापिता प्रभुः ।

उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥

तब तारा के पिता और वालि के मंत्री तार ने युद्ध की अभिलाषा से आये हुए रावण से कहा ॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र गते वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् ।

कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्रुवङ्गमः ॥ ५ ॥

हे राक्षसेन्द्र ! वालि, जो तुमसे लड़ सकता है, कहीं बाहर गया  
हुआ है । अन्य किसी वानर में इतनी शक्ति है नहीं, जो तुमसे लड़  
सके ॥ ५ ॥

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण ।

इदं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

अतः हे रावण ! एक मुहूर्त भर ठहरो । वालि चारों समुद्रों पर  
सन्ध्या कर, अब आया ही चाहता है ॥ ६ ॥

[ नोट—सन्ध्योपासन के सम्बन्ध में रामभिरामीटीकाकार ने लिखा है, “ सन्ध्याधयेयदेवतांब्रह्मारुपामन्वास्यव्यात्वा ” अर्थात् यहाँ पर सन्ध्यो-पासन का अभिप्राय अघमर्षण मार्जनादि मंत्र विशिष्ट द्विजोचित वैदिक कृत्य से नहीं है ; किन्तु भगवान का ध्यान सुल्यादि कर्म से है । ]

एतानस्थिचयान्पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।

युद्धार्थिनामि मे राजान्वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

हे राजन् ! शङ्ख के समान सफेद हड्डियों के इस ढेर को देख लो । ये उनकी हड्डियाँ हैं, जो वानरराज वालि से युद्ध करने की इच्छा रख, यहाँ आचुके हैं ॥ ७ ॥

यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस ।

तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥

हे राज्ञसराज ! यदि तुमने अमृतरस भी पान किया होगा, तो भी वालि के सामने पड़, तुम किर जीते जागते लौट न सकोगे ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत ।

\*इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥

हे वैश्रवण ! आज तुम इस घदभुत संसार को देख लो और थोड़ी देर ठहरो, फिर तो तुम्हारा जोवन दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा त्वरसे मतुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।

वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिस्थमिव पावकम् ॥ १० ॥

और यदि तुम्हें मरने की त्वरा, हो तो दक्षिणसमुद्र के तट पर चले जाओ । वहाँ कहों उससे तुम्हारी भेंट हो जायगी । वालि पृथिवी

\* पाठान्तरे—इमं ।

पर स्थित अग्नि की तरह भभकता है। ( अतः इस चिन्हानी से तुम्हें उसे पहचानने में भी कष्ट न उठाना पड़ेगा । ) ॥ १० ॥

स तु तारं विनिर्भृत्स्य रावणो लोकरावणः ।

पुष्पकं तत्समारुद्धा प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥ ११ ॥

तार की इन बातों को सुन और उसका तिरस्कार कर, रावण पुष्पक पर सवार हो, दक्षिण समुद्र की ओर गया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ।

रावणो वालिनं दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

वहाँ पहुँच कर, रावण ने सोने के पहाड़ की तरह एवं दोपहर के सूर्य के समान प्रकाशित मुख बाले और भगवदाराधन में तबलीन बालि को देखा ॥ १२ ॥

पुष्पकादवरुद्धाथ रावणोऽज्ञनसन्निभः ।

ग्रहीतुं वालिनं तृणं निःशब्दपदमव्रजत् ॥ १३ ॥

काजल के समान काले रंग का रावण विमान से तुरन्त उतर दबे पैर बालि को पकड़ने के लिये आगे बढ़ा ॥ १३ ॥

यदृच्छ्या तदा दृष्टो वालिनापि स रावणः ।

पापाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥

किन्तु बालि ने अचानक रावण को देख लिया और उसका दुष्ट अभिप्राय जान कर भी वह ज़रा भी न घबड़ाया ॥ १४ ॥

शशमालक्ष्य सिंहो वा पञ्चगं गरुडो यथा ।

न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्रयम् ॥ १५ ॥

जैसे सिंह खरहे को और गरुड़ सर्प को देख नहीं घबड़ाता,  
वैसे ही वालि भी, मन में दुष्ट अभिप्राय रखने वाले रावण को देख,  
तिल भर भी न घबड़ाया ॥ १५ ॥

**जिघृक्षमाणामायान्तं रावणं पापचेतसम् ।**

**कक्षावलम्बिनं कुत्वा गमिष्ये त्रीन्महार्णवाम् ॥ १६ ॥**

वालि अपने मन में विचार रहा था कि, यह पापी राक्षस मुझे  
पकड़ने को आ रहा है। सो यह ज्यों ही मेरे निकट आया कि, मैंने  
इसे आपनी काँख में दबाया। फिर मैं इसे दबा कर तीन समुद्रों पर  
जाऊँगा ॥ १६ ॥

**द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्कस्थं संसदूरुकराम्बरम् ।**

**लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥**

तब सब लोग देखेंगे कि, शत्रु रावण मेरी काँख में गरुड़ जी  
द्वारा पकड़े गये सर्प की तरह लटकता हुआ जाता है। कहीं इसकी  
जांधे, कहीं इसके हाथ और कहीं इसके वज्र लटकेंगे ॥ १७ ॥

**इत्येवं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थितः ।**

**जपन्वै नैगमान्मंत्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥ १८ ॥**

इस प्रकार अपने मन में निश्चित कर, वालि चुपचाप भगवदा-  
राधन करता हुआ, पर्वतराज की तरह निश्चल हो वहाँ खड़ा  
रहा ॥ १८ ॥

[ नोट—नैगमान्—वैदिकान् । देवकुमारत्वान्मन्त्रवत्त्वं । ( गोविन्दराजीय  
भूषणटीका ) वात्यादयोऽहिस्वर्यप्रतिभातसङ्लवेदाः । ( रामाभिरामीटीका । ) ]

**तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।**

**प्रयत्नवन्तौ तत्कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥ १९ ॥**

उस समय एक दूसरे की पकड़ने की कामना से वानरराज और राजसराज प्रथल करते हुए अपने अपने बल का अहङ्कार प्रदर्शित कर रहे थे ॥ १६ ॥

इस्तग्राहं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ।

पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥ २० ॥

ऐरों की आहाट से जब वालि ने जान लिया कि, रावण उसके हाथ की पकड़ के भीतर आ गया है तब वालि ने पीछे को मुँह में ले लिया ही हाथ बढ़ा कर रावण को वैसे ही पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेते हैं ॥ २० ॥

ग्रहीतुकामं तं गृह्ण रक्षसामीश्वरं हरिः ।

खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥ २१ ॥

जो रावण स्वयं वालि को पकड़ने के लिये आया था, उसे वालि ने पकड़ अपनी काँख में दबा लिया और तब वह बड़े ज़ोर से आकाश में उड़ गया ॥ २१ ॥

तं च पीडयमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ।

जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥ २२ ॥

वालि रावण को बार बार दबा पीड़ित करता था और उसे नोंचते खसेआटते वैसे ही लिये जाता था, जैसे पवनदेव मेघों को उड़ा कर ले जाते हैं ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्या हियमाणे दशानने ।

मुमोक्षयिष्वो वालि रवमाणा अभिद्रुताः ॥२३॥

जब रावण पकड़ा गया, तब रावण के मंत्री उसको कुड़ाने की इच्छा से चिल्हाते हुए वालि के पीछे बढ़े ज़ोर से दौड़े ॥ २३ ॥

अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः ।

अन्वीयमानो मेघौदैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥ २४ ॥

वालि आगे आगे जा रहा था और रावण के मंत्री उसके पीछे पीछे । उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों थ्राकाशस्थित सूर्य के पीछे पीछे मेघ दौड़ रहे हों ॥ २४ ॥

तेऽशक्तुवन्तः सम्प्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः ।

तस्यवाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥ २५ ॥

राक्षसों ने बहुत चाहा कि, वे वालि के निकट तक पहुँचे, पर वालि की जंघाओं और भुजाओं के वेग को वे न पा सके और थक कर बीच ही में रह गये ॥ २५ ॥

वालिमार्गादपाक्रामन्पर्वतेन्द्रापि गच्छतः ।

किं पुनर्जीवनप्रेषुर्विभ्रद्वै मांसशोणितम् ॥ २६ ॥

वालि ऐसे वेग से जा रहा था कि, बड़े बड़े पहाड़ भी यदि उसका पीछा करते, तो उसको नहीं पकड़ सकते थे । फिर भला माँस और रुधिर के शरीरधारी, जो जीने के अभिलाषी थे, अथवा मरना नहीं चाहते थे, उनकी शक्ति कहाँ, जो वालि को पकड़ते ॥ २६ ॥

अपक्षिगणसम्पातान्वानरेन्द्रो महाजवः ।

क्रमशः सागरान्सर्वान्सन्ध्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥

बड़े वेग से गमन करने वाला वालि, इतना ऊँचा उड़ कर जाता था कि, वहाँ पक्षिगण भी नहीं पहुँच सकते थे । अस्तु, रावण को

काँख में दबाये वालि ने क्रम से सब सागरों के तटों पर पहुँच, भगवदाराधन किया ॥ २७ ॥

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः ।

पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः ॥ २८ ॥

आकाशचारियों में श्रेष्ठ वालि, रावण को बगल में दबाये, आकाशचारियों से सत्कारित हो, पश्चिमसमुद्र की ओर जाने लगा ॥ २८ ॥

तस्मिन्सन्ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।

उत्तरं सागरं प्रायाद्विहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥

वहाँ स्नान कर भगवादाराधन तथा जप करता हुआ वालि, रावण की काँख में दबाये हुए उत्तरसागर पर गया ॥ २९ ॥

बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः ।

वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥

यह महावली विशाल वानर वालि, रावण को बगल में दबाये हुए कितने ही हजार योजन, वायु अथवा मन की तरह तेजी के साथ चला गया ॥ ३० ॥

उत्तरे सागरे सन्ध्यामुपासित्वा दशाननम् ।

वहमानोऽगमद्वाली पूर्वं वै समहोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसमुद्र के तट पर भगवदाराधन कर, उसी प्रकार रावण को काँख में दबाये हुए वालि, पूर्वसमुद्र पर पहुँचा ॥ ३१ ॥

तत्रापि सन्ध्यामन्वास्य वासविः सहरीश्वरः ।

किञ्चिन्नामभितो गृह्ण रावणं पुनरागमत् ॥ ३२ ॥

इन्द्रपुत्र तथा वानरराज वालि वहाँ भी भगवदाराधन कर, और रावण को बग़ल में दबाये हुए किञ्चिन्ना में आ पहुँचा ॥ ३२ ॥

**चतुष्वपि समुद्रेषु सन्ध्यामन्वास्य वानरः ।**

**रावणोद्वहनश्रान्तः किञ्चिन्धोपवनेऽपतत् ॥ ३३ ॥**

वालि ने रावण को काँख में दबाये हुए चारों सागरों की यात्रा की थी और प्रत्येक सागरतट पर भगवदाराधन किया था । अतः मार्ग चलने की और रावण जैसे भारी राक्षस का बोझ उठाने की थकावट से चूर वालि, किञ्चिन्धापुरी के उपर्यन्त में कूदा ॥ ३३ ॥

**रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात्कपिसत्तमः ।**

**कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन् रावणं मुहुः ॥ ३४ ॥**

फिर कपिश्चेष्ट वालि ने अपनी काँख से रावण को निकाला और बार बार हँस कर उससे पूछा —कहिये आप कहाँ से चले आ रहे हैं ॥ ३४ ॥

**विस्मयं तु महदगत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ।**

**राक्षसेन्द्रो हरींद्रं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥**

बग़ल में इतनी देर तक दबे रहने के कारण रावण भी थक गया था । उसकी आँखों से उसके मन की घबड़ाहट प्रकट हो रही थी । राक्षसराज रावण अत्यन्त विस्मित हो, वानरराज वालि से बोला ॥ ३५ ॥

**वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।**

**युद्धेषुरिह सम्प्राप्तः सचाद्यासादितस्त्वया ॥ ३६ ॥**

हे इन्द्र-तुल्य-पराक्रमी वानरेन्द्र ! मैं राक्षसों का राजा हूँ । मेरा नाम रावण है । मैं तुमसे युद्ध करने की इच्छा से यहाँ आया था । सो मैं श्राज्ञ तुम्हारे हाथ से पकड़ लिया गया ॥ ३६ ॥

अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च ।

येनाहं पशुवद्गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥ ३७ ॥

हे वानरराज ! तुम्हारा बल, तुम्हारा पराक्रम और तुम्हारा गाम्भीर्य आश्रयेत्पादक है । तुमने मुझे पशु की तरह पकड़ चारों समुद्रों पर धूमा डाला ॥ ३७ ॥

एवमश्रान्तवद्वीर शीघ्रमेव च वानर ।

मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीर भविष्यति ॥ ३८ ॥

हे वीर वानर ! मुझे तो ऐसा कोई वीर देख नहीं पड़ता ; जो मुझे लिये हुए विना थके इतनी जलदी चारों समुद्रों पर धूम आवे ॥ ३८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्रबङ्गम ।

मनोनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥ ३९ ॥

हे वानरर्सिंह ! मन, वायु और गरुड़ ; केवल इन्हीं तीन प्राणियों की ऐसी गति है । सो आपमें भी इन्हीं जैसी गमनशक्ति है—इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।

त्वया सह चिरं सख्यं सुस्तिंग्रहं पावकाग्रतः ॥ ४० ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारा बल प्रत्यक्ष देख लिया । अब मैं अग्नि के सामने आपके साथ निष्कपट और चिरस्थायिनी मित्रता करना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।

सर्वमेवाविभक्तं नै भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

हे वानरेश्वर ! आज से छी, पुत्र, पुर, राज्य, भोग, आच्छादन मेज्जन आदि सब कुछ मेरा और तुम्हारा एक ही होगा ॥४१॥

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।

भ्रातृत्वमुपसम्पन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर आग जलायी गयी और अग्नि के सामने वानरराज और राक्षसराज की मैत्री हुई । दोनों में भाईचारा हो गया और दोनों एक दूसरे के गले लगे ॥ ४२ ॥

[ नोट—जब श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव में मैत्री हुई थी ; तब भी अग्निदेव साक्षी बनाये गये थे । अब यहाँ भी रावण और वालि की मैत्रीस्थापना के समय अग्निदेव उपस्थित किये गये । इससे ज्ञान पड़ता है कि, उस समय की अनार्य जातियों में मैत्री करते समय अग्नि-साक्षिध्य आवश्यक समझा जाता था । ]

अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।

किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥४३॥

फिर वालि और रावण हर्षित हो एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए वैसे ही किष्किन्धा में गये जैसे सिंह पर्वतकन्द्रा में जाता हो ॥४३॥

स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।

अमात्यैरागतैर्नीतस्वैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥४४॥

किष्किन्धा में रावण एक मास तक ( वालि के छोटे भाई ) सुग्रीव की तरह रहा । फिर ब्रैलोक्य का नाश करने की इच्छा रखने वाले रावण के मंत्री वहाँ आये और उसे वहाँ से लिखा ले गये ॥ ४४ ॥

एवमेतत्पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो ।

धर्षितश्च कृतश्चापि भ्राता पावकसन्निधौ ॥ ४५ ॥

हे प्रभो ! हे राम ! यह एक पुरानी घटना का वृत्तान्त है। वालि द्वारा रावण ने परास्त हो कर पीछे अग्नि के सामने वालि के साथ भाईचारा किया था ॥ ४५ ॥

**बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् ।**

**सेषित्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥ ४६ ॥**

**इति चतुर्खिंशः सर्गः ।**

हे राम ! वालि में अनुपम उत्तम बल था, किन्तु आग जिस प्रकार पतंगे को जला डालती है; उसी प्रकार तुमने उस वालि को एक बाण से मार कर ढेर कर दिया ॥ ४६ ॥

नोट—इस सर्ग में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो वालि द्वारा रावण का परास्त किया जाना। वालि का जन्म इन्द्र के अंश से था। इस पर कहा जा सकता है कि, रावण ने इन्द्र को तो परास्त कर दिया; किन्तु अछि को वह परास्त क्यों न कर पाया। इस शहू के समाधान में कहना पड़ेगा कि, इन्द्र को रावण ने नहीं, प्रत्युत मेघनाद ने सर किया था। रावण तो इन्द्र द्वारा घिर ही गया था। इसके अतिरिक्त बह्या का वरदान था कि, रावण देवताओं से अवध्य होगा; किन्तु वरदान में मनुष्य और वानरों का नामो-लक्ष्य न होने के कारण ही रावण अन्त में वानरों और मनुष्यों द्वारा मारा भी गया। दूसरी बात रावण और वालि की मैत्री की है। इन दोनों में परस्पर निष्कपट मैत्री हो गयी थी और भाईचारा हो गया था। यह बात कबन्ध को मालूम थी। इसीसे उसने श्रीरामचन्द्र जी को सुग्रीव के साथ मैत्री करने की सलाह दी थी। यदि अवसर आता तो वालि को रावण की सहायता करनी पड़ती; न कि श्रीरामचन्द्र जी की। जो अपने शत्रु का मित्र होता है, वह भी अपना शत्रु ही समझा जाता है। अतः वालिवध का भौचित्य इससे भी सिद्ध होता है । ]

**उत्तरकाण्ड का चौतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।**

—०—

## पञ्चत्रिंशः सर्गः

—:०:—

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् ।

प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोर्थवत् ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी विनम्र हैं। और हाथ जोड़ दक्षिण-  
दिशावासी अगस्त्य मुनि जी से अर्थयुक्त वचन बोले ॥ १ ॥

अतुलं बलमेतद्वै वालिनो रावणस्य च ।

न त्वेताभ्यां इनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥

यद्यपि वालि और रावण में अतुल बल था, तथापि मेरी समझ  
में ये दोनों ही हनुमान जी के समान न थे ॥ २ ॥

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।

विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥

शौर्य, चारुर्य, बल, धैर्य, पाणिडत्य, नीतिपूर्वक कार्यसिद्ध  
करने की योग्यता, विक्रम और प्रभाव के तो हनुमानजी (घर) हैं।  
अर्थात् इन गुणों के हनुमान जी आश्रयस्थल हैं ॥ ३ ॥

दृष्टैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।

समाश्वास्य महावाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥

क्योंकि सीता को खोजती हुई जब चानरी सेना समुद्र को  
सामने देख, विकल हो रही थी, तब यह बीर उन्हें धीरज बँधा सौ  
योजन चौड़ा समुद्र लौध गये थे ॥ ४ ॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ।

दृष्टा सम्भाषिता चापि सीता ह्याश्रवासिता तथा ॥ ५ ॥

फिर लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री राज्ञसी को परास्त कर, रावण के अन्तःपुर में सीता का इन्होंने पता लगाया और उनसे वार्तालाप कर, उनको ढाँढ़स बँधाया ॥ ५ ॥

सेनाग्रगा मंत्रिसुताः किङ्करा रावणात्मजः ।

एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥

फिर, अकेले हनुमान ने ही रावण के सेनापतियों को, मंत्रिपुत्रों को, किंडुर नाम्नी सेना को और रावण के एक पुत्र का भी बध किया ॥ ६ ॥

भूयो बन्धाद्विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।

लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

तदनन्तर ब्रह्माख्य के बंधन से क्लूट सम्भाषण करते हुए रावण का तिरस्कार कर, लङ्का को हनुमान जी ने वैसे ही फूँका; जैसे आग पृथिवी को फूँक देती है ॥ ७ ॥

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।

कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥

युद्धकाल में हनुमान जी ने जैसे जैसे कार्य किये, वैसे न तो इन्द्र, न विष्णु और न कुबेर ही कर सकते हैं ॥ ८ ॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।

प्राप्ता मया जयश्वैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥

मैंने तो इन्हींके भुजबल से लङ्घा को सर कर, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य, मित्र और बान्धवों को पाया है ॥ ६ ॥

**हनूमान्यदि नो न स्याद्वानराधिपतेः सखा ।**

**प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥**

अधिक क्या कहूँ ; बानरनाथ के मित्र हनुमान यदि मेरी सहायता न करते, तो जानकी का पता तक लगना कठिन था ॥ १० ॥

**किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया ।**

**तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीर्धो यथा ॥ ११ ॥**

जब सुग्रीव और वालि में बैर हो गया ; तब इन हनुमान जी ने अपने पराक्रम से वालि को घास फूस की तरह क्यों भस्म नहीं कर डाला ॥ ११ ॥

**म हि वेदितवान्मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ।**

**यदृदृष्टवान् जीवितेष्टं क्षिरयन्तं वानराधिपम् ॥ १२ ॥**

मैं तो यह समझता हूँ कि, उस समय हनुमान जी को अपना बल अवगत न रहा होगा । नहीं तो, अपने प्राणप्रिय मित्र सुग्रीव को क्लेशित देख, ये चुपचाप न बैठ रहते ॥ १२ ॥

**एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामुने ।**

**विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥ १३ ॥**

हे देवपूजित महामुने ! हे भगवन् ! अतः हनुमानजी के सम्बन्ध का जो यथार्थ बृत्तान्त हो, सो सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १३ ॥

**राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्तदा ।**

**हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥**

अगस्त्य मुनि श्रीरामचन्द्र जी के इन युक्तियुक्त वचनों को सुन हनुमान जी के सामने ही कहने लगे ॥ १४ ॥

सत्यमेतदघुश्रेष्ठ यद्ब्रवीषि हनूमतः ।

न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥ १५ ॥

हे राम ! आपने हनुमान जी के विषय में जो कुछ कहा, वह सब ठीक है । बल, गति और बुद्धि में हनुमान जी की कोई दूसरा बटावरी नहीं कर सकता ॥ १५ ॥

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोस्य मुनिभिः पुरा ।

न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमद्दन ॥ १६ ॥

किन्तु ; हे शत्रुनाशन ! मुनियों ने इन जा ऐसा भारी शाप दे रखा है ; जिससे यह बजवान हो कर भी आपने समस्त बल को भूल जाते हैं ॥ १६ ॥

बाल्येष्येतेन यत्कर्म कृतं राम महाबल ।

तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बालतयाऽस्यते ॥ १७ ॥

हे राम ! बाल्यकाल में महाबलो हनुमान ने बाल-सुलभ-चापल्यवश जो दुष्कर कर्म किया है ; मैं उसका वर्णन करने की भी शक्ति नहीं रखता ॥ १७ ॥

यदि वाऽस्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव ।

समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥ १८ ॥

अथवा हे राम ! यदि आप उसको सुनना ही चाहते हैं, तो आप सावधान हो कर सुनें ; मैं कहता हूँ ॥ १८ ॥

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुनामं पर्वतः ।

यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नामं वै पिता ॥ १९ ॥

सूर्य के वरदान के प्रभाव से सुवर्णरूपी सुमेरु नाम का एक पर्वत है। वहाँ हनुमान के पिता केसरी राज्य करते हैं ॥ १६ ॥

तस्य भार्या बभूवैषा हञ्जनेंति परिश्रुता ।

जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥

अंजनी या अञ्जना नामक विख्यात उनकी प्यारी एक भार्या थी। उस अञ्जना के गर्भ से पवन देव ने अपने श्वौरस से एक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया ॥ २० ॥

शालिशूकनिभाभासं प्रासूतेमं तदाञ्जना ।

फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहनेचरा ॥ २१ ॥

तदनन्तर रूपवती अञ्जना, शालिशूक की फुनगी (नोक) की तरह रंग वाले इस पुत्र को उत्पन्न कर, फल लेने के लिये बन में गयी ॥ २१ ॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशादितः ।

रुदोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥ २२ ॥

उस समय यह बालक माता के न रहने से और भूख लगने के कारण बड़ा दुःखी हुआ। यह उस समय शरवन (सरपत का बन) में स्वामिकार्तिक की तरह रोने लगा ॥ २२ ॥

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ।

ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥ २३ ॥

इतने में गुडहल के फूल की तरह लाल लाल और हाथी की तरह विशाल आकार वाले सूर्यदेव उदय हुए। हनुमान ने जाना कि, यह कोई फल है। अतः उनको लेने के लिये यह उस ओर लपके ॥ २३ ॥

**बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ।**

**ग्रहीतुकामो बालार्क पूवतेऽम्बरमध्यगः ॥ २४ ॥**

उस समय सूर्य को पकड़ने की इच्छा किये हुए यह मूर्तिमान बालसूर्य की तरह बालक हनुमान जी आकाश के बीच जा पहुँचे ॥ २४ ॥

**एतस्मिन्पूवमाने तु शिशुभावे हनूमति ।**

**देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत् ॥ २५ ॥**

यह शिशु हनुमान जब उछल कर उतने ऊँचे पहुँच गये, तब देवताओं, दानवों और यज्ञों को बड़ा ही आश्वर्य हुआ ॥ २५ ॥

**नाप्येवं वेगवान्वायुर्गुरुडो वामनस्तथा ।**

**यथाऽयं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥ २६ ॥**

( वे आपस में कहने लगे ) जैसे वेग से यह वायुपुत्र उड़ा चला जाता है, वैसा वेग तो न वायु में है, न गरुड़ में है और न मन ही में है ॥ २६ ॥

**यदि तावच्छिशोरस्य त्वीदशो गतिविक्रमः ।**

**यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ॥ २७ ॥**

जब कि, शिशु अवस्था ही में इसकी ऐसी गति और वेग है; तब न मालूम युवावस्था में पूर्ण बल प्राप्त कर, यह कैसा बलवान और वेगवान होगा ॥ २७ ॥

तमनुपुवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मानः ।

सूर्यदाहभयाद्रक्षस्तुषारचयशीतलः ॥ २८ ॥

पुत्रस्नेहवश अपने पुत्र के पीछे पीछे पवनदेव भी चले जाते थे और सूर्य के ताप से पुत्र की रक्षा करने के लिये वर्फ की तरह ढंडे हो कर हनुमान जी को ढंडक पहुँचा रहे थे ॥ २८ ॥

बहुयोजनसाइसं क्रमत्येष गतोम्बरम् ।

पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥ २९ ॥

हनुमान बाल्यचापल्यवश और पिता की सहायता से कई हज़ार योजन आकाश में ऊपर चढ़ कर सूर्य के निकट पहुँच गये ॥ २९ ॥

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।

कार्यं चास्मिन्समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥ ३० ॥

उस समय सूर्यदेव ने सोचा कि, एक तो अभी यह बालक है, इसे हित अनहित का कुछ ज्ञान नहीं, दूसरे आगे इससे देवताओं का बड़ा भारी कार्य होने वाला है; अतः उन्होंने (सूर्य भगवान् ने) इनको भस्म नहीं किया ॥ ३० ॥

यमेव दिवसं होष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः ।

तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

जिस दिन यह सूर्य को पकड़ने के लिये उड़ाने थे, उसी दिन राहु भी सूर्य को ग्रसने के लिये चला था ॥ ३१ ॥

अनेन च परामृष्टो राहुः सूर्यरथोपरि ।

अपक्रान्तस्तत्स्तो राहुश्न्द्रार्कमर्दनः ॥ ३२ ॥

जब इन्होंने सूर्य के रथ पर पहुँच राहु को पकड़ लिया, तब वह चन्द्र सूर्य को मर्दन करने वाला राहु, भयभीत हो, वहाँ से हट गया ॥ ३२ ॥

इन्द्रस्य भवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः ।

अब्रवीद्भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥ ३३ ॥

वह सिंहिका का पुत्र राहु, कोध में भरा हुआ इन्द्र के भवन में जा तथा टेढ़ी भोहें कर, देवताओं के बीच बैठे हुए इन्द्र से बोला ॥ ३३ ॥

बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्राकैर्मम वासव ।

किमिदं तत्त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥ ३४ ॥

हे इन्द्र ! तुमने मेरी भूख बिटाने के लिये चन्द्र और सूर्य को मुझे दिया था । हे बलवृत्रहन् ! फिर इस समय तुमने उन्हें दूसरे के अधीन क्यों कर दिया ? ॥ ३४ ॥

अद्याहं पर्वकाले तु \*जिघृष्णुः सूर्यमागतः ।

अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥ ३५ ॥

देखिये, आज मेरा पर्वकाल था ; सो आज मैं ज्यों ही सूर्य का ग्रास करने के लिये वहाँ गया ; त्यों ही एक दूसरे राहु ने आकर सूर्य को अचानक ग्रस लिया ॥ ३५ ॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः सम्भ्रमान्वितः ।

उत्पपातासनं हित्वा उद्वहन्काश्चनीं सजम् ॥ ३६ ॥

राहु के ये वचन सुन कर, वे काञ्छनमालाधारी इन्द्र, घबड़ा गये और आसन छोड़ कर उठ खड़े हुए ॥ ३६ ॥

\* पाठान्तरे—“जिवृक्षुः । ”

ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्वम् ।

शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाइहासिनम् ॥ ३७ ॥

इन्द्रः करीन्द्रपारुहा राहुं कृत्वा पुरस्सरम् ।

प्रायाद्यत्राभवत्सूर्यः सहानेन हनुमता ॥ ३८ ॥

और कैलास पर्वत के शिखर की तरह ऊँचे चार दाँतों वाले मदस्वावीं, सजे सजाये, सोने के घंटे घनघनाते हुए हाथी पर सवार हुए और राहु को आगे कर वहाँ पहुँचे, जहाँ हनुमान तथा सूर्य थे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथातिरभसेनागाद्राहुरुत्सूज्य वासवम् ।

अनेन च स वै द्रष्टः प्रधावन् शैलकूटवत् ॥ ३९ ॥

इन्द्र को पीछे क्लोड, राहु उनसे पहिले ही सूर्य के समीप बड़े वेग से पहुँच गया था; परन्तु हनुमान के पर्वतशृङ्गाकार विशाल शरीर को देखते ही, वह भाग गया था ॥ ३९ ॥

ततः सूर्यं समुत्सूज्य राहुं फलमवेक्ष्य च ।

उत्पपात पुनव्योमं ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥ ४० ॥

हनुमान ने राहु को देख कर, समझा कि, वह भी एक फल है। अतः वे सूर्य को क्लोड कर राहु को पकड़ने के पुनः आकाश में उछले ॥ ४० ॥

उत्सूज्यार्कमिमं रामं प्रधावन्तं प्लवङ्गमम् ।

अवेक्ष्यैवं परावृत्तो मुखशेषः पराङ्मुखः ॥ ४१ ॥

हे राम ! जब हनुमान जी सूर्य को क्लोड, राहु के पीछे दौड़े, तब केवल मुख मात्र के आकार वाला राहु, इनका विशाल शरीर देख (डर कर) भागा ॥ ४१ ॥

इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ।

इन्द्रं इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥ ४२ ॥

और वह सिंहका का पुत्र राहु, अपनी रक्षा करने वाले इन्द्र को यह बात जनाने के लिये और भयभीत हो बारंबार “हे इन्द्र ! मुझे बचाओ” कह कर, चिल्हाने लगा ॥ ४२ ॥

राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम् ।

श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरहमेनं निषूदये ॥ ४३ ॥

राहु की दुःख भरी बोली सुन और उसकी बोली पहचान कर, इन्द्र ने कहा—“डरा मत, मैं इसे मारता हूँ” ॥ ४३ ॥

ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि ।

फलन्तं हस्ति राजानमभिदुद्राव मारुतिः ॥ ४४ ॥

इतने में हनुमान ऐरावत हाथी ही को बड़ा भारी कोई फल समझ, उसकी ओर लपके ॥ ४४ ॥

तथास्य धावते रूपमैरावतजिघृक्षया ।

मुहूर्तमभवद्घोरमिद्राद्युपरि भास्वरम् ॥ ४५ ॥

हे राघव ! जब हनुमान जी ऐरावत को पकड़ने के लिये लपके, तब इनका रूप एक मुहूर्त भर में कालानल की तरह भयानक हो गया ॥ ४५ ॥

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः ।

हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यतादयत् ॥ ४६ ॥

इनको दौड़ते देख, शचीपति इन्द्र ने साधारण कोध कर, साधारण रीति से धीरे से इनके बज्ज का एक प्रहार किया ॥ ४६ ॥

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः ।

पतमानस्य चैतस्य वामाहनुरभज्यत ॥ ४७ ॥

वज्र की चेष्ट लगने से ये हनुमान जी पर्वत पर गिर पड़े, और गिरने से इनकी टोड़ी का बायाँ भाग कुद्र ढूट गया ( टेढ़ा हो गया ) ॥ ४७ ॥

तस्मिस्तु पतिते चापि वज्रताडन विहले ।

चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥ ४८ ॥

जब यह हनुमान जी वज्र की चेष्ट से मूर्च्छित हो गिर पड़े, तब पवनदेव इन्द्र पर कुद्र हुए और ( इन्द्र की प्रजा ) का अनिष्ट करने का पवन ने ठान ठाना ॥ ४८ ॥

प्रचारं स तु संगृह्ण प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः ।

गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥ ४९ ॥

सब के शरीर में रहने वाले पवनदेव, अपना सञ्चार बंद कर और अपने बच्चे को ले चुपचाप एक गुफा के भीतर जा बैठे ॥ ४९ ॥

विष्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत् ।

रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥

जल की वृष्टि थाम कर जिस प्रकार इन्द्र सब प्राणियों को पीड़ित करते हैं, उसी प्रकार पवनदेव समस्त प्राणियों के मलाशय और मूत्राशय वाले अधोवायु को रोक कर, प्रजाजनें को सताने लगे ॥ ५० ॥

वायुप्रकोपाद्भूतानि रुच्छ्वासानि सर्वतः ।

सन्धिभिर्भिर्यमानैश्च काष्ठभूतानि जङ्गिरे ॥ ५१ ॥

वायु के कुपित होने से प्राणिमात्र स्वास न ले सके और उनके शरीर के सारे जोड़ काठ की तरह जकड़ गये ॥ ५१ ॥

**निःस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् ।**

**वायुप्रकोपात्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥ ५२ ॥**

वायु के कुपित होने से न कहीं स्वाध्याय होता, न कहीं वषट्कार और न कहीं कोई अन्य धार्मिक क्रियाकलाप ही देख पड़ता था । उस समय तीनों लोक धर्मकर्म रहित और नरकयातना के भोग में फँसे हुए से जान पड़ने लगे ॥ ५२ ॥

**ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमातुषाः ।**

**प्रजापतिं समाधावन्दुःखिताश्च सुखेच्छ्या ॥ ५३ ॥**

क्या देवता, क्या, गन्धर्व और क्या मनुष्य, सभी हाहाकार करते थे और दुःख से छूटना चाहते थे । अतः सब के सब सुख पाने की इच्छा से दौड़े दौड़े श्रीब्रह्मा जी के निकट गये ॥ ५३ ॥

**ऊचः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः ।**

**त्वया तु भगवन्सृष्टाः प्रजानाथ चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥**

महोदर ( जलोदर ) रोग से पीड़ित रोगी की तरह पेटों को फुलाये और हाथ जोड़े हुए देवतागण श्रीब्रह्मा जी से बोले—हे भगवन् ! हे प्रजानाथ ! आपने ( अपनी सृष्टि में ) बार प्रकार के जीवों की रक्षना की है ॥ ५४ ॥

**त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः ।**

**सोस्मान्प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥ ५५ ॥**

रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः ।

तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥ ५६ ॥

और हे सत्तम ! आपने पवन को हम सब की आयु का अधिपति बना दिया है, किन्तु आज वही हम लोगों का प्राणेभर वायु पद्म में खी की तरह क्रिप कर, हमको उन्हों इस प्रकार सता रहा है । अतः हम सब वायु के सताये दुर आपके शरण में आये हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

[ वायुसंरोधजं दुःखमिदं नो तु दुःखहन् । ]

एतत्प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥

कारणादिति चोक्त्वाऽसौ प्रजाः पुनरभाषत ।

यस्मिंश्च कारणे वायुशुक्रोध च रुरोध च ॥ ५८ ॥

प्रजाः शृणुध्यं तत्सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् ।

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥ ५९ ॥

राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः ।

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ ६० ॥

हे दुःखहारी ! आप हम लोगों का पवनरोध सम्बन्धी दुःख दूर कीजिये । प्रजाजनों के ऐसे वचन सुन कर, प्रजानाथ प्रजापति ब्रह्मा जी बोले—इसका कोई कारण अवश्य है—जिससे वायु का सञ्चार रुक गया है । जिस कारण वायु ने क्रोध कर अपना सञ्चार रोका है, हे सर्व प्रजाजनो ! उसको बतला देना हमारा और उसको सुनना तुम्हारा कर्तव्य है । वह यह है कि, सुरपति इन्द्र ने पवन के पुत्र को मारा है । सो भी राहु के कहने से । इसीसे

पवनदेव कुद्ध हो गये हैं। यद्यपि पवनदेव शरीररहित हैं, तथापि वे प्राणधारियों के शरीरों में घूमते फिरते हुए सब का पालन करते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारभिः ।  
वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥

विशेष कर वायुरहित शरीर काठ के समान हो जाता है। अतः वायु ही प्राण, वायु ही सुख और वायु ही समस्त जगद्रूप है ॥ ६१ ॥

वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ।  
अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ॥ ६२ ॥

जब वायुदेव अपना सञ्चार त्याग देते हैं, तब जगत् को सुख प्राप्त हो ही नहीं सकता। देख-लो, आज ही जब उन्होंने अपना सञ्चार बंद कर दिया है तब संसार की स्था दशा हो रही है ॥ ६२ ॥

अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ।  
तथामस्त्र यत्रास्ते मारुतो रुक्मदो हि नः ।  
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुतम् ॥ ६३ ॥

विना श्वास के लोग काठ अथवा दीवार के समान हो गये हैं। अतएव, हम लोगों को पीड़ा देने वाले पवनदेव जहाँ कहीं हों, वहाँ हम सब को चलना चाहिये। पवनदेव को अप्रसन्न कर, कहीं हम सब ज्ञान मर न जाय ॥ ६३ ॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः  
सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुद्धकैः ।

जगाम यत्रास्यति तत्र मारुतः

सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्ण सः ॥ ६४ ॥

यह कह ब्रह्मा जी, देवता, गन्धर्व, भुजङ्ग, गुह्यक आदि समस्त प्रजाजनों को अपने साथ ले, वहाँ गये, जहाँ इन्द्र के मारे हुए अपने पुत्र को लिये, पवनदेव बैठे हुए थे ॥ ६४ ॥

ततोर्कं वैश्वानरकाञ्चनप्रभं

सुतं तदोत्सङ्गतं सदागतेः ।

चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्

सदेवगन्धर्वर्षियक्षराक्षसैः ॥ ६५ ॥

इति पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

आदित्य, अनल, अथवा सुवर्ण जैसी कान्ति वाले पवननन्दन हनुमान जी को, सदा गतिशील पवनदेव की गोद में देख, ब्रह्मा जी ने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों और राक्षसों सहित उन पर अनुग्रह प्रदर्शित किया ॥ ६५ ॥

उत्तरकाण्ड का पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

षट्त्रिंशः सर्गः

—:०:—

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ।

शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥

पुत्रशोक से दुःखी पवनदेव पितामह को देखते ही, पुत्र को गोद में लिये हुए, उठ कर ब्रह्मा जी के सामने खड़े हो गये ॥ १ ॥

चलत्कुण्डलमौलिस्तकतपनीयविभूषणः ।

पादयोन्यपतद्वायुस्त्रिरूपस्थाय वेधसे ॥ २ ॥

सुवर्णभूषणों से भूषित पवनदेव के सहसा उठ खड़े होने से उनके कानों के कुण्डल, सिर का मुकुट और गले का हार झलमला उठे । पवनदेव तीन बार ब्रह्मा जी की प्रणाम कर उनके चरणों में गिर पड़े ॥ २ ॥

तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना ।

वायुमुत्थाप्य इस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥

तब अनादि पवन वेदार्थज्ञ ब्रह्मा जी ने आभूषणों से भूषित निज कर से, पवनदेव को उठाया और उनके बालकपुत्र के शरीर पर भी उन्होंने हाथ फेरा ॥ ३ ॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोथ सर्लीलं \*पद्मजन्मना ।

जलसित्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमासवान् ॥ ४ ॥

कमलयोनि ब्रह्मा जी का करस्पर्श होते ही, पवनपुत्र जल से सोचे हुए धान की तरह, फिर जीवित अर्थात् भले चंगे हो गये ॥ ४ ॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ।

चचार सर्वभूतेषु सन्निरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥

गन्धवाही प्राणभूत वायुदेव अपने पुत्र को जीवित देख कर और अपनो रोक ढोड़, उसी तरण प्रसन्न हो, सब प्राणियों में सञ्चारित हो गये ॥ ५ ॥

मरुदोधाद्विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिता भवन् ।

शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥

\* पाठान्तरे—“पद्मयोनिना ।”

जैसे शीत और पवन से बच कर, कमल सहित कमलिनी प्रफुल्लित हो जाती है, वैसे ही समस्त प्राणी बायुरोध से मुक्त हो कर, हर्षित हो गये ॥ ६ ॥

तत्स्त्रियुग्मः स्त्रिकुल्त्रिधामा त्रिदशार्चितः ।

उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

यश, वीर्य, ऐश्वर्य, कान्ति, ज्ञान, और वैराग्य समन्वित त्रिमूर्ति-धारी, त्रिलोकधाम, तथा देवताओं के पूज्य श्री ब्रह्मा जी, पवनदेव को प्रसन्न करने के लिये देवताओं से बोले ॥ ७ ॥

भो महेन्द्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वराः ।

जानतामपि वः सर्व वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हे अग्न ! हे वरुण ! हे महेश्वर ! हे धनेश्वर ! यद्यपि तुम सब स्वयं ज्ञानवान हो ; तथापि मैं तुम लोगों के हित की जो बात कहता हूँ ; उसे तुम सब लोग सुनो ॥ ८ ॥

अनेन शिशुना कार्य कर्तव्यं वो भविष्यति ।

तद्वदध्वं वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्ट्ये ॥ ९ ॥

देखो, यह शिशु तुम्हारा बड़ा काम करेगा, अतः इसके पिता को प्रसन्न करने के लिये तुम सब इस शिशु को वरदान दो ॥ ९ ॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ।

कुशेशयमर्यां मालामुत्क्षप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तब प्रसन्नवदन और सहस्रनयन इन्द्र ने हर्षित हो, सुवर्णमर्या कमलपुष्पों की माला हनुमान जी के गले में डाल कर, यह कहा ॥ १० ॥

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।

नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ ११ ॥

मेरे हाथ से चलाये गये वज्र से इसकी ठोड़ी (हनु) कुछ उड़ी हो गयो है, अतः आज से इस कपिशार्दूल का हनुमान नाम पड़ा ॥ ११ ॥

अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ।

इतः प्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ १२ ॥

इसको मैं एक अद्भुत वरदान यह देता हूँ कि, आज से यह हनुमान मेरे वज्र से अवध्य होगा ॥ १२ ॥

पार्तुङ्गस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।

तेजसेऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकांकलाम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर तिमिरनाशक भगवान् सूर्य ने कहा—मैंने अपने तेज का शतांश इस बालक को दिया ॥ १३ ॥

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।

तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ।

न चास्य भविता कश्चित्सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ १४ ॥

जब यह पढ़ने योग्य होगा ; तब मैं स्वयं इसको शास्त्र पढ़ाऊँगा, जिससे यह हनुमान वाग्मी होगा और इसके समान शास्त्रों का जानने बाला दूसरा कोई न होगा ॥ १४ ॥

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ।

वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥ १५ ॥

तदनन्तर वरुण जो ने इनको यह वर दिया कि, मेरी फाँसी और जल से दूसरा लाख वर्षों तक भी ये न मरेगा ॥ १५ ॥

यमो दण्डादवध्यत्वमरोगत्वं च \*दत्तवान् ।  
वरं ददामि सन्तुष्ट अविषादं च संयुगे ॥ १६ ॥

तदनन्तर यमराज ने प्रसन्न हो, इनको यह वर दिया कि, मेरे कालदण्ड से इनका बाल भी बाँका न होगा और न कभी कोई रोग इनको सतावेगा तथा संग्राम में ये कभी विषाद को प्राप्त न होंगे ॥ १६ ॥

गदेयं मामिका चैनं संयुगे न वधिष्यति ।

इत्येवं †धनदः प्राह तदाश्वेकाक्षिपिङ्गलः ॥ १७ ॥

तदनन्तर एकाक्षी पिङ्गल कुबेर जी ने उस समय हनुमान जी को यह वर दिया कि, यह हनुमान युद्ध में सुखसे या मेरी गदा से न मर सकेंगे ॥ १७ ॥

मत्तो मदायुधानां च अवध्योऽयं भविष्यति ।

इत्येवं शङ्करेणापि दत्तोस्य परमो वरः ॥ १८ ॥

तदनन्तर श्रीमहादेवजी ने भी हनुमान जी को यह परम वर दिया कि, मेरे श्रिशूल और पाशुपतास्त्र से यह न मारे जायगे ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च दृष्टेमं बालं प्रति महारथः ।

मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च ।

तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति ॥ १९ ॥

तदनन्तर विश्वकर्मा ने भी बालक की ओर देख कर कहा कि, मेरे बनाये जो दिव्यास्त्र और शस्त्र हैं, उन सब से यह अवध्य हो कर, चिरजीवी होगा ॥ १९ ॥

\* पाठान्तरे—“नित्यशः” । † पाठान्तरे—“वरदः” ।

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद्वचः ।  
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्वोऽयं भविष्यति ॥ २० ॥

अन्त में ब्रह्मा जो बोले—यह बालक दीर्घायु, महाबलवान्  
और समस्त ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा २० ॥

ततः सुराणां तु वरैद्वां श्वेनमलंकृतम् ।  
चतुर्मुखस्तुष्टुप्नावायुमाह जगदगुरुः ॥ २१ ॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयङ्करः ।  
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥ २२ ॥

कामरूपः कामचारी कामगः पुत्रतां वरः ।  
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ २३ ॥

रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च ।  
रोमहर्षकराण्येष कर्ता कर्माणि संयुगे ॥ २४ ॥

इस प्रकार जगदगुरु चतुर्मुख ब्रह्मा देवताओं के वरदानों को  
सुन कर और प्रसन्न हो वायुदेव से बोले,—हे वायो ! यह तुम्हारा  
पुत्र मारुति, शत्रुओं को भयभीत करने वाला, मित्रों को अमशदाता,  
अजेय, कामरूपी, कामचारो, कामगामी, अव्याहत गति वाला,  
वानरों में श्रेष्ठ तथा वडा कीर्तिमान होगा । यह युद्ध में रावण के  
नाश के लिये श्रीराम जो के लिये हितकारक रवं रोमाञ्चकारो कार्य  
करेगा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्य मारुतं त्वमरैः सह ।  
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २५ ॥

यह कह और वायु से बिदा हो, तथा अन्य देवताओं को अपने साथ लिये हुए ब्रह्मा जी अपने लोक को सिधारे ॥ २५ ॥

सोपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्ण गृहमानयत् ।

अञ्जनायास्तमाख्याय\* वरदत्तं विनिर्गतः ॥ २६ ॥

गन्धवाही पवनदेव भी पुत्र को ले कर अपने घर आये और अञ्जना से देवताओं के वरदान का वृत्तान्त कह, वहाँ से चल दिये ॥ २६ ॥

प्राप्य राम वरानेष वरदानबलान्वितः† ।

जवेनात्पनि संस्थेन सोऽसौपूर्ण इवाऽर्णवः ॥ २७ ॥

हे रामचन्द्र ! वरदानों के प्रभाव से और स्वाभाविक शारीरिक बल से यह हनुमान जो समुद्र की तरह परिपूर्ण हो गये ॥ २७ ॥

तरसा पूर्यमाणोपि तदा वानरपुङ्गवः ।

आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥ २८ ॥

तब यह कापश्चेष्ट हनुमान जी बल से परिपूर्ण और निर्भय हो, ऋषियों के आश्रमों में जा जा कर, उपद्रव करने लगे ॥ २८ ॥

सुग्रीवाण्डान्यग्रिहोत्राणि वल्कलानां च सञ्चयान् ।

भग्रविच्छिन्न विध्वस्तान्संशान्तानां करोत्ययम् ॥ २९ ॥

कहीं यज्ञपात्रों ( जैसे सुग्रीवाण्डों ) को, अग्निहोत्र की अग्नि को, और वल्कल वस्त्रों को तोड़ने फोड़ने, अस्तव्यस्त करने और चीड़ने फोड़ने लगे । ऋषिगण शान्त स्वभाव के थे वे करते ही रहा ॥ २९ ॥

एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः ।

सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः †शम्भुना कृतः ॥ ३० ॥

\* शम्भुना—ब्रह्मण । ( गो० )

† पाठान्तरे—“स्तम्भाचख्यो” । † पाठान्तरे—“वरदानसमन्वितः” ।

इस प्रकार यह महाबली हनुमान ब्रह्मा जी के वरदान के कारण ब्रह्मदण्ड से अवध्य हो ऐसे कर्म किया करते थे ॥ ३० ॥

जानन्त क्रष्णस्तं वै सहन्ते तस्य शक्तिः ।

तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोङ्गनीसुतः ॥ ३१ ॥

प्रतिषिद्धोपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः ।

ततो महर्षयः क्रुद्धा भृगवंगिरसवंशजाः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मियों को यह बात ( ब्रह्मदण्ड से अवध्य होने की ) मालूम थी । अतः दण्ड देने की शक्ति रहते भी वे इनके ( हनुमान जी के ) उपद्रवों को सह लिया करते थे । फिर केसरी और वायु ने इनको ऐसे कार्य करने से वर्जा भी, तो भी यह मर्यादा का उल्लङ्घन ही करते गये । हे राम ! तदनन्तर अंगिरा और भृगु के बंश में उत्पन्न हुए क्रुद्ध मुनिजनों ने ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शेषुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः ।

बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान्पुवङ्गम् ॥ ३३ ॥

तद्वीर्यकालं वेत्तासि नास्माकं शापयोहितः ।

यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥ ३४ ॥

साधारण कोश कर इनको यह शाप दिया कि—हे वानर ! जिस बल के भरोसे तू हम लोगों को सताता है, सो वह बल तुझे बहुत दिनों बाद स्मरण होगा । किन्तु जब कोई तुझे तेरी कीर्ति का स्मरण करावेगा, तब तेरा बल बढ़ेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ततस्तु हृततेजोजा महर्षिवचनौजसा ।

एषोश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर यह हनुमान ऋषियों के शाप के प्रभाव से बलवीर्य विहीन हो, मृदुभाव से ऋथ्याश्रमों में घूमने लगे ॥ ३५ ॥

अथर्वरजसो नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ।

सर्ववानरराजासीत्तेजसा इव भास्करः ॥ ३६ ॥

सूर्य के समान तेजस्वी ऋक्षराज, समस्त वानरों के राजा ये तथा वालि और सुग्रीव के पिता थे ॥ ३६ ॥

स तु राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां हरीश्वरः ।

ततस्त्वर्क्षरजा नाम कालधर्मेण योजितः ॥ ३७ ॥

वे वानराधिपति ऋक्षराज बहुत दिनों तक राज्य कर के, अन्त में काल के वशवर्ती हो गये ॥ ३७ ॥

तस्मिन्ब्रह्मस्तमिते चाथ मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ।

पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥ ३८ ॥

जब वे मर गये, तब मंत्रकुण्डल मंत्रियों ने वालि को पिता के पद पर और सुग्रीव को वालि के ( युवराज ) पद पर अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥

सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैतं छिद्रवर्जितम् ।

आवाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥ ३९ ॥

बत्रपन ही से हनुमान की सुग्रीव के साथ ऐसी दोषरहित आदर्श मैत्री थी, जैसी कि, अग्नि के साथ वायु की है ॥ ३९ ॥

एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः ।

वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥ ४० ॥

परन्तु हे राम ! जिस समय वालि और सुग्रीव में बैर हुआ,  
उस समय यह हनुमान जो शापवश अपने बल को भूले हुए  
थे ॥ ४० ॥

न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोपि वालिना ।

देव जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥ ४१ ॥

हे देव ! वालि, सुग्रीव को बहुत दौड़ाता और बुमाता था  
और बहुत सताता था, किन्तु हनुमान ये सब देखते रहते थे ।  
क्योंकि यह शापवश अपने बल को भूले हुए थे । अतः यह करते ही  
क्या ॥ ४१ ॥

ऋषिशापाहृतबलस्तदैष कपिसत्तमः ।

सिंहः कुञ्चररुद्धो वा आस्थितः सहिते रणे ॥ ४२ ॥

ऋषिशापवश अपने बल को भूले हुए यह कपिश्रेष्ठ हनुमान,  
सुग्रीव की विपत्ति के समय, हाथी से घिरे हुए सिंह की तरह, सुग्रीव  
के साथ तो रहते थे, ( किन्तु वालि से युद्ध नहीं कर सकते  
थे ) ॥ ४२ ॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप

सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।

गम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-

हनूमतः कोऽप्यधिकोस्ति लोके ॥ ४३ ॥

हे राघव ! पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सौशील्य, माधुर्य,  
नीति, ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल और धैर्य में हनुमान जो से  
बढ़ कर इस लोक में और कौन है अर्थात् कोई इस लोक में नहीं  
है ॥ ४३ ॥

असौ पुनव्याकरणं ग्रहीष्यन्  
सूर्येन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।

उद्यदगिरेरस्तगिरि जगाम

ग्रन्थं महद्वारयनप्रमेयः ॥ ४४ ॥

यह वानर व्याकरण पढ़ने की इच्छा से सूर्य के आगे पढ़ते पढ़ते उद्याचल से अस्ताचत तक चले जाते थे ॥ ४४ ॥

ससूत्रवृत्यर्थपदं महार्थं

ससंग्रहं सिद्धयति वै कपीन्द्रः ।

न ह्यस्य कश्चित्सदृशोस्ति शास्त्रे

वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥ ४५ ॥

इन अप्रमेय वानरेन्द्र ने सूत्र (शपाध्यायी) वृत्ति, वाचिक, भाष्य और संग्रह (प्रकरणादि) अर्थयुक भवत् ग्रन्थ (व्याकरण) पढ़ सिद्धि प्राप्ति कर ली और साथ ही छन्दशास्त्र में भी यह प्रयोग हो गये ॥ ४५ ॥

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने

प्रस्पर्धतेयं हि गुरुं सुराणाम् ।

सोयं नवव्याकरणार्थवेत्ता

ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ ४६ ॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य

लोकान्दिधक्षोरिव पावकस्य ।

लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य

हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥ ४७ ॥

यह समस्त विद्या और तपोविधान में सुखुरु बृहस्पति की टक्कर के हैं और व्याकरण के जानने वाले हैं। अब आपकी कृपा से यह ब्रह्मा भी होंगे। यह ( बलवान् इतने हैं कि, ) समस्त संसार को भस्म करने के लिये प्रलयाश्चि के समान, अथवा प्रजात्त्वयकारी यम की तरह अथवा प्रलयकालीन उफनते हुए समुद्र को तरह हैं। भला इन हनुमान के सामने कौन ठड़ा रह सकता है अथवा इनका सामना कौन कर सकता है ? ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः  
सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।  
सतारतारेयनलाः सरभा-  
स्त्वत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ४८ ॥

हे राम ! आपकी महायता के लिये इन्हींके समान देवताओं ने सुग्रीव, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नल, नील, तार, तारेय और रभादि बड़े बड़े अन्य वानरों को भी उत्पन्न किया है ॥ ४८ ॥

[गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्टो  
मैन्दः प्रभोज्योतिमुखो नलश्च ।  
एते च कृक्षाः सह वानरेन्द्रै  
स्त्वत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ४९ ॥]

हे प्रभो ! गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट और ज्योतिमुख की तथा अृक्षों को भी तुम्हारी सहायता के लिये उत्पन्न किया है ॥ ४९ ॥

तदेत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।  
हनूमतो बालभावे कर्मेतत्कथितं मया ॥ ५० ॥

हे राम ! हनुमान ने वाल्यावस्था में जो जो कर्म किये थे, वे सब मैंने आपको सुनाये । अधिक क्षा कहूँ, आपने जो कुछ मुझसे पूँछा था, उसका उत्तर मैंने आपको दिया ॥ ५० ॥

**श्रुत्वाऽगस्त्यस्य कथितं रामः सौमित्रिरेव च ।**

**विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ ५१ ॥**

अगस्त्य जी की ये बातें सुन, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण, बानरों तथा राक्षसों सहित बड़े विस्मित हुए ॥ ५१ ॥

**अगस्त्यस्त्वब्रवीद्रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ।**

**दृष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५२ ॥**

परन्तु अगस्त्य जी पुनः श्रीरामचन्द्र जी से बोले कि, तुमने सब कुछ सुना और मैंने भी तुम्हें देखा और तुम्हारे साथ बातचीत भी की । अब हम सब जाते हैं ॥ ५२ ॥

**श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः ।**

**प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥**

तब उग्रतेजस्वी अगस्त्य ऋषि के यह वचन सुन कर, श्रीरामचन्द्र जी हाथ जोड़ प्रणाम कर और नम्रता पूर्वक बोले ॥ ५३ ॥

**अद्य मे देवतास्तुष्टाः पितरः प्रपितामहाः ।**

**युप्माकं दर्शनादेव नित्यं तुष्टाः सवान्धवाः ॥ ५४ ॥**

आज आपके दर्शन मिलने से मेरे ऊपर देवता प्रसन्न हुए तथा पिता और प्रपितामहगण भी तृप्त हुए और भाईबंदों सहित मैं प्रसन्न हुआ ॥ ५४ ॥

**विज्ञाप्यं तु ममैतद्दि यद्वदाम्यागतस्पृहः ।**

**तद्वद्वद्विर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५५ ॥**

किन्तु आपकी सेवा में मेरा एक स्पृहारहित निवेदन है । इसे आप मेरे ऊपर दया कर स्वीकार करें ॥ ५५ ॥

पौरजानपदान्स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः ।

क्रतूनेव करिष्यामि प्रभावाद्वतां सताम् ॥ ५६ ॥

मैंने बन से लौट कर, पुरवासियों और देशवासियों को अपने अपने कामों में लगा दिया है । आप सत्युरुषों की कृपा से मैं यज्ञ करना चाहता हूँ ॥ ५६ ॥

सदस्या मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तत् ।

भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्गिणः ॥ ५७ ॥

आप लोग महत्तपवोर्यसमन्वित तथा साधु पवं शीलवान् हैं । अतएव आप अपने इस अनुग्रहकांतो के यज्ञ में निरन्तर पर्यवेक्षक हों ॥ ५७ ॥

अहं युष्मान्समाश्रित्य तपोनिर्धूतकल्पषान् ।

अनुगृहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥ ५८ ॥

आप तप करते करते पापशून्य हो गये हैं । अतः आपका आश्रय लेने से मैं अपने पितरों की कृपा का पात्र बन सकूँगा और अपने यज्ञ को सुसम्पन्न कर सकूँगा ॥ ५८ ॥

तदागन्तव्यमनिशम्भवद्विरिह सङ्गतैः ।

अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा क्रषयः संशितव्रताः ॥ ५९ ॥

यज्ञकाल में आप सब लोग मिल कर यहाँ पधारियेगा । व्रत-धारी अगस्त्यादि ऋषि लोग यह सुन कर ॥ ५९ ॥

१ आगतः—वनादागतः अहं । (गो०) २—सदस्याः—विघिदर्शिनः ।

एवमस्त्विति तं प्रोच्य प्रयातुमुपचक्रमुः ।

एवमुक्त्वा गताः सर्वे क्रिष्णस्ते यथागतम् ॥ ६० ॥

और तथास्तु—ऐसा ही करेंगे, श्रीरामचन्द्रजी से कह कर, अपने अपने आश्रमों को चले गये अथवा जहाँ से आये थे वहाँ चले गये ॥ ६० ॥

राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः ।

ततोस्तं भास्करे याते विसृज्य नृपवानरान् ॥ ६१ ॥

सन्ध्यामुपास्य विधिवत्तदा नरवरोत्तमः ।

प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोन्तःपुरचरोऽभवत् ॥ ६२ ॥

इति षट्ट्रिंशः सर्गः ॥

उनके चले जाने पर श्रीरामचन्द्र जी माहाराज अगस्त्य जी की कही वातों को स्मरण कर कर के, आश्र्य करने लगे । तदनन्तर सूर्य के अस्ति होने पर नृपों और वानरों को विदा कर, श्रीरामचन्द्र जी ने विधिवत् सन्ध्योपासन किया । तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी ने रात्रिसुख प्राप्त करने के लिये अन्तःपुर में गमन किया ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

उत्तरकाशड का छक्तोसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—: \* :—

सप्तत्रिंशः सर्गः

—: ० :—

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे धर्मेण विदितात्मनि ।

व्यतीता या निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी ॥ १ ॥

जगत्प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक की यह पहली ही रात थी, जो पुरवासियों का हर्ष बढ़ाने वाली थी, किन्तु वह रात भी बीत गयी ॥ १ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां प्रातर्नृपतिबोधकाः ।

बन्दिनः समुपातिष्ठन्सौम्या नृपतिवेशमनि ॥ २ ॥

उस रात के बीत जाने पर राजा को जगाने वाले बंदीगण जो सौम्यमूर्ति थे, राजभवन में जा, उपस्थित हुए ॥ २ ॥

ते रक्तकण्ठनः सर्वे किञ्चरा इव शिक्षिताः ।

तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथावत्सप्रहर्षिणः ॥ ३ ॥

किञ्चरों की तरह ( संगीत को ) शिक्षा प्राप्त और ( नैसर्गिक ) मधुरकण्ठ वाले वे गायक, वीरश्रेष्ठ महाराज को हर्षित कर, उनका स्तव करने लगे ॥ ३ ॥

वीर सौम्य प्रबुध्यस्य कौसल्याप्रीतिवर्धन ।

जगद्दि सर्वं स्वपिति त्वयि सुसे नराधिप ॥ ४ ॥

उन्होंने इस प्रकार गान किया—हे वीर ! हे सौम्य ! हे कौशल्या का आनन्द बढ़ाने वाले ! आपके सामने से सब जगत निद्रित रहता है, अतः आप अब जागिये ॥ ४ ॥

विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्वनोरिव ।

बुद्धया बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ५ ॥

आप भगवान् विष्णु के तुल्य पराक्रमी, अश्विनीकुमारों की तरह रूपवान्, बृहस्पति के समान बृद्धिमान और प्रजापति के समान प्रजापालक हैं ॥ ५ ॥

क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः ।

वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ ६ ॥

आपमें समुद्र के समान गाम्भीर्य, पृथिवी के समान क्षमा, सूर्य के समान तेज और पवन के समान वेग है ॥ ६ ॥

अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्वन्दे सौम्यत्वमीदशम् ।

नेदशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ ७ ॥

आपमें शिव की तरह अचलता है और चन्द्रमा की तरह सौम्यता है । हे नरनाथ ! आपकी समान न तो कोई राजा हुआ और न आगे कोई होगा ॥ ७ ॥

यथा त्वमसि दुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः ।

न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

हे पुरुषश्चेष्ट ! आप जैसे दुर्धर्ष हैं, वैसे ही सदा धर्मपरायण हो कर प्रजा के हित में तत्पर रहा करते हैं । इसीसे आपको कीर्ति और लक्ष्मी नहीं त्यागती ॥ ८ ॥

श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।

एताश्चान्याश्च मधुरा बन्दिभिः परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥

हे काकुत्स्थ ! आपमें धर्म और लक्ष्मी सदा स्थिर रहती हैं ( अर्थात् आप धार्मिक हैं अतः आप सब प्रकार से धनधान्य से भरे पूरे हैं ) बंदीजनों ने इस प्रकार तथा अन्य बहु प्रकार की स्तुति मधुर कण्ठ से की ॥ ९ ॥

सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्वोधयन्ति स्म राघवम् ।

स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः ॥ १० ॥

जब बंदीजनों ने दिव्य स्तुतियाँ कर के, श्रीरामचन्द्र जी को जगाया, तब वे स्तुति किये जाने पर जागे ॥ १० ॥

स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम् ।

उत्तस्यौ नागशयनाद्वरिन्द्रियणो यथा ॥ ११ ॥

और अपना स्वच्छ बिंदौना त्रोड पेसे उठ बैठे मानों शेष पर  
से श्रीमन्नारायण उठे हों ॥ ११ ॥

तमुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः ।

सलिलं भाजनैः शुभ्रैरूपतस्थुः सहस्राः ॥ १२ ॥

उस समय हज़ारों नौकर चाकर नम्रभाव से हाथ जोड़े खड़े थे  
और कितने ही स्वच्छपात्रों में जल भरे हुए खड़े थे ॥ १२ ॥

कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः ।

देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्षवाकुसेवितम् ॥ १३ ॥

उस जल से महाराज ने नित्य कृत्य किये । तदनन्तर पवित्र हो  
अग्नि में हवन किया । फिर वे उस देवालय में पधारे, जहाँ समस्त  
इद्वाकुवंशीय जाया करते थे ॥ १३ ॥

[ नोट—इस इलोक में देवागार शब्द आने से मूर्तिपूजा का उस काल  
में प्रचलन पाया जाता है । ]

तत्र देवान्पितृन्विप्रानर्चयित्वा यथाविधि ।

वाह्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः ॥ १४ ॥

वहाँ देवता, पितर, और ब्राह्मणों का यथोचित अथवा विधि-  
वत पूजन कर, वे साथियों को साथ लिये हुए, बाहर के चौक में  
( या ढ्योढ़ी पर ) गैये ॥ १४ ॥

उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।

वसिष्ठ प्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्रयः ॥ १५ ॥

क्षत्रियाश्च महात्मानो नाना जनपदेश्वराः ।

रामस्योपाविशन् पाश्वे शक्रस्येव यथामराः ॥ १६ ॥

वहाँ पर महात्मा मंत्रिगण तथा वशिष्ठादि अग्नितुल्य तेजस्वी पुरोहित एवं देशदेशान्तरों के राजा रईस, श्रीरामचन्द्र जी के पास उसी प्रकार आकर उपस्थित हुए ; जिस प्रकार इन्द्र के पास देखता आते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

**भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः ।**

**उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम् ॥ १७ ॥**

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में वैसे ही तत्पर थे, जैसे तीनों वेद (ऋग्, यजु और साम ) यज्ञ में उपस्थित रहते हैं ॥ १७ ॥

**याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किङ्करा मुदिताननाः ।**

**मुदिता नाम पाश्वस्था वहवः समुपाविशन् ॥ १८ ॥**

हर्षित और प्रसन्नवदन सेवक लोग हाथ जोड़े महाराज श्रीरामचन्द्र जी की सेवा के लिये बग़ल में आ खड़े हुए ॥ १८ ॥

**वानराश्र महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः ।**

**सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥ १९ ॥**

महापराक्रमी और इच्छानुसार रूप धारण कर लेने वाले सुग्रीवादि\* बीस वानर श्रीरामचन्द्र जी के निकट आ दैठे ॥ १९ ॥

\* कठकटीकाकार के मतानुसार बीस मुख्य वानरों के नाम ये हैं !—

१ सुग्रीव, २ अंगद, ३ दनुमान, ४ जाम्बवान, ५ सुषेण, ६ तार,  
७ नील, ८ नल, ९ मैंद, १० द्विविद, ११ कुमुद, १२ शरभ, १३ शतबलि,  
१४ गन्धमादन, १५ गज, १६ गवाक्ष, १७ गवय, १८ धूत्र, १९ रम्भ,  
२० ज्योतिमुख ।

विभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः ।

उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकः ॥ २० ॥

फिर चार राक्षसों के साथ श्रीमान् विभीषण भी उहाँ आ बैठे, मानों कुवेर के पास गुह्यक लोग बैठे हों ॥ २० ॥

तथा निगमवृद्धाश्च कुलोना ये च मानवाः ।

शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ २१ ॥

तदनन्तर ( नगर के बड़े बड़े ) सेठ साहूकार, वृद्धजन और कुलीनजन आये । वे महाराज को झुक झुक कर प्रणाम कर के, यथोचित स्थानों पर बैठ गये ॥ २१ ॥

तथा परिवृतो राजा श्रीमद्विर्क्षिभिर्वरैः ।

राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥ २२ ॥

यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपास्यते ।

अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद्विरोचते ॥ २३ ॥

उस समय श्रीमान् ऋषियों, महापराक्रमी राजाओं, वानरों और राक्षसों के बीच बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी, वैसे ही शोभायमान हुए ; जैसे ऋषियों द्वारा सदा इन्द्र शोभायमान हुआ करते हैं । इतना ही नहीं ; बल्कि उस समय श्रीरामचन्द्र जी की शोभा इन्द्र से भी बढ़ कर देख पड़ती थी ॥ २२ ॥ २३ ॥

तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।

कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २४ ॥

इति सप्तशिंशः सर्गः ॥

उस समय पुराणवेत्ता महात्मा लोग वहाँ उपस्थित जनों को कर्णमधुर धर्मकथाएँ सुनाने लगे ॥ २३ ॥

उत्तरकाण्ड का सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

[ नोट—अधिकमतानुसार आगे के पांच सर्ग प्रक्षिप्त हैं । क्योंकि पूर्वसर्ग में अगस्त्य का विदा होना लिख कर भी, पुनः उनके साथ, आगे के सर्गों में, श्रीरामचन्द्र जी का कथोपकथन होना असङ्गत है । कई टीकाकारों ने इन सर्गों पर व्याख्या भी नहीं की । ]

—\*—

## प्रद्विसेषु प्रथमः सर्गः

— : ० : —

एतच्छ्रुत्वा तु निखिलं राघवोऽगस्त्यमब्रवीत् ।

य एषक्षरजानाम वालिसुग्रीवयोः पिता ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र जो यह समस्त वृत्तान्त सुन कर, फिर भी अगस्त्य जी से बोले—हे भगवन् ! आपने वालि एवं सुग्रीव के पिता का नाम तो ऋक्षराज बतलाया ॥ १ ॥

जननी का च भवनं सा त्वया परिकीर्तिता ।

वालिसुग्रीवयोश्चापि नामनी केन हेतुना ॥ २ ॥

अब आप बतलावें कि, इनकी माता का नाम क्या था ? वे कहाँ की रहने वाली थीं ? और यह भी बतलाइये कि, इनके वालि और सुग्रीव नाम पड़ने का कारण क्या है ? ॥ २ ॥

एतद्ब्रह्मन्समाचक्षव कौतूहलमिदं हि नः ।

स प्रोक्तो राघवैवमगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥

ये सब बातें आप मुझे समझा कर बतलाइये । क्योंकि ये सब बातें जानने के लिये मुझे बड़ा कौतूहल है । श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार कहने पर अगस्त्य जी कहने लगे ॥ ३ ॥

शृणु राम कथामेतां यथापूर्वं समाप्ततः ।

नारदः कथयामास ममाश्रममुपागतः ॥ ४ ॥

हे राम ! पूर्वकाल में नारद जी ने मेरे आश्रम में पधार कर, जैसा मुझसे कहा था, वैसा ही मैं आपसे संक्षेप में कहता हूँ । सुनिये ॥ ४ ॥

कदाचिदट्टमानोऽसावतिथित्वमुपागतः ।

अर्चितस्तु यथान्यायं विधिहष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥

एक दिन घूमते थामते धर्मात्मा नारद जी मेरे आश्रम में आ मेरे अतिथि हुए । मैंने उनका यथाविधि सत्कार किया ॥ ५ ॥

सुखासीनः कथामेनां मया पृष्ठः स कौतुकात् ।

कथयामास धर्मात्मा महर्षे श्रूयतामिति ॥ ६ ॥

जब वे सुख से आसन पर विराजमान हो गये ; तब मैंने कौतूहलवश उनसे यही बात पूँछी थी । ( मेरे पूँछने पर ) उन धर्मात्मा ने कहा, हे महर्षे ! सुनो ॥ ६ ॥

मेर्हन्गवरः श्रीमञ्जाम्बूनदमयः शुभः ।

तस्य यन्मध्यमं शुङ्गं सर्वदैवतपूजितम् ॥ ७ ॥

मेरु नाम का एक पहाड़ है, जो पर्वतों में श्रेष्ठ एवं सुन्दर है । वह सुवर्णमय है और सुन्दरता की तो वह खानि ही है । इसके बीच बाले शृङ्ग को देखता बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं ॥ ७ ॥

तस्मिन्दिव्या सभा रम्या ब्रह्मणः शतयोजना ।

तस्यामास्ते सदा देवः पद्मयोनिश्चतुर्मुखः ॥ ८ ॥

क्षमोंकि उसी शिखर पर ब्रह्मा जी का शतयोजन विस्तीर्ण रमणीय दिव्य सभाभवन बना हुआ है। चतुर्मुख ब्रह्मा जी, उसीमें सदा विराजमान रहते हैं ॥ ८ ॥

योगमध्यसत्स्तस्य नेत्राभ्यां यदसुसुवत् ।

तदगृहीतं भगवता पाणिना चर्चितं तु तत् ॥ ९ ॥

एक दिन वे वहाँ बैठे बैठे योगाभ्यास कर रहे थे कि, उनके नेत्रों से अश्रुविन्दु निकल पड़े। ब्रह्मा जी ने उन अश्रुविन्दुओं को हाथ से पोछ कर, ॥ ९ ॥

निक्षिप्तमात्रं तदभूमौ ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।

तस्मिन्ब्रश्रुकणे राम वानरः सम्बभूव ह ॥ १० ॥

पृथिवी पर फैल दिया। लोककर्ता ब्रह्मा के हाथ से उन अश्रुविन्दुओं के पृथिवी पर गिरते ही, एक वानर उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

उत्पन्नमात्रस्तु तदा वानरश्च नरोत्तम ।

समाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैरुक्तः किल महात्मना ॥ ११ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! उस वानर के उत्पन्न होते ही महात्मा पितामह ब्रह्मा जी ने प्रियवाक्यों से उसे समझाया और उससे कहा ॥ ११ ॥

पश्य शैलं सुविस्तीर्णं सुरैरध्युषितं सदा ।

तस्मिन् रम्ये गिरिवरे बहुमूलफलाशनः ॥ १२ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! देखो, इस बहुविस्तृत पर्वत पर देवतागण रहा करते हैं। तुम इस रम्य पर्वतश्रेष्ठ पर अनेक फल मूल खा कर, ॥ १२ ॥

ममान्तिकचरो नित्यं भव वानरपुज्जन्व ।

कञ्चित्कालमिहास्य त्वं ततः श्रेयो भविष्यति ॥१३॥

सदैव मेरे पास रहा करा । कुछ दिनों यहाँ रहने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १३ ॥

एवमुक्तः स चैतेन ब्रह्मणा वानरोत्तमः ।

प्रणम्य शिरसा पादौ देवदेवस्य राघव ॥ १४ ॥

हे राम ! जब ब्रह्मा जी ने उस वानर से इस प्रकार कहा, तब उस वानरश्रेष्ठ ने सीस नवा, उन देवदेव ब्रह्मदेव के चरणों को प्रणाम किया ॥ १४ ॥

उक्तवाँकोककर्तारमादिदेवं जगत्पतिम् ।

यथाङ्गापयसे देव स्थितोऽहं तव शासने ॥ १५ ॥

और आदिदेव जगत्पति लोककर्ता ब्रह्मा जी से कहा—हे देव ! आप जैसी आङ्गा देते हैं; मैं वैसा ही करूँगा । मैं आपके आङ्गाधीन रहूँगा ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा हरिदेवं ययौ हृष्टमनास्तदा ।

स तदा द्रुमखण्डेषु फलपुष्पघनेषु च ॥ १६ ॥

ब्रह्मन्प्रतिबलः शीघ्रं वने फलकृताशनः ।

चिन्वन्मधूनि मुख्यानि चिन्वन्पुष्पाण्यनेकशः ॥ १७ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा जी से कह कर, वह वानर प्रसन्नतापूर्वक, फलफूलों से भरे पूरे बनों में जा और वहाँ चुन चुन कर मीठे फल-फूलों को खा खा कर शोध्र ब्रह्मा जी के ( अर्थात् देवताओं के ) समान बलवान हो गया ॥ १६ ॥ १७ ॥

दिनेदिने च सायाहे ब्रह्मणोऽन्तिकमागमत् ।

गृहीत्वा राम मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च ॥१८॥

वह वानर प्रतिदिन सन्ध्या के समय ब्रह्मा जी के पास आ जाया करता था । हे राम ! इस प्रकार वह उत्तम फल फूल ला कर ॥१८॥

ब्रह्मणो देवदेवस्य पादमूले न्यवेदयत् ।

एवं तस्य गतः कालो बहु पर्यटतो गिरिम् ॥ १९ ॥

देवदेव ब्रह्मा जी के चरणकमलों में चढ़ा दिया करता था । इस प्रकार उस पर्वत पर घूमते फिरते उसे बहुत दिन हो गये ॥१९॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य समतीतस्य राघव ।

ऋक्षराढ् वानरःश्रेष्ठस्तुषया परिपीटितः ॥ २० ॥

हे राम ! तदनन्तर कुछ काल बीतने पर वानरश्रेष्ठ ऋक्षराज प्यास से अत्यन्त विकल हो कर ॥ २० ॥

उत्तरं मेरुशिखरं गतस्तत्र च दृष्टवान् ।

नानाविहगसघुष्टं प्रसन्नसलिलं सरः ॥ २१ ॥

मेरुपर्वत के उत्तर शिखर पराचला गया । वहाँ से उसने नाना प्रकार के पक्षियों के शब्दों से गुजायमान और स्वच्छ जल से पूर्ण एक तालाब देखा ॥ २१ ॥

चलत्केसरमात्मानं कृत्वा तस्य तटे स्थितः ।

ददर्श तस्मिन्सरसि वक्रच्छायामथात्मनः ॥ २२ ॥

तब वह हर्षित हो और अपनी गर्दन के बालों को हिलाता हुआ उसके किनारे पर चला गया । उस समय दैववश उसे पानी में अपने मुख की परद्धाई देख पड़ी ॥ २२ ॥

कोऽयमस्मिन्यम् रिपुर्वसत्यन्तर्जले महान् ।

रूपं चान्तर्गतं तत्र वीक्ष्य तत्पश्यतो हरिः ॥ २३ ॥

उसे ( अपने मुख की परछाई को ) देख, वह सोचने लगा कि,  
इस पानो में यह मेरा बड़ा शत्रु बन कर कौन रहता है । इस प्रकार  
वानरश्रेष्ठ ने जल में वह रूप देख कर ॥ २३ ॥

क्रोधाविष्टमना ह्येष नियतं मावमन्यते ।

तदस्य दुष्टभावस्य पुष्कलं कुमतेर्गृहम् ॥ २४ ॥

मन ही मन कहा कि, यह क्रुद्ध सा रह कर, मेरा सदा अपमान  
किया करता है । अतः इस दुरात्मा दुष्ट का यह सुन्दर भवन मैं  
नष्ट कर डालूँगा ॥ २४ ॥

एवं सचिन्त्य मनसा स वै वानरचापलात् ।

आत्प्लुत्य चापतत्स्मिन् हृदे वानरसत्तमः ॥ २५ ॥

मन ही मन इस प्रकार का ठान ठान कर, वह वानर चञ्चलता-  
वश छलांग मार उस तालाव में कूद पड़ा ॥ २५ ॥

उत्प्लुत्य तस्मात्स हृदादुत्थितः पुवगः पुनः ।

तस्मिन्ब्रेव क्षणे राम स्त्रीत्वं प्राप स वानरः ॥ २६ ॥

फिर एक छलांग मार कर उस तालाव के बाहर निकल आया ।  
हे राम ! उस तालाव से निकलते ही वह वानर, स्त्री हो गया ॥ २६ ॥

मनोज्ञरूपा सा नारी लावण्यललिता शुभा ।

विस्तीर्णजघना सुभ्रूनीलकुन्तलमूर्धजा ॥ २७ ॥

मुग्धसस्मितवक्रा च पीनस्तनतटा शुभा ।

हृदतीरे च सा भाति क्रजुयष्टिर्लता यथा ॥ २८ ॥

वह स्त्री बड़ी लावण्यवती थी । मौटी मौटी दो उसकी जंघाएँ थीं और सुन्दर दोनों भौंहें थीं । उसके बाल काले और धुँधराले थे तथा उसका हँसमुख मनोहर चेहरा था । उसके कुचयुगल मौटे थे । वह बड़ी रूपवती थी और बड़ी अच्छी मालूम पड़ती थी । उस तालाब के किनारे वह एक सीधी एवं लंबी लता की तरह, देख पड़ती थी ॥ २७ ॥ २८ ॥

**त्रैलोक्यसुन्दरी कान्ता सर्वचित्तप्रमाथिनी ।**

**लक्ष्मीव पद्मरहिता चन्द्रज्योत्सनेव निर्मला ॥ २९ ॥**

श्रिलोकसुन्दरी यह रमणी सब के चित्त को मोहित करने वाली, कमज़रहित लक्ष्मी के समान अथवा चन्द्रमा की चाँदनी के समान निर्मल जान पड़ती थी ॥ २६ ॥

**रूपेणाप्यभवत्सा तु श्रियं देवीमुमा यथा ।**

**द्योतयन्ती दिशः सर्वास्तथाभूत्सा वराङ्गना ॥ ३० ॥**

अथवा लक्ष्मी पार्वती के समान वह सुन्दरी थी । वह वरांगना, उस तालाब के तीर पर खड़ी खड़ी अपनी प्रभा से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी ॥ ३० ॥

**एतस्मिन्नन्तरे देवो निवृत्तः सुरनायकः ।**

**पादावुपास्य देवस्य ब्रह्मणस्तेन वै पथा ॥ ३१ ॥**

इतने में ब्रह्मा जी को प्रणाम कर, सुरनायक इन्द्र उसी ओर से निकले ॥ ३१ ॥

**तस्यामेव च वेलायामादित्योऽपि परिभ्रमन् ।**

**तस्मिन्नेव पदे सोऽभूद्यस्मिन्सा तनुमध्यमा ॥ ३२ ॥**

साथ ही धूमते हुए श्रीसूर्यदेव भी वहीं जा पहुँचे, जहाँ वह पतली कमर वाली सुन्दरी वामा खड़ी थी ॥ ३२ ॥

युगपत्सा तदा दृष्टा देवाभ्यां सुरसुन्दरी ।

कन्दर्पवशगौ तौ तु दृष्टा तां सम्बभूतुः ॥ ३३ ॥

उस समय वह सुन्दरी दो देवताओं को दृष्टि में पड़ी और वे दोनों उसे देखते ही कामातुर हो गये ॥ ३३ ॥

ततः क्षुभितसर्वाङ्गौ सुरेन्द्रौ पञ्चगाविव ।

तद्रूपमद्भुतं दृष्टा त्याजितौ धैर्यमात्मनः ॥ ३४ ॥

उसका अद्भुत रूप निहार कर, उन दोनों देवताश्रेष्ठों का धैर्य जाता रहा । दोनों देवताओं के समस्त श्रंग त्रिकलं हो गये और वे साँप की तरह तड़फड़ाने लगे ॥ ३४ ॥

ततस्तस्यां सुरेन्द्रेण स्कन्दं शिरसि पातितम् ।

अनासाद्यैव तां नारीं सन्निवृत्तमथाभवत् ॥ ३५ ॥

उस लड़ी के समीप न पहुँच पाने के पूर्व ही इन्द्र का वीर्य निकल पड़ा और वह उस सुन्दरी के सिर (के बालों) पर गिरा ॥ ३५ ॥

ततः सा वानरपतिं जडे वानरमीश्वरम् ।

अमोघरेतसस्तस्य वासवस्य महात्मनः ॥ ३६ ॥

किन्तु इन्द्र का वह वीर्य अमोघ (कभी निष्फल जाने वाला न) था, अतः निष्फल कैसे जाता । अतः उससे जो वानरश्रेष्ठ उत्पन्न हुआ वह वानरों का राजा हुआ ॥ ३६ ॥

वालेषु पतितं वीजं वाली नाम बभूव सः ।

भास्करेणापि तस्यां वै कन्दर्पवशवर्तिना ॥ ३७ ॥

खी के बालों पर इन्द्र का वीर्य गिरने और उससे उत्पन्न होने के कारण, उस बालक का नाम बालि पड़ा । इसी बीच में सूर्य ने कामातुर हो ॥ ३७ ॥

बीजं निषिक्तं ग्रीवायां विधानमनुवर्तत ।

तेनापि सा वरतनुर्नेत्का किञ्चिद्द्वचः शुभम् ॥ ३८ ॥

उस स्त्री की गर्दन पर अपना बीर्य डाला, परन्तु उस सुन्दरी स्त्री ने ऐसा होने पर भी कुकु भी शुभ बचन न कहे ॥ ३८ ॥

निवृत्तमदनश्चाथ सूर्योऽपि समपद्यत ।

ग्रीवायां पतितं बीजं सुग्रीवः समजायत ॥ ३९ ॥

सूर्य काम की पीड़ा से मुक्त हुए और गरदन पर गिरे हुए बीर्य से सुग्रीव की उत्पत्ति हुई ॥ ३९ ॥

एवमुत्पाद्य तौ वीरौ वानरेन्द्रौ महाबलौ ।

दत्त्वा तु काञ्चनीं मालां वानरेन्द्रस्य वालिनः ॥ ४० ॥

इस प्रकार महाबली वालि को उत्पन्न कर और उसको काञ्चन की माला दे ॥ ४० ॥

अक्षय्यां गुणसम्पूर्णीं शक्रस्तु त्रिदिवं ययौ ।

सूर्योऽपि स्वसुतस्यैव निरूप्य पवनात्मजम् ॥ ४१ ॥

इन्द्र स्वर्ग को चले गये । यह माला सर्वगुणसम्पन्न और कभी नष्ट न होने वाली थी । सूर्यनारायण भी इस प्रकार महाबली वीर सुग्रीव को उत्पन्न कर और पवननन्दन हनुमान को ॥ ४१ ॥

कृत्येषु व्यवसायेषु जगाम सविताम्बरम् ।

तस्यां निशायां व्युष्टायामुदिते च दिवाकरे ॥ ४२ ॥

अपने पुत्र के कार्यों और व्यवसाय में नियुक्त कर, आकाशमार्ग में हो कर, चले गये । हे राजन् ! उस रात के बीत जाने और सूर्य के उदय होने पर ॥ ४२ ॥

स तद्वानररूपं तु प्रतिपेदे पुनर्वृप ।

स एव वानरो भूत्वा पुत्रौ स्वस्य पुवङ्गमौ ॥ ४३ ॥

हे नृप ! ऋक्षराज पुनः वानर के वानर हो गये । इस प्रकार यह वानर ऋक्षराज अपने दो वानरपुत्रों को ॥ ४३ ॥

पिङ्गेक्षणौ हरिवरौ बलिनौ कामरूपिणौ ।

मधून्यमृतकल्पानि पायितौ तेन तौ तदा ॥ ४४ ॥

जिनके नेत्र पीले थे और जो महाबली एवं इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे, अमृत की समान मधु पिलाने लगे ॥ ४४ ॥

गृह्य ऋक्षरजास्तौ तु ब्रह्मणोऽन्तिकमागमत् ।

दृष्ट्वर्क्षरजसं पुत्रं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४५ ॥

पुनः वानर हो कर ऋक्षराज अपने उन दो वानरपुत्रों को ले कर ब्रह्मा जो के निकट गये । लोकपितामह ब्रह्मा जी ने भी अपने पुत्र ऋक्षराज को देख ॥ ४५ ॥

बहुशः सान्त्वयामास पुत्राभ्यां सहितं हरिम् ।

सान्त्वयित्वा ततः पश्चाद्वदूतमथादिशत् ॥ ४६ ॥

दोनों दक्षों को अपने साथ लिये हुए ऋक्षराज के ब्रह्मा जी ने अनेक प्रकार समझा बुझा कर देवदूत को यह आज्ञा दी ॥ ४६ ॥

गच्छ मद्वचनादूत किञ्चिन्धां नाम वै शुभाम् ।

सा ह्यस्य गुणसम्पन्ना महती च पुरी शुभा ॥ ४७ ॥

कि, हे दूत ! मेरी आज्ञा से तुम ऋक्षराज को साथ ले कर परम सुन्दर नगरी किञ्चिन्धा में जाओ । उस पुरी में सब प्रकार की सुविधा है और वह इनके रहने योग्य है ॥ ४७ ॥

तत्र वानरयूथानि सुवहूनि वसन्ति च ।

बहुरक्षसमाकीर्णा वानरैः कामरूपिभिः ॥ ४८ ॥

वहाँ पर अनेक वानर यूथ रहते हैं । उसमें और भी कामरूपी वानर वास करते हैं ॥ ४८ ॥

पुण्या पण्यवती दुर्गा चातुर्वर्ण्यपुरस्कृता ।

विश्वकर्मकृता दिव्या मन्त्रियोगच्च शोभना ॥ ४९ ॥

वह अनेक रक्तों से भरी पुरी है और दुर्गम हैं । चारों वर्ण के लोग उसमें रहते हैं । बड़ी शुद्ध है, सुन्दर है और व्यापार के लिये प्रसिद्ध है । अथवा उसमें दूकानें भी हैं । मेरो आङ्गा से विश्वकर्मा ने उसकी रचना की है ॥ ४९ ॥

तत्रक्षरजसं दृष्टा सपुत्रं वानरर्षभम् ।

यूथपालान्समाहाय यांश्चान्यान्प्राकृतान्हरीन् ॥५०॥

तुम उसी पुरी में ऋक्तराज को इनके पुत्रों के सहित वसा आओ । तुम यूथपति वानरों तथा अन्य साधारण वानरों को एकत्र कर ॥ ५० ॥

तेषां सम्भाव्य सर्वेषां मदीयं जनसंसदि ।

अभिषेचय राजानमारोप्य महदासने ॥ ५१ ॥

और उनका आदर मान कर सभा के बीच इन्हें राजसिंहासन पर बैठा कर, इनके राजतिलक कर देना ॥ ५१ ॥

दृष्टमात्राश्च ते सर्वे वानरेण च धीमता ।

अस्यक्षरजसो नित्यं भविष्यन्ति वशानुगाः ॥ ५२ ॥

इन बुद्धिमान वानरश्रेष्ठ को देखते ही वे सब वानर सदा के लिये इनके वश में हो, इनके अनुचर हो जायेंगे ॥ ५२ ॥

इत्येवमुक्ते वचने ब्रह्मणा तं हरीश्वरम् ।

पुरतः कृत्य दूतोऽसौ प्रययौ तां पुरीं शुभाम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मा की आङ्गा पा कर, ऋक्षरजा को अपने साथ ले वह देव-  
दूत परम रथ किञ्चिन्धापुरी को गया ॥ ५३ ॥

स प्रविश्यानिलगतिस्तां गुहां वानरोत्तमः ।

स्थापयामास राजानं पितामहनियोगतः ॥ ५४ ॥

वह दूत पवन के समान वेग से पर्वत की धाटी में बसी हुई  
किञ्चिन्धा नगरी में पहुँचा और ब्रह्मा जी की आङ्गा के अनुसार  
उनको राजसिंहासन पर बैठा दिया ॥ ५४ ॥

राज्याभिषेकविधिना स्नातोऽथाभ्यर्चितस्तथा ।

स बद्धमुकुटः श्रीमानभिषिक्तः स्वलंकृतः ॥ ५५ ॥

श्रीमान ऋक्षरजा राज्याभिषेक की विधि के अनुसार स्नान  
कर, सिर पर मुकुट धारण कर तथा उत्तम गहने पहन राजसिंहा-  
सन पर बैठे ॥ ५५ ॥

आङ्गापयामास हरीन्सर्वान्मुदितयानसः ।

सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यां ये पूर्वज्ञमाः ॥ ५६ ॥

ऋक्षरजा सब प्रकार से सम्मानित हो हर्षित चित्त से समुद्र  
सहित सप्तद्वीपमयी पृथिवी पर जितने वानर थे, उन सब पर शासन  
करने लगे ॥ ५६ ॥

वालिसुग्रीवयोरेष एष चक्षरजः पिता ।

जननी चैष तु हरिरित्येतद्द्रद्मस्तु ते ॥ ५७ ॥

यह ऋक्षरजा ही वालि और सुग्रीव के पिता और यही इनकी  
माता थे । वह यही इनका वृत्तान्त है । तुम्हारा मङ्गल हो ॥ ५७ ॥

यश्वैतच्छ्रुवयेद्विद्वान्यश्वैतच्छ्रुणुयान्नरः ।

सिध्यन्ति तस्य कार्यार्था मनसो हर्षवर्धनाः ॥ ५८ ॥

जो विद्वान् इस वृत्तान्त को स्वयं सुनता या दूसरों को सुनाता है, उसका मन हर्षित होता है और उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ५८ ॥

एतच्च सर्वं कथितं मया विभेद

प्रविस्तरेणेह यथार्थतस्तत् ।

उत्पत्तिरेषा रजनीचराणाम्

उक्ता तथैवेह हरीश्वराणाम् ॥ ५९ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु प्रथमः सर्गः ॥

हे प्रभो ! राज्ञसों और वानरों की उत्पत्ति का वृत्तान्त मैंने आपसे जैसा वास्तव में था, विस्तारपूर्वक कहा ॥ ५६ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त पहिला सर्ग समाप्त हुआ ।



प्रक्षिप्तेषु द्वितीयः सर्गः

—::—

एतां श्रुत्वा कथां दिव्यां पौराणीं राघवस्तदा ।

भ्रातृभिः सहितो वीरो विस्मयं परमं ययौ ॥ १ ॥

वीर श्रीरामचन्द्र जी इस दिव्य पौराणिक अथवा पुरातन कथा को सुन अपने भाइयों सहित परम विस्मित हुए ॥ १ ॥

राघवोऽथ क्रुष्णवर्क्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।

कथेयं महती पुण्या त्वत्प्रसादाच्छ्रुता मया ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ऋषि अगस्त्य के वचन सुन बोले कि,  
आपके अनुग्रह से मैंने यह बड़ी पवित्र अथवा बड़ा पुण्य देने वाली  
कथा सुनी ॥ २ ॥

बृहत्कौतूहले चास्मिन्संवृत्ते मुनिपुज्ज्व ।

उत्पत्तिर्यादशी दिव्या वालिसुग्रीवयोर्द्धिज ॥ ३ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस वालि एवं सुग्रीव की दिव्य उत्पत्ति से सम्बन्ध  
रखने वाली ऐसी कथा को सुन, बड़ा ही आश्र्य हुआ है ॥ ३ ॥

किं चित्रं मम ब्रह्मर्थं सुरेन्द्रतपनावुभौ ।

जातौ वानरशादूलौ बलेन बलिनां वरौ ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मर्थ ! जब वानरश्रेष्ठ वालि सुरनाथ इन्द्र के और कपि-  
श्रेष्ठ सुग्रीव भगवान् भुवनभास्कर के पुत्र हैं, तब ये दोनों सर्व-  
श्रेष्ठ बलवान होंगे ही—इसमें आश्र्य ही क्या है ॥ ४ ॥

एवमुक्ते तु रामेण कुम्भयोनिरभाषत ।

एवमेतन्महावाहो वृत्तमासीत्पुरा किल ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का यह वचन सुन कर, कुम्भसम्भव  
अगस्त्य जो ने कहा—हे महावाहो ! सचमुच्र प्राचीन काल में  
ऐसा ही हुआ था ॥ ५ ॥

अथापरां कथां दिव्यां शृणु राजन्सनातनीम् ।

यदर्थं राम वैदेही रावणेन पुरा हृता ॥ ६ ॥

हे राजन् ! एक और दिव्य एवं पुरातन इतिहास सुनिये । हे  
राम ! रावण ने जिस काम के लिये सोता हरी थी ॥ ६ ॥

तत्तेऽहं कीर्तयिष्यामि समाधिं श्रवणे कुरु ।

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतं प्रभुम् ॥ ७ ॥

अब मैं उसी का वर्णन आपसे करता हूँ । आप उसे सावधान हो कर सुनें । हे राम ! पूर्वसत्युग में प्रजापति के पुत्र ॥ ७ ॥

सनत्कुमारमासीनं रावणो राक्षसाधिपः ।

वपुषा सूर्यसङ्काशं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ८ ॥

विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्य कृताञ्जलिः ।

उक्तवान् रावणो राम तमृषि सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥

सूर्य के अमान प्रकाशमान शरीरधारी और बड़े सत्यवादी श्रीसनत्कुमार जी से रावण ने विनय पूर्वक एवं हाथ जोड़ और प्रणाम कर कहा ॥ ८ ॥ ९ ॥

को ह्यस्मिन्प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः ।

यं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून् ॥ १० ॥

हे भगवन् ! इस लोक के अमस्त देवताओं में सब से अधिक बलवान् और सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है ; जिसके सहारे देवगण अपने शत्रु को जीत लेते हैं ॥ १० ॥

कं यजन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः ।

एतन्मे शंस भगवन्विस्तरेण तपोधन ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! ब्राह्मण लोग नित्य किसका पूजन और योगी लोग किसका नित्य ध्यान किया करते हैं ? हे तपोधन ! यह वृत्तान्त मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ११ ॥

विदित्वा हृदगतं तस्य ध्यान दृष्टिर्महायशाः ।

उवाच रावणं प्रेमणा श्रूयतामिति पुत्रक ॥ १२ ॥

महायशस्वी ऋषि सनकुमार जी ध्यान द्वारा रावण के मन की बात जान कर, उससे प्रीति पूर्वक बोले—हे वत्स ! सुनो ॥ १२ ॥

यो वै भर्ता जगत्कृत्स्नं यस्योत्पत्तिं न विद्वहे ।

सुरामुरैर्नेतो नित्यं हरिनारायणः प्रभुः ॥ १३ ॥

जो इस सारे जगत का प्रभु है अर्थात् जो सब का भरण पैषण करता है, जिसकी उत्पत्ति का वृत्तान्त मुझे भी नहीं मालूम, और जिसका पूजन क्या चुर और क्या अचुर, सभी सदैव किया करते हैं, वह श्रीमन्नारायण स्वामी हैं ॥ १३ ॥

यस्य नाभ्युद्द्वो ब्रह्मा विश्वस्य जगतः पतिः ।

येन सर्वमिदं सृष्टं विश्वं स्थावरजड्मम् ॥ १४ ॥

उन्हींकी नाभि मे ब्रह्मा जो उत्पन्न हुए हैं, वे ही इस संसार के स्वामी हैं। उन्हींने इस स्थावरजड्ममय संसार की सृष्टि की है ॥ १४ ॥

तं समाश्रित्य विबुधा विधिना हरिमध्वरे ।

पिबन्ति ह्यमृतं चैव मानिताश्च यजन्ति तम् ॥ १५ ॥

उन्हींके आश्रय में रह कर देवता लोग यज्ञ में विधिवत् अमृतपान करते हैं और सम्मान पाते हैं एवं उन्हीं सर्वेश्वर की सेवा किया करते हैं ॥ १५ ॥

पुराणैश्चैव वेदैश्च पञ्चरात्रैस्तथैव च ।

ध्यायन्ति योगिनो नित्यं क्रतुभिश्च यजन्ति तम् ॥ १६ ॥

वेदों, पुराणों और पञ्चरात्रागमों के अनुसार योगी उनका सदैव ध्यान करते और यज्ञों द्वारा उनको सन्तुष्ट करते हैं ॥ १६ ॥

दैत्यदानवरक्षांसि ये चान्ये चामरद्विषः ।

सर्वाञ्जयति संग्रामे सदा सर्वैः स पूज्यते ॥ १७ ॥

जो दैत्य, दानव और राक्षस हैं तथा जो अन्य जीव देवताओं से बैर किया करते हैं, उन सब को ये ही प्रभु युद्ध में हरा दिया करते हैं और उनके द्वारा वे प्रजित भी होते हैं ॥ १७ ॥

श्रुत्वा महर्षेस्तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।

उवाच प्रणतो भूत्वा पुनरेव महामुनिम् ॥ १८ ॥

राक्षसराज रावण, सनकुमार के ये वचन सुन कर, उनको प्रणाम कर उनसे फिर यह वचन बोला ॥ १८ ॥

दैत्यदानवरक्षांसि ये हताः समरेऽरयः ।

कां गतिं प्रतिपद्यन्ते किं च ते हरिणा हताः ॥ १९ ॥

हे महर्षे ! जो दैत्य, दानव और राक्षसादि देवताओं के हाथ से मारे जाते हैं और जो भगवान् हरि के हाथ से मारे जाते हैं, उनको कौनसी गति मिलती है ? ॥ १९ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः ।

दैवतैर्निहता नित्यं प्राप्नुवन्ति दिवः स्थलम् ॥ २० ॥

पुनस्तस्मात्परिभ्रष्टा जायन्ते वसुधातले ।

पूर्वार्जितैः सुखैर्दुःखैर्जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ २१ ॥

महामुनि सनकुमार जी रावण के वचन सुन कर बोले कि, जो देवताओं के हाथ से मारे जाते हैं, उन्हें स्वर्ग में वास प्राप्त होता है, परन्तु जब उनका पुण्य क्षण हो जाता है तब वे स्वर्ग से भ्रष्ट हो

पृथिवी पर पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। इस प्रकार पूर्वजन्म में सञ्चित सुख दुःख अर्थात् पुण्य पाप के द्वारा वे जन्म लेते और मरते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

ये ये हताशक्रधरेण राज-  
स्त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन ।  
ते ते गतास्तन्निलयं नरेन्द्राः  
क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥ २२ ॥

परन्तु हे राजन् । जो चक्रधारी जनार्दन द्वारा मारे जाते हैं, वे श्रेष्ठजन उन्हींके वैकुण्ठधाम में जाते हैं, अतः उन देवेशनारायण का क्रोध भी बरदान ही के तुल्य है ॥ २२ ॥

श्रुत्वा ततस्तद्वचनं निशाचरः  
सनकुमारस्य मुखाद्विनिर्गतम् ।  
तथा प्रहृष्टः स बभूव विस्मितः  
कथं नुयास्यामि हरिं महाहवे ॥ २३ ॥  
इति प्रक्षिप्तेषु द्वितीयः सर्गः ॥

राक्षस दशग्रीव सनकुमार के इन वचनों को सुन हर्षित एवं विस्मित हो सोचने लगा कि, मेरा और उन हरि का युद्ध किस प्रकार हो ॥ २३ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

## प्रक्षिप्तेषु तृतीयः सर्गः

—::—

एवं चिन्तयतस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।

पुनरेवापरं वाक्यं व्याजहार महामुनिः ॥ १ ॥

जब वह दुष्ट रावण इस प्रकार मन हो मन चिन्ता करने लगा ;  
तब महर्षि सनकुमार जी ने फिर कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

मनसश्चेप्सितं यत्तद्विष्यति महाहवे ।

सुखी भव महाबाहो कञ्चित्कालमुदीक्षय ॥ २ ॥

हे महाबाहो ! जो तुम्हारे मन में इच्छा है वह समर में अवश्य पूरी होगी । तुम तुल्यी रहो ; ( किन्तु अपनी अभीष्ट सिद्ध के लिये ) कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करो ॥ २ ॥

एवं श्रुत्वा महाबाहुस्तमृषिं प्रत्युवाच सः ।

कीदृशं लक्षणं तस्य ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ ३ ॥

महर्षि के ये वचन सुन, महाबीर रावण उनसे कहने लगा —उनकी पहचान क्या है ? सो आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३ ॥

राक्षसेशवचः श्रुत्वा स मुनिः प्रत्यभाषत ।

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये तव राक्षसपुङ्गव ॥ ४ ॥

महामुनि सनकुमार जी राक्षसराज के वचन सुन कर बोले —हे राक्षसनाथ ! सुनो मैं तुमसे सब बातें कहता हूँ ॥ ४ ॥

स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोव्यक्तः सनातनः  
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५ ॥

वे सनातनदेव, अव्यक्त हैं, सूक्ष्म हैं और सर्वव्यापक हैं। वे इस स्थावरजड़मय सारे जगत में व्याप्त हो रहे हैं ॥ ५ ॥

स भूमौ दिवि पाताले पर्वतेषु वनेषु च ।

स्थावरेषु च सर्वेषु नदीषु नगरीषु च ॥ ६ ॥

वे भूमि, स्वर्ग, पाताल, वनों, पर्वतों, समस्त स्थावरों, नदियों और नगरों में (सत्तारूप से) सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ ६ ॥

ओंकारश्चैव सत्यश्च सावित्री पृथिवी च सः ।

धराधरधरो देवो ह्यनन्त इति विश्रुतः ॥ ७ ॥

वे ओंकारस्वरूप एवं सावित्री स्वरूप हैं और वे ही इस पृथिवी को एवं पर्वतों को धारण किये हुए हैं। वे ही धरणीधर अनन्त के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये

दिवाकरश्चैव यमश्च सोमः ।

स एव कालो ह्यनिलोनलश्च

स ब्रह्मरुद्रेन्द्र स एव चापः ॥ ८ ॥

वे ही दिन, वे ही रात, वे ही दोनों सन्ध्या काल, वे ही सूर्य, वे ही चन्द्र, वे ही यम, वे ही काल, वे ही पवन, वे ही अनल, वे ही ब्रह्मा, वे ही रुद्र, वे ही इन्द्र और वे ही जल हैं ॥ ८ ॥

विद्योतति ज्वलति भाति च पातिलोकान्

सुजत्ययं संहरति प्रशास्ति ।

क्रीडां करोत्यव्ययलोकनाथो

विष्णुः पुराणो भवनाशकैकः ॥ ९ ॥

वे ही प्रकाशमान हो कर ज्वाला रूपी शोभा को धारण करते हैं। वे ही लोकों को बनाते, वे ही संहार करते और वे ही शासन करते हैं। उन्होंका यह संसार कीडास्थल है, वे ही विष्णु, वे ही पुराणपुरुष और वे ही एक मात्र (यावत् समस्त दृश्य अदृश्य पदार्थों के) नाशकत्ता हैं ॥ ९ ॥

अथवा बहुनाऽनेन किमुक्तेन दशानन ।

तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १० ॥

हे दशानन ! अब अधिक कहने को आवश्यकता नहीं है ; वे ही चराचरमय तीनों लोकों में व्याप्त हैं ॥ १० ॥

नीलोत्पलदलश्यामः किञ्चल्कारुणवाससा ।

प्रावृट्काले यथा व्योम्नि सतडित्तोयदा यथा ॥ ११ ॥

उनका वर्ण नीले कमल की तरह श्याम है। कमल की पीली केसर जैसे रंग के वक्ष से वे ऐसे शोभित जान पड़ते हैं, जैसे वर्षा ऋतु में विजली से युक्त मेघ छुहावने लगते हैं ॥ ११ ॥

श्रीमान्मेघवपुः श्यामः शुभः पङ्कजलोचनः ।

श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशाङ्ककृतलक्षणः ॥ १२ ॥

इस प्रकार वे मेघ के समान श्याम, कमललोचन, वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिन्ह धारण किये हुए, चन्द्रमा की तरह लोचनानन्ददायी हैं ॥ १२ ॥

तस्य नित्यं शरीरस्था मेघस्येव शतहदाः ।

संग्रामरूपिणो लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

जिस प्रकार विजली सदा मेघ में बनी रहती है, उसी प्रकार संग्रामरूपिणी श्री उनके शरीर में स्थान किये हुए सदा उनके शरीर को ढके रहती है ॥ १३ ॥

न शक्यः स सुरैर्दृष्टुं नासुरैर्न च पन्नगैः ।

यस्य प्रसादं कुरुते स वै तं द्रष्टुमर्हति ॥ १४ ॥

क्या देवता, क्या असुर और क्या नाग—किसीमें यह शक्ति नहीं कि, उनके कोई दर्शन कर सके । किन्तु उनकी जिसके ऊपर कृपा होती है, वही उनके दर्शन पा सकता है ॥ १४ ॥

न हि यज्ञफलैस्तात न तपोभिस्तु सञ्चितैः ।

शक्यते भगवान्दृष्टुं न दानेन न चेज्यया ॥ १५ ॥

तद्वक्तैस्तद् गतप्राणैस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः ।

शक्यते भगवान्दृष्टुं ज्ञाननिर्दग्धकिलिवषैः ॥ १६ ॥

हे तात ! यदि कोई चाहे कि मैं यज्ञ कर के, अथवा तप कर के, अथवा संयम कर के, अथवा विविध प्रकार के दानों को दे कर के, अथवा होम कर के उनके दर्शन करूँ ; तो वह इन कर्मों से भी उनके दर्शन नहीं पा सकता । उनको तो उनके वे भक्त ही देख सकते हैं, जिनके प्राण और जिनका मन उनमें (अनन्य भाव से) लगा हुआ है, जिनकी वे ही गति हैं और जिनके समस्त पाप ज्ञान द्वारा नष्ट हो चुके हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथवा पृच्छय रक्षेन्द्र यदि तं द्रष्टुमिच्छसि ।

कथयिष्यामि ते सर्वं श्रूयतां यदि रोचते ॥ १७ ॥

यदि तुम उनके दर्शन करना चाहते हो तो मैं कहता हूँ। यदि  
सुनने की इच्छा हो तो सुनो ॥ १७ ॥

कृते युगे व्यतीते वै मुखे त्रेतायुगस्य तु ।

हितार्थं देवपत्र्यानां भविता नृपविग्रहः ॥ १८ ॥

सतयुग बीतने और त्रेतायुग के आरम्भ होने पर देवताओं  
और मनुष्यों के हितार्थ वे राजा के रूप में अवतरेंगे ॥ १९ ॥

इक्ष्वाकुणां च यो राजा भाव्यो दशरथो भुवि ।

तस्य सूनुर्महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥ २० ॥

इस भूमण्डल पर इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नाम के एक राजा  
होंगे। उनके श्रीरामचन्द्र नाम का एक महातेजस्वी पुत्र  
जन्मेगा ॥ २१ ॥

महातेजा महाबुद्धिर्महाबलपराक्रमः ।

महाबाहुर्महासत्त्वः क्षमया पृथिवीसमः ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्र जी वडे बुद्धिमान, महाबलवान, महापराक्रमी,  
महाबाहु, महासत्त्व और सहनशीलता में पृथिवी के समान  
होंगे ॥ २० ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरे शत्रुभिस्तदा ।

भविता हि तदा रामो नरोनारायणः प्रभुः ॥ २१ ॥

जैसे सूर्य की ओर कोई नहीं देख सकता, वैसे ही उनके शत्रु  
लोग भी उनकी ओर आंख उठा कर देख तक न सकेंगे। इस  
प्रकार वे श्रीसत्त्वारायण स्वामी, श्रीरामचन्द्र का रूप धारण कर  
इस धराघाम पर अवतोर्ण होंगे ॥ २१ ॥

पितुनियोगात्स विभुर्दण्डके विविधे वने ।

विचरिष्यति धर्मात्मा भ्रात्रा सह महामनाः ॥ २२ ॥

वे महामना, विभु, धर्मात्मा, श्रीरामचन्द्र जी अपने पिता की आङ्गा मान, अपने भाई के सहित दण्डकादि अनेक बनों में घूमेंगे ॥ २२ ॥

तस्य पत्नी महाभागा लक्ष्मीः सीतेति विश्रुता ।

दुहिता जनकस्यैषा उत्थिता वसुधातलात् ॥ २३ ॥

उनकी खी महाभागा लक्ष्मी जी सीता नाम से प्रसिद्ध होंगी । वे महाराज जनक की पुत्री पृथिवी से निकलेगीं ॥ २३ ॥

रूपेणाप्रतिमा लोके सर्वलक्षणलक्षिता ।

छायेवानुगता रामं निशाकरमिव प्रभा ॥ २४ ॥

लोकों में उनके समान रूपवती अन्य कोई खी नहीं निकलेगी । वे समस्त सुखदण्डों से युक्त होंगी । वे अपने पति श्रीरामचन्द्र की ऐसी अनुगामिनी होंगीं, जैसी कि, मनुष्य के शरीर की छाया अथवा चन्द्रमा की चाँदनी है ॥ २४ ॥

शीलाचारगुणोपेता साध्वी धैर्यसमन्विता ।

सहस्रांशो रश्मिरिव होका मूर्तिरिव स्थिता ॥ २५ ॥

वे सीता देवी शील, आचार और सद्गणों से सम्पन्न होंगी । वे पतिव्रता और धैर्ययुक्त होंगी । सूर्य और उनकी किरनों की तरह सीता और श्रीरामचन्द्र की पक मूर्ति होंगी ॥ २५ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात् ।

महतो देवदेवस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च ॥ २६ ॥

हे रावण ! देवदेव, सनातन, अविनाशी, महापुरुष श्री-  
मन्मारायण का यह समस्त वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मैंने तुमसे  
कहा ॥ २६ ॥

एवं श्रुत्वा महाबाहू राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।  
त्वया सह विरोधेच्छुश्चिन्तयामास राघव ॥ २७ ॥

हे राम ! महाबली और प्रतापी राक्षसराज रावण, यह सुन  
कर, तुम्हारे साथ बैर करने का उपाय सोचने लगा ॥ २७ ॥

सनत्कुमारात्तद्वाक्यं चिन्तयानो मुहुर्मुहुः ।  
रावणो मुमुदे श्रीमान्युद्धार्थं विचार ह ॥ २८ ॥

तथा सनत्कुमार जी की कही बातों पर बारंबार विचार करता  
हुआ, रावण अत्यन्त हर्षित हो, युद्ध के लिये हधर उधर घूमने  
फिरने लगा ॥ २८ ॥

श्रुत्वा च तां कथां रामो विस्मयोत्कुछ्लोचनः ।  
शिरसश्चालनं कृत्वा विस्मयं परमं गतः ॥ २९ ॥

श्रीरामचन्द्र जी यह वृत्तान्त सुन कर, विस्मयोत्कुछ्ल नयनों से  
सिर हिला बड़े विस्मित हुए ॥ २९ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं स नरेश्वरस्तदा  
मुदा युतो विस्मयमानचक्षुः ।  
पुनश्च तं ज्ञानवतां प्रधानम्  
उवाच वाक्यं वद मे पुरातनम् ॥ ३० ॥  
इति प्रतिसेषु तृतीयः सर्गः ॥

वे नरश्चेष्ट श्रीरामचन्द्र जी उस समय उन वचनों को सुन, हर्षोकुल पवं विस्मित हो, ज्ञानियों में सर्वोत्तम अगस्त्य जी से फिर बोले कि, धाप मुझे प्राचीन कथा सुनाइये ॥ ३० ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त तीसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—:-:—

### प्रक्षिप्तेषु चतुर्थः सर्गः

—:-:—

ततः पुनर्महातेजाः कुम्भयोनिर्महायशाः ।

उवाच रामं प्रणतं पितामह इवेश्वरम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महायशस्वी कुम्भयोनि अगस्त्य जी,\* प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्र जी से ऐसे ही बोले, मानों ब्रह्मा जी शिव जी से बोलते हों ॥ १ ॥

श्रूयतामिति चोवाच रामं सत्यपराक्रमम् ।

कथाशेषं महातेजाः कथयामास स प्रभुः ॥ २ ॥

वे सत्यपराक्रमो श्रीरामचन्द्र जी से बोले कि, सुनिये । यह कह कर, महातेजस्वी महर्षि अगस्त्य जी ने कथा का अवशिष्टांश कहना आरम्भ किया ॥ २ ॥

यथाख्यानं श्रुतं चैव यथा वृत्तं यथातथा ।

प्रीतात्मा कथयामास राघवाय महामतिः ॥ ३ ॥

वे महामति अगस्त्य जी प्रसन्नचित्त हो जैसी उस समय घटना हुई थी और जैसी उन्होंने सुनी थी वैसी ही ज्यों को त्यों श्रीराम चन्द्र जी को सुनाने लगे ॥ ३ ॥

एतदर्थं महाबाहो रावणेन दुरात्मना ।

सुता जनकराजस्य हृता राम महामते ॥ ४ ॥

हे महाबाहो ! हे महामतिमान श्रीराम ! दुष्टात्मा रावण ने इसी लिये जनकनन्दिनो जानकी को हरा ॥ ४ ॥

एतां कथां महाबाहो नारदः सुमहायशाः ।

कथयामास दुर्धर्षं मेरौ गिरिवरोत्तमे ॥ ५ ॥

हे महाबाहो ! हे महायशस्त्रिन् ! हे दुर्धर्ष ! नारद जो ने मेरु-  
शृङ्ग के ऊपर मुझको यह वृत्तान्त सुनाया था ॥ ५ ॥

देवगन्धर्वसिद्धानामृषीणां च महात्मनाम् ।

कथाशेषं पुनः सेऽथ कथयामास राघव ॥ ६ ॥

हे राघव ! उन्होंने इस वृत्तान्त का अवशिष्टांश देवताओं,  
गन्धर्वों, सिद्धों तथा ऋषियों एवं अन्य महानुभावों के सामने  
कहा था ॥ ६ ॥

नारदः सुमहातेजाः प्रहसन्निव मानद ।

तां कथां शृणु राजेन्द्र महापापप्रणाशनीम् ॥ ७ ॥

हे मानद ! हे राजेन्द्र ! महातेजस्वी नारद जो ने हँस हँस कर  
इसका वर्णन किया था । सो आप इस महापातकनाशनी कथा  
को सुनिये ॥ ७ ॥

यां तु श्रुत्वा महाबाहो क्रुषयो दैवतैः सह ।

अच्छुस्तं नारदं सर्वे हर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ८ ॥

हे महाबाहो ! इस कथा को सुन देवताओं और ऋषियों ने  
हर्षोक्तुल्यनयन हो, नारद जो से कहा ॥ ८ ॥

यश्चेमां श्रावयेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तिः ।  
स पुत्रपौत्रवान् राम स्वर्गलोके महीयते ॥ १ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु चतुर्थः सर्गः ॥

जो कोई भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनेगा या सुनावेगा वह पुत्रपौत्रयुक हो कर, स्वर्गलोक में सम्मानित होगा ॥ ६ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त चौथा सर्ग पूरा हुआ ।

— : \* : —

### प्रक्षिप्तेषु पञ्चमः सर्गः

— : ० : —

ततः स राक्षसो राम पर्यटन्पृथिवीतले ।  
विजयार्थी महाशूरै राक्षसैः परिवारितः ॥ १ ॥

हे राम ! वह रावण बड़े बड़े शूरवोर राक्षसों को अपने साथ ले, दिग्बिजय की अभिलाषा से पृथिवी पर शूमने लगा ॥ १ ॥

दैत्यदानवरक्षः सु यं शृणोति बलाधिकम् ।  
तमाहयति युद्धार्थी रावणो बलदर्पितः ॥ २ ॥

बलदर्पित रावण, दैत्यों, दानवों अथवा राक्षसों में से जिस किसी को भी बलवान सुनता, उसीके पास जा कर, उसे लड़ने के लिये ललकारता था ॥ २ ॥

एवं स पर्यटनसर्वा पृथिवीं पृथिवीपते ।  
ब्रह्मलोकान्निवर्तन्तं समासाद्वाथ रावणः ॥ ३ ॥

हे पृथिवीनाथ ! इस प्रकार रावण समस्त पृथिवी पर विचर रहा था कि, ( एक दिन ) ब्रह्मलोक से लैट कर आते हुए नारद जी से उसकी भेंट हो गयी ॥ ३ ॥

व्रजन्तं पेघपृष्ठस्थमंशुमन्तमिवापरम् ।

तमभिसृत्य प्रीतात्मा ह्यभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥

दूसरे सूर्य के समान श्रीनारद जी मेघ पर सवार थे । ( उन्हें देख ) रावण ने हर्षित हो, उनके निकट जा कर और हाथ जोड़ कर, उनको प्रणाम किया ॥ ४ ॥

उवाच हृष्टमनसा नारदं रावणस्तदा ।

आब्रह्मभवनं लोकास्त्वया दृष्टा ह्यनेकशः ॥ ५ ॥

कस्मिंल्लोके महाभाग मानवा बलवत्तराः ।

येषुमिच्छामि तैः सार्धं यथाकामं यदच्छ्या ॥ ६ ॥

तदनन्तर हर्षित अन्तःकरण से रावण ने श्रीनारद जी से कहा—हे भगवन् ! आपने तो धूमते फिरते इस ब्रह्माण्ड को अनेक बार देखा ही होगा । अतः आप मुझे बतलावें कि, किस लोक के निवासी बड़े बलवान हैं । क्योंकि मैं बलवानों के साथ युद्ध करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु नारदः प्रत्युवाच तम् ।

अस्ति राजन्महाद्वीपं क्षीरोदस्य समीपतः ॥ ७ ॥

इस पर नारद जी ने कुछ देर सोच कर रावण से कहा—हे राजन् ! क्षीरसागर के समीप एक महाद्वीप है ॥ ७ ॥

तत्र ते चन्द्र सङ्काशा मानवाः सुमहावलाः ।  
महाकाया महावीर्या मेघस्तनितनिस्वनाः ॥ ८ ॥

वहाँ के रहने वाले लोग चन्द्र के समान प्रभावान् अथवा शुक्र-  
वर्ण, महावली और बड़े लंबे चौड़े डीलडौल के हैं । वे बड़े पराक्रमी  
और मेघ के समान गर्जन कर बोलने वाले हैं ॥ ८ ॥

महामात्रा धैर्यवन्तो महापरिघबाहवः ।  
श्वेतद्वीपे मया दृष्टा मानवा राक्षसाधिप ॥ ९ ॥  
बलवीर्यसमोपेतान्यादशान्स्त्रमिहेच्छसि ।  
नारदस्य वचः श्रुत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ १० ॥

वे प्रायः सभी प्रधान हैं और धैर्यवान हैं । उनकी भुजाएँ बड़े  
बड़े परिधों के समान हैं । हे राक्षसराज ! ऐसे प्राणी मैंने श्वेत-  
द्वीप में देखे हैं । जैसे बलवान् परं पराक्रमी लोगों की तुम तलाश  
में हो, वहाँ वैसे ही लोग रहते हैं । नारद जी के वचन सुन रावण  
बोला ॥ ९ ॥ १० ॥

कथं नारद जायन्ते तस्मिन् द्वीपे महावलाः ।  
श्वेतद्वीपे कथं वासः प्राप्स्तैस्तु महात्मभिः ॥ ११ ॥

हे नारद ! वहाँ इस प्रकार के महावली लोग क्यों होते हैं ?  
और उन महात्मा लोगों को श्वेतद्वीप में रहने का स्थान क्यों  
कर मिल गया ? ॥ ११ ॥

एतन्मेसर्वमाख्याहि प्रभो नारद तत्त्वतः ।  
त्वया दृष्टं जगत्सर्वं हस्तामलकवत्सदा ॥ १२ ॥

हे महाराज नारद जी ! आपके लिये तो यह सारा जगत हस्तामलकवत् हो रहा है । अतः आप मुझे वहाँ का सारा वृत्तान्त ठीक सुनाइये ॥ १२ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा नारदः प्रत्युवाच ह ।

अनन्यमनसो नित्यं नारायणपरायणाः ॥ १३ ॥

तदाराधन सक्ताश्च तच्चित्तास्तत्परायणाः ।

एकान्त भावानुगतास्ते नरा राक्षसाधिप ॥ १४ ॥

रावण के वचन सुन कर देवर्षि नारद जी बोले कि, हे राक्षस-राज ! वहाँ वे ही लोग रहते हैं, जो या तो अनन्यमना हो श्रीमन्नारायण को भजा करते हैं, उन्हींके आराधन में सदा तथर रहते हैं और जो उनके भक्त हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

तच्चित्तास्तद्गत प्राणा नरानारायणं सदा ।

श्वेतद्वीपे तु तैर्वास अर्जितः सुमहात्मभिः ॥ १५ ॥

जो नर सदा नारायण में अपने मन और प्राण लगाये रहते हैं, वे ही महात्मा अपने तपःप्रभाव से श्वेतद्वीप में निवास करते हैं ॥ १५ ॥

ये हता लोकनाथेन शार्ङ्गमानम्य संयुगे ।

चक्रायुधेन देवेन तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १६ ॥

अथवा चक्रधारी लोकनाथ श्रीमन्नारायण अपने शार्ङ्गधनुष से युद्ध में जिनको मारते हैं; वे लोग भी ( वहाँ अथवा ) स्वर्ग में वास करते हैं ॥ १६ ॥

न हि यज्ञफलैस्तात न तपोभिर्न संयमैः ।

न च दानफलैर्मुख्यैः स लोकः प्राप्यते सुखम् ॥ १७ ॥

हे तात ! क्या यज्ञ, क्या तप, क्या धन्य समस्त मुख्य  
मुख्य दानादि साधनों में से किसी से भी वह लोक प्राप्त नहीं हो  
सकता ॥ १५ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवः मुविस्मितः ।

ध्यात्वा तु सुचिरं कालं तेन योत्स्यामि संयुगे ॥ १६ ॥

नारद जी के वचन सुन रावण विस्मित हो कुछ देर तक यह  
सोचता रहा कि, मैं उन देवों के देव के साथ युद्ध करूँगा ॥ १६ ॥

आपृच्छ्य नारदं प्रायाच्छ्वेतद्वीपाय रावणः ।

नारदोपि चिरं ध्यात्वा कौतूहलसमान्वतः ॥ १७ ॥

तदनन्तर नारद जी से विदा माँग, रावण श्वेतद्वीप को चला  
गया । नारद जी भी बहुत देर तक विचार कर और विस्मित  
हो ॥ १८ ॥

दिद्धुः परमाश्र्यं तत्रैव त्वरितं ययौ ।

स हि केलिकरो विप्रो नित्यं च समरप्रियः ॥ २० ॥

इस आश्र्य को देखने के लिये नारद जी भी तुरन्त ही वहीं  
गये । क्योंकि नारद जी भी तो कौतुकी और युद्धप्रिय ठहरे ॥ २० ॥

रावणोपि ययौ तत्र राक्षसैः सह राघव ।

यहता सिंहनादेन दारयन्स दिशोदश ॥ २१ ॥

हे राघव ! वेर सिंहनाद से दसों दिशाओं को विदीर्ण करता हुआ  
और राक्षसों को साथ लिये हुए रावण भी श्वेतद्वीप में पहुँचा ॥ २१ ॥

गते तु नारदे तत्र रावणोपि महायशाः ।

प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं दुर्लभं यत्सुरैरपि ॥ २२ ॥

नारद जी के वहाँ पहुँचने पर महायशस्वी रावण भी उस श्वेतद्वीप नामक महाद्वीप में पहुँचा, जहाँ पहुँचना देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥ २२ ॥

तेजसा तस्य द्वीपस्य रावणस्य बलीयसः ।

तत्स्य पुष्पकं यानं वातवेगसमाहतम् ॥ २३ ॥

बलवान् रावण का विमान वहाँ पहुँचा तो, परन्तु उस द्वीप में पवन का ऐसा वेग था कि, पवन के झकझोरों से पुष्पक विमान झकझोरा जा कर ॥ २३ ॥

अवस्थातुं न शक्रोति वाताहत इवाम्बुदः ।

सचिवा राक्षसेन्द्रस्य द्वीपमासाद्य दुर्दशम् ॥ २४ ॥

वैसे ही वहाँ ठहर न सका जैसे पवन के झकझोरों से बादल नहीं ठहर सकते । उस दुर्दर्श द्वीप के सभी पहुँच कर, रावण के मंत्री ॥ २४ ॥

अब्रुवन् रावणं भीता राक्षसा जातसाध्वसाः ।

राक्षसेन्द्र वर्य मूढा भ्रष्टसंज्ञा विचेतसः ॥ २५ ॥

डराते डराते राक्षसराज रावण से बोले, हे निशाचरराज ! हम लोग तो मारे भय के जड़वत् चेतनाहीन हो गये हैं ॥ २५ ॥

अवस्थातुं न शक्षयामो युद्धं कर्तुं कथञ्चन ।

एवमुक्त्वा दुदुवुस्ते सर्व एव निशाचराः ॥ २६ ॥

यहाँ तक कि, यहाँ हम लोग किसी यकार भी ठहर नहीं सकते । युद्ध की बात तो जाने दीजिये । यह कह कर, वे समस्त राक्षस दसों दिशाओं को भागने लगे ॥ २६ ॥

रावणोपि हि तद्यानं पुष्पकं हेमभूषितम् ।

विसर्जयामास तदा सह तैः क्षणदाचरैः ॥ २७ ॥

तब रावण ने उन सब राक्षसों सहित उस मुर्वर्णभूषित पुष्पक विमान को छोड़ दिया ॥ २७ ॥

गतं तु पुष्पकं राम रावणो राक्षसाधिपः ।

कृत्वारूपं महाभीमं सर्वराक्षसवर्जितः ॥ २८ ॥

तदनन्तर पुष्पक विमान के चले जाने पर, राक्षसराज रावण महाभयानक शक्ति बना और सब राक्षसों को छोड़ ॥ २८ ॥

प्रविवेश तदा तस्मिन् श्वेद्वीपे स रावणः ।

प्रविशन्नेव तत्राशु नारीभिरूपलक्षितः ॥ २९ ॥

उस द्वीप में अकला ही गया । वहाँ पहुँचते ही बहुत सी स्त्रियों ने उसको देखा ॥ २९ ॥

एकया स स्मितं कृत्वा हस्ते गृह्ण दशाननम् ।

पृष्ठश्चागमनं ब्रूहि किमर्थमिह चागतः ॥ ३० ॥

उन स्त्रियों के गिरोह में से एक स्त्री ने रावण का हाथ पकड़ कर और हँस कर पूँछा—तू यहाँ क्यों आया ? तू अपने यहाँ आने का कारण बतला ॥ ३० ॥

को वा त्वं कस्य वा पुत्रः केन वा प्रहितो वद ।

इत्युक्तो रावणो राजन् क्रुद्धो वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

तू कौन है ? तू किसका पुत्र है ? तुझे किसने भेजा है—तो सब बतला । हे राजन् ! उस स्त्री के ये वचन सुन कर, और क्रोध में भर कर, रावण ने कहा ॥ ३१ ॥

अहं विश्रवसः पुत्रो रावणो नाम राक्षसः ।

युद्धार्थमिह सम्प्राप्तो न च पश्यामि कञ्चन ॥ ३२ ॥

मैं विश्रवा सुनि का पुत्र हूँ । मेरा रावण नाम है । मैं लड़ने की इच्छा से यहाँ आया हूँ, परन्तु मुझे तो यहाँ कोई ( वीर पुरुष ) देख ही नहीं पड़ता ॥ ३२ ॥

एवं कथयतस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।

प्राहसंस्ते ततः सर्वे सुख्नं युवतीजनाः ॥ ३३ ॥

जब उस दुष्ट ने इस प्रकार कहा, तब वे सब युवतियाँ मधुर स्वर से हँसने लगी ॥ ३३ ॥

तासामेका ततः क्रुद्धा बालवदगृह्ण लीलया ।

भ्रामितस्तु सखीमध्ये मध्ये गृह्ण दशाननम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर उनमें से एक स्त्री ने क्रुद्ध हो अनायास रावण को ( एक क्षोटे ) लड़के की तरह एकड़ लिया और उसकी कमर एकड़ वह रावण को अपनी सखियों के बीच बुमाने लगी ॥ ३५ ॥

सखीमन्यां समाहूय पश्य त्वं कीटकं धृतम् ।

दशास्यं विंशतिभुजं कृष्णाञ्जनसमप्रभम् ॥ ३५ ॥

और एक दूसरी सखी को बुला कर बोली, देखो, मैंने एक कीड़ा एकड़ा है । यह कीड़ा कैसा अद्भुत है । इसके दस तो सुँह हैं और बीस भुजाएं हैं । इसके शरीर की रंगत काजल के ढेर की तरह कैसी अच्छी है ॥ ३५ ॥

इस्ताद्दस्तं च स क्षिप्तो भ्राम्यते भ्रमलालसः ।

भ्राम्यमाणेन बलिना राक्षसेन विपश्चिता ॥ ३६ ॥

उस लड़ी के हाथ से ( कौतुकवश ) रावण को दूसरी लड़ी ने ले लिया । उसने भी रावण को घुमाया । ( इसी प्रकार तीसरी चौथी पांचवीं ) लड़ियों ने किया । सारांश यह कि, वे सब लड़ियाँ हाथों हाथ उसको ले कर खूब घुमाने लगीं । इस प्रकार जब बलवान् विद्वान् रावण घुमाया गया ॥ ३५ ॥

पाणवेकाथ सन्दष्टा रोषेण वनिता शुभा ।

मुक्तस्तया शुभः कीटो धुन्वन्त्या हस्त वेदनात् ॥३६॥

तब उसने अत्यन्त कुद्ध ही एक लड़ी के हाथ में काट लिया । उस लड़ी ने झट रावण को क्षोड़ दिया और पीड़ा के मारे वह अपना हाथ झटकारने लगी ॥ ३७ ॥

गृहीत्वान्या तु रक्षेन्द्रमुत्पपात विहायसा ।

ततस्तामपि संकुद्धो विद्वार नखैर्भृशम् ॥ ३८ ॥

यह देख एक दूसरी लड़ी रावण को पकड़ कर आकाश में उड़ गयी ; परन्तु रावण ने क्रोध में भर उसे भी नखों से बहुत नोचा खसोटा ॥ ३८ ॥

तया सह विनिर्धृतः सहसैव निशाचरः ।

पपात सोऽभ्यसो मध्ये सागरस्य भयातुरः ॥ ३९ ॥

तब तो उस लड़ी ने झटका दे कर रावण को ऐसा फैंका कि, वह भयातुर रावण धड़ाम से समुद्र में जा गिरा ॥ ३९ ॥

पर्वतस्यैव शिखरं यथा वज्रविदारितम् ।

प्रापत्सागरजले तथासौ विनिपातितः ॥ ४० ॥

जैसे वज्रप्रहार से टूट कर पर्वतशिखर समुद्र में गिर पड़ता है, वैसे ही रावण भी उस खाके झटकारने से समुद्र में गिरा ॥ ४० ॥

एवं स रावणो राम श्वेतद्वीपनिवासिभिः ।

युवतीभिर्विगृह्याशु भ्रामितश्च ततस्ततः ॥ ४१ ॥

हे राम ! श्वेतद्वीप को रहने वाली छियों ने बड़ी शोषिता से रावण को फिर पकड़ लिया और वे फिर उसे बार बार घुमाने लगे ॥ ४१ ॥

नारदोऽपि महातेजा रावणं प्राप्य धर्षितम् ।

विस्मयं सुचिरं कृत्वा प्रजहास ननर्त च ॥ ४२ ॥

उस समय महातेजस्वी नारद जी रावण की ऐसी दुर्दशा देख कर, वडे विस्मित हुए और अदृहास करते हुए नाचने लगे ॥ ४२ ॥

एतदर्थं महावाहो रावणेन दुरात्मना ।

विज्ञायापहृतासीता त्वत्तो मरणकांक्षया ॥ ४३ ॥

हे महावाहो ! दुरात्मा रावण ने इसी लिये आपके हाथ से मारे जाने की अभिलाषा से प्रेरित हो कर ही, सीता हरी थी ॥ ४३ ॥

भवान्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।

शार्ङ्गपद्मायुधो वज्री सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ४४ ॥

आप शङ्ख-चक्र-गदा-धारी श्रीमन्नारायण हैं, आपके हाथों में शार्ङ्गधनुष, पद्म, वज्रादि आयुध हैं। आपको सब देवता प्रणाम किया करते हैं ॥ ४४ ॥

श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदेवाभिपूजितः ।  
पद्मनाभो महायोगी भक्तानामभयप्रदः ॥ ४५ ॥

आप समस्त देवताओं से पूजित हैं, आपही श्रीवत्साङ्कुत हृषी-  
केश हैं। आप ही महायोगी पद्मनाभ हैं और भक्तजनों को अभय  
करने वाले हैं ॥ ४५ ॥

वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।  
किं न वेत्सि त्वं मात्मानं यथा नारायणोह्नहम् ॥ ४६ ॥

आपने रावण का वध करने के लिये यह मनुष्य रूप धारण  
किया है। ज्ञा आप अपने को नारायण नहीं समझते हैं ? ॥ ४६ ॥

मा मुह्यस्य महाभाग स्पर चात्मानमात्मना ।  
गुह्याद्गुह्यतरस्त्वं हि ह्येवमाह पितामहः ॥ ४७ ॥

हे महाभाग ! आप मोह में न फँसिये। आप अपने को अपने  
आप जान लोजिये। ब्रह्मा जी ने स्वयं कहा है कि, आप गुप्त से  
भी गुप्त हैं ॥ ४७ ॥

त्रिगुणश्च त्रिवेदी च त्रिधामा च त्रिराघव ।  
त्रिकालकर्म त्रैविद्य त्रिदशारिप्रमर्दन ॥ ४८ ॥

हे राघव ! आप त्रिगुण-स्वरूप हैं, आप त्रिवेदी हैं, आप ही  
त्रिधामा ( स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल ) हैं । भूत, भविष्य,  
वर्त्तमान शर्थात् तीनों कालों में आपके काम होते रहते हैं । आप  
धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद के पारदर्शी हैं । आप देवताओं  
के शत्रु का संहार करने वाले हैं ॥ ४८ ॥

भयाक्रान्तास्त्रयो लोकाः पुराणैर्विक्रमैस्त्रिभिः ।

त्वं महेन्द्रानुजः श्रीमान्बलिबन्धनकारणात् ॥ ४९ ॥

आप इन्द्र के क्षेत्रे भाई हैं। आपने वामनावतार धारण कर, बलि को बांधा और पुगातन काल में विविक्षण हो त्रिलोकी को नाप लिया था ॥ ४९ ॥

अदित्या गर्भसम्भूतो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ।

लोकाननुग्रहीतुं वै प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ ५० ॥

आप अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। आप ही सनातन विष्णु भगवान् हैं। आपने सब पर कृपा करने के लिये ही यह मनुष्य शरीर धारण किया है ॥ ५० ॥

तदिदं साधितं कार्यं सुराणां सुरसत्तम ।

निहतो रावणः पापः सपुत्रगणवान्धवः ॥ ५१ ॥

हे सुरश्रेष्ठ ! आपने पुन्र, बन्धु वान्धव तथा सेना सहित पापी रावण को युद्ध में मार कर, देवताओं का कार्य पूरा किया है ॥ ५१ ॥

प्रहृष्टाश्च सुराः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।

प्रशान्तं च जगत्सर्वं त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ ५२ ॥

हे सुरेश्वर ! इससे समस्त देवता और तपोधन ऋषि प्रसन्न हुए हैं, और आपकी कृपा से सारे जगत् की शान्ति प्राप्त हुई है ॥ ५२ ॥

सीता लक्ष्मीर्घाभागा सम्भूता वसुधातलात् ।

त्वदर्थमिह चोत्पन्ना जनकस्य गृहे प्रभो ॥ ५३ ॥

हे प्रभो ! महाभागा लक्ष्मी जी सीता जी बन कर पृथिवी पर अवतीर्ण हुईं और आपके लिये राजा जनक के घर में जनक की पुत्री कहलाई हैं ॥ ५३ ॥

लङ्घामानीय यत्नेन मातेव परिरक्षिता ।

एवमेतत्समाख्यातं तव राम महायशः ॥ ५४ ॥

हे प्रभो ! रावण ने इनको लङ्घा में ले जा कर अति सावधानी से माता की तरह इनकी रक्ता की । हे महायशस्वी राम ! यह सारा वृत्तान्त मैंने आपको सुनाया ॥ ५४ ॥

ममापि नारदेनोक्तमृषिणा दीर्घजीविना ।

यथा सनत्कुमारेण व्याख्यातं तस्य रक्षसः ॥ ५५ ॥

तेनापि च तदेवाशु कृतं सर्वमशेषतः ।

यश्वैतच्छ्रावयेच्छ्राद्धेविद्वान्ब्राह्मणसन्निधौ ॥ ५६ ॥

अन्नं तदक्षयं दत्तं पितृणामुपतिष्ठति ।

एतां श्रुत्वा कथां दिव्यां रामो राजीवलोचनः ॥ ५७ ॥

दीर्घजीवो देवर्षि नारद जी ने मुझे यह कथा सुनाई थी । श्रीसनत्कुमार जी ने रावण से जैसे कहा था तड़नुसार ही रावण ने किया । हे रघुवीर ! जो लोग श्राद्ध में ( ब्राह्मणभोजन के समय ) विद्वान् ब्राह्मण को इसे सुनाते हैं, उनका दिवा हुआ अन्न; पितरों के लिये अक्षय्य हो कर पहुँचता है । इस दिव्य कथा को सुन कर, राजीवलोचन श्रीरामचन्द्र जी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

परं विस्पयमापन्नो भ्रातृभिः सह राघवः ।

वानराः सह सुग्रीवा राक्षसाः सविभीषणाः ॥ ५८ ॥

अपने भाइयों सहित परम विस्मित हुए । चानरों सहित सुग्रीव, राज्ञसों सहित विभीषण ॥ ५८ ॥

राजानश्च सहामात्या ये चान्येऽपि समागताः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्षसमन्विताः ॥ ५९ ॥

अपने अपने मंत्रियों सहित समागत राजा गण, तथा अन्य वहाँ समागत धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ॥ ६० ॥

सर्वे चोत्कुल्लनयनाः सर्वे हर्षसमन्विताः ।

राममेवानुपश्यन्ति भृशमत्यन्तहर्षिताः ॥ ६० ॥

चकित हुए और अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रसन्न ही श्रीरामचन्द्र जी को निहारने लगे ॥ ६० ॥

ततोऽगस्त्यो महातेजा राघवं चेदमवीत् ।

दृष्टाः सभाजिताश्चापि राम यास्यामहे वयम् ।

एवमुक्ता गताः सर्वे पूजितास्ते यथागतम् ॥ ६१ ॥

इति प्रक्षिप्तेषु पञ्चमः सर्गः ॥

तदनन्तर महातेजस्यी अगस्त्य जी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा— हे राम ! मैंने आपके दर्शन पाये और मेरा सम्मान भी हुआ । अतः अब मैं जाऊँगा । इस प्रकार वे सब ऋषि सम्मानित हो जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये ॥ ६१ ॥

उत्तरकाण्ड का प्रक्षिप्त पांचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

## अष्टत्रिंशः सर्गः

—०१—

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः ।

प्रशासत्सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥

महावली रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी सम्पूर्ण पृथिवीमण्डल पर राज्य करते हुए पुरवासियों के ऊपर शासन करने लगे ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहःसु वैदेहं मिथिलाधिपम् ।

राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

कुछ दिनों बाद श्रीरामचन्द्र जी मिथिला के राजा जनक जी से हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ २ ॥

भवान्हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम् ।

भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥

महाराज ! आप सब प्रकार हमारे रक्षक हैं और हम आप ही के पाले हुए हैं । मैंने आप ही के उत्र तेज की सहायता से रावण को मारा है ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः ।

अतुलाः प्रीतयो राजनसम्बन्धकपुरोगमाः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! मिथिला और इक्ष्वाकुकुल की, इस अनुपम सम्बन्ध द्वारा, आपस में बड़ी प्रीति है ॥ ४ ॥

तद्वान् स्वपुरं यातु रत्न्यादाय पार्थिव ।

भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतश्चानुयास्यति ॥ ५ ॥

हे पृथिवीनाथ ! अब आप अपनी राजधानी को पधारिये । बिदाई की श्रेष्ठ वस्तुओं को ले कर, भरत जी आपकी सहायता के लिये आपके पीछे पीछे जायगे ॥ ५ ॥

स तथेति ततः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ।  
प्रीतोऽस्मि भवता राजन्दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥

राजा जनक, श्रीरामचन्द्र जी के वचनों को मान कर उनसे बोले—हे राजन् ! मैं आपकी नीतिमत्ता देख और आपका दर्शन कर प्रसन्न हुआ ॥ ६ ॥

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं सञ्चितानि वै ।  
दुहित्रोस्तान्यहं राजन्सर्वाण्येव ददामि वै ॥ ७ ॥

आपने मुझे देने को जो वस्तुएँ इकट्ठी की हैं, मैं वे समस्त वस्तुएँ अपनी बेटियों को दिये जाता हूँ ॥ ७ ॥

ततः प्रयाते जनके केक्यं मातुलं प्रभुम् ।  
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयाद्राक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

जब राजा जनक चले गये, तब श्रीरामचन्द्र जी ने हाथ जोड़ कर, विनोदभाव से केक्यराजपुत्र मामा युधाजित से कहा ॥ ८ ॥

इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः ।  
आयत्तास्त्वं हि नो राजन् गतिश्च पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥

हे मामा ! मैं, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आप ही के हैं और अयोध्या का यह समूचा राज्य भी आपका है। आप सब प्रकार से हम लोगों के उपकारकर्ता हैं ॥ ९ ॥

राजा हि वृद्धः सन्ताप त्वदर्थमुपयास्यति ।

तस्मादगमनमद्यैव रोचते तत्र पार्थिव ॥ १० ॥

केकयराज वृद्ध हैं । वे आपके लिये सन्ताप होते होंगे । अतः  
मेरी समझ में आज ही आपका जाना उचित है ॥ १० ॥

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोनुऽगमिष्यते ।

धनमादाय बहुलं रत्नानि विविधानि च ॥ ११ ॥

विदा की भैंट में बहुत सा धन और विविध प्रकार के रत्न ले  
कर, लक्ष्मण आपके पीछे पीछे जायगे ॥ ११ ॥

युद्धाजित्तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव ।

रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्वति ॥ १२ ॥

तब युधाजित ने जाना स्वीकार करते हुए कहा—हे रामचन्द्र !  
यह सारा धन और रत्न अक्षय है। कर आप ही के पास रहें ॥ १२ ॥

प्रदक्षिणं च राजानं कृत्वा केकयवर्धनः ।

रामेण च कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥ १३ ॥

प्रथम श्रीरामचन्द्र जो ने प्रदक्षिणा कर के उनको प्रणाम किया ।  
पीछे केकयराजकुमार युधाजित ने श्रीरामचन्द्र जो की प्रदक्षिणा  
कर और उनको प्रणाम कर ॥ १३ ॥

लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः ।

द्वतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह बासवः ॥ १४ ॥

लक्ष्मण सहित वहाँ से ऐसे चले जैसे वृत्रासुर के मारे जाने  
पर इन्द्र, भगवान् विष्णु के साथ चले थे ॥ १४ ॥

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।

प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमव्रवीत् ॥ १५ ॥

उनको विदा कर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मित्र काशीनरेश राजा प्रतर्दन को गले लगा कर कहा ॥ १५ ॥

दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम् ।

उद्योगश्च त्वया राजन्भरतेन कृतः सह ॥ १६ ॥

हे राजन् ! आपने प्रीति दिखलाई और परम सौहार्द का परिचय दिया । आपने भरत के साथ उद्योग भी किया ॥ १६ ॥

[ नोट—भूषणटीकाकार का मत है कि “रावणसंहारार्थ काशीराजेन संगमिति सिद्धम् ” । अर्थात् रावण के साथ जिस समय श्रीरामचन्द्र जी का युद्ध हो रहा था, उस समय भरत जी के साथ लड़ा में जा श्रीरामचन्द्र जी की सहायता करने के लिये राजा प्रतर्दन ने यत्र किया था । ]

तद्वानन्द्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज ।

रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम् ॥ १७ ॥

अब आप रमणीय, सुरक्षित और पनोहर नगरद्वारों से सुशोभित वाराणसी नगरी को पधारिये ॥ १७ ॥

एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात् ।

पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥ १८ ॥

यह कह कर धर्मात्मा काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्र जी अपने सिंहासन से उठे और सदा अपने हृदय में रहने वाले राजा प्रतर्दन को गले लगाया ॥ १८ ॥

१ निरन्तरमुरोगतम्—उद्योगतं यथा भवति तथा निरन्तरं गाढ़े पर्यष्वजत । ( गो० )

विसर्जयामास तदा कौसल्याप्रीतिवर्धनः ।

राघवेण कृतानुज्ञः काशेयो ह्यकृतोभयः ॥ १९ ॥

फिर कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने उनको विदा किया । निढ़र काशिराज भी श्रीरामचन्द्र जी की आङ्खा पा कर ॥ १६ ॥

वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः ।

विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन् ॥ २० ॥

और श्रीरामचन्द्र जी से विदा किये जा कर, तुरन्त काशी को चल दिये । काशीनाथ को विदा कर, अन्य तीन सौ राजाओं ॥२०॥

प्रहसन् राघवो वाक्यमुवाच मधुराभरम् ।

भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ॥ २१ ॥

से श्रीरामचन्द्र जीं मुसक्याते हुए मधुर वाणी से बोले—आप लोगों की हम में निश्चल प्रीति है जो आपके तेज से रक्षित है ॥२१॥

धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा ।

युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम् ॥ २२ ॥

हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः ।

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः ॥ २३ ॥

आपकी धर्मपरायणता, आपके सदा सत्यव्यवहार, आपके अनुभव और तेज के प्रभाव ही से दुष्टस्वभाव एवं दुर्बुद्धि राक्षसाधम रावण मारा गया है । मैं तो उसका वध करने में केवल, निमित्त मात्र हूँ । वह आप ही के तेज एवं प्रभाव ( इकबाल ) से मारा गया है ॥२२॥२३॥

रावणः सगणो युड्हे सपुत्रामात्यबान्धवः ।

भवन्तश्च समानीता भरतेन महात्मना ॥ २४ ॥

सो भी नह अकेला नहों बलिक सेना, मंत्री तथा अपने बंधु-  
बाध्यवों सहित मारा गया है । ( मुझे मालूम हुआ है कि ) महात्मा  
भरत जी ने आप लोगों को यहाँ बुलाया था ॥ २४ ॥

**श्रुत्वा ज्ञनकराजस्य काननात्तनयां हृताम् ।**

**उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥**

वन में सोता के हरे जाने का समाचार सुन कर, भरत ने आप  
को यहाँ बुलाया और आप सब महानुभाव राजा लोग युद्ध में  
सम्मिलत होने को तैयार थे ॥ २५ ॥

**कालोऽप्यतीतः सुमहान्गमनं रोचयाम्यतः ।**

**प्रत्युचुस्तं च राजानो हर्षेण महता दृताः ॥ २६ ॥**

यहाँ आये आप लोगों को बहुत दिन बीत गये—अतः मैं चाहता  
हूँ कि अब आप लोग अपनी अपनी राजधानियों को पधारें । तब  
वे सब राजा लोग परमहर्षित हो श्रीरामचन्द्र जी से बोले ॥ २६ ॥

**दिष्ट्या त्वं विजयी राम राज्यं चापि प्रतिष्ठितम् ।**

**दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः ॥ २७ ॥**

हे महाराज ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, आपकी जीत हुई  
और यह राज्य भी ( प्रतिष्ठापूर्वक ) स्थिर\* बना रहा । यह भी

\* कैकेयी की प्रेरणा से श्रीरामचन्द्र जी के बन में जाने में राज-  
नीति-विशारदों का अनुमान था कि, वनवास की अवधि पूरी होने पर जब  
श्रीरामचन्द्र जी लौटेंगे ; तब अयोध्या के राज्य का भाइयों में बँटवारा होगा  
और अयोध्या का विशाल राज्य दुकड़े दुकड़े हो जायगा । किन्तु ऐसा न हुआ  
यह देख कर ही राजा लोग अयोध्या के राज्य को स्थिर देख अपना सन्तोष  
प्रकट करते हैं ।

सैभाष्य की बात है कि सीता, मिल गयी और वैरी रावण मारा गया ॥ २७ ॥

एष नः परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा ।

यत्त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम् ॥ २८ ॥

हे महाराज ! यह हमारा बड़ा भारी मनोरथ सिद्ध हुआ कि, हम लोग आपको विजयी और शत्रुहोन देख रहे हैं । यही हम लोगों की अभिलाषा थी और इसीमें हम लोग हर्षित हैं ॥ २८ ॥

एतत्त्वयुपपन्नं च यदस्मांस्त्वं प्रशंससे ।

प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदशीम् ॥ २९ ॥

आपने जो हम लोगों को बड़ाई की, सो यह आपकी स्वाभाविक उदारता है, नहीं तो हम लोग हैं ही किस योग्य । हम नहीं जानते कि आपकी प्रशंसा हम किन शब्दों में करें ॥ २९ ॥

अपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान् ।

वर्तमहे महाबाहो प्रीत्यात्र महता वृताः ॥ ३० ॥

अब हम आपकी आज्ञा ले बिदा होते हैं । आप तो हम लोगों के अन्तःकरण में सदा वास करते ही हैं । अब हम सब अत्यन्त ध्यानन्द पूर्वक अपने अपने कार्यों में सलझ होंगे ॥ ३० ॥

भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा ।

बाढमित्येव राजानो हर्षेण परमान्विताः ॥ ३१ ॥

महाराज ! हम लोगों में आपकी प्रीति सदा बनी रहै ( हमारी आपसे यही अन्तिम प्रार्थना है । ) इस पर महाराज श्रीरामचन्द्र जी ने जब कहा “बहुत अच्छा पेसा ही होगा ”; तब वे राजा लोग परमहर्षित हुए ॥ ३१ ॥

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राघवं गमनोत्सुकाः ।

पूजितास्ते च रामेण जग्मुदेशान्स्यकान्स्यकान् ॥३२॥

इति अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

वे जाने के लिये उत्सुक राजा लोग हाथ जोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी से ( इस प्रकार ) बोले, श्रीरामचन्द्र जी ने भी उनको यथोचित बिदाई की और तब वे अपनी अपनी राजधानियों को चले गये ॥ ३२ ॥

उत्तरकाण्ड का अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

### एकोनचत्वारिंशः सर्गः

—: ० :—

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवास्ते प्रहृष्टवत् ।

गजवाजिसहस्रौदैः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ १ ॥

वे महाबली राजा लोग प्रसन्न होते हुए सहस्रों हाथियों और घोड़ों के समूहों से भूमि को कंपाते हुए, चले ॥ १ ॥

अक्षौहिण्यो हि तत्रासन् राघवार्थे समुद्यताः ।

भरतस्याङ्गयानेकाः प्रहृष्टबलवाहनाः ॥ २ ॥

भरत की आज्ञा से कितनी ही वाहनों सहित अक्षौहिणी सेनाएँ क्ले कर अनेक राजा लोग हसित हो, श्रीरामचन्द्र जी की सहायता के लिये, अयोध्या में ठहरे हुए थे ॥ २ ॥

ऊचुस्ते च महीपाला बलदर्पसमन्विताः ।

न राम रावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥ ३ ॥

वे लोग बल के अभिमान में चूर हो, आपस में कहने लगे कि,  
क्या कहैं, हम लोगों ने श्रीरामचन्द्र जी और रावण का युद्ध न देख  
पाया ॥ ३ ॥

भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम् ।

हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः ॥ ४ ॥

रावण के मारे जाने पर भरत जो ने हम लोगों को वर्ण्य ही  
बुलाया । यदि हम लोगों को पहिले यह हाल मिलता तो निस्सन्देह  
हम तुरन्त ही राक्षसों को मार गिराते ॥ ४ ॥

रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च ।

सुखं पारे समुद्रस्य युध्येम विगतज्वराः ॥ ५ ॥

हम लोग श्रीरामचन्द्र जो और लक्ष्मण जी के बाहुबल से रक्षित  
और निश्चिन्त हो कर, समुद्र पार जा कर, युद्ध करते ॥ ५ ॥

एतश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः ।

कथयन्तः स्वराज्यानि जगमुर्हषसमन्विताः ॥ ६ ॥

ऐसी विविध प्रकार की हज़ारों बातें कहते और हर्षित हो, वे  
राजा लोग अपनी अपनी राजधानियों में कुशलपूर्वक पहुँच गये ॥ ६ ॥

स्वानि राज्यानि मुख्यानि कुद्धानि मुदितानि च ।

समृद्ध धनधान्यानि पूर्णानि वसुभन्ति च ॥ ७ ॥

उनके राज्य सब प्रकार से भरे पूरे, धनधान्य और रक्तों से परि-  
पूर्ण थे और इसीसे वे राज्य हर्षित प्रजाजनों से भरे पूरे थे ॥ ७ ॥

यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ ।

रामस्य प्रियकामार्थमुपहारं नृपा ददुः ॥ ८ ॥

उन लोगों ने अपनी अपनी राजधानियों में पहुँच कर, श्रीराम-चन्द्र जी की प्रसन्नता सम्पादन करने के लिये विविध भाँति के रत्नों अर्थात् उत्तम पदार्थों की भेंटे भेजीं ॥ ८ ॥

अश्वान्यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मदोत्कटान् ।

चन्दनानि च मुख्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥

उनमें से अनेक राजाओं ने घोड़े, सवारियाँ, विविध प्रकार के रत्न, मतवाले हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभरण ॥ ९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालांस्तु दास्यो रूपसमन्विताः ।

?अजाविकं च विविधं रथांस्तु विविधान्वहून् ॥ १० ॥

मणियाँ, मोती, मूँगे, रूपवती दासियाँ, विविध प्रकार की उत्तम चर्ममय गद्दों की सेजें, अनेक प्रकार के रथ आदि विविध प्रकार की बहुत सी वस्तुएँ भिजवाईं ॥ १० ॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ।

आदाय तानि रत्नानि स्वां पुरीं पुनरागताः ॥ ११ ॥

महाबलवान् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उन उत्तम भेंट की वस्तुओं को ले कर, अयोध्यापुरी में लौट कर आ गये ॥ ११ ॥

आगम्य च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः ।

तानि रत्नानि चित्राणि रामाय समुपानयन् ॥ १२ ॥

उन पुरुषश्चेष्टों ने रम्य अयोध्या में आ कर, भेंट की वस्तुएँ श्रीरामचन्द्र जी को अर्पण कर दीं ॥ १२ ॥

प्रतिगृह्ण च तत्सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः ।

सुग्रीवाय ददौ राजे महात्मा कृतकर्मणे ॥ १३ ॥

विभीषणाय च ददौ तथान्येभ्योऽपि राघवः ।

राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैर्वृतो जयमासवान् ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने प्रसन्नतापूर्वक उन भेटों को अङ्गीकार कर लिया और पीछे से बड़ा उपकार करने वाले \*सुग्रीव को, राजस-राज विभीषण को तथा युद्ध में जिन वानरों और राक्षसों ने श्रीराम-चन्द्र जी को रावण-विजय में सहायता दी थी, उनको वे सब भेट की चीजें दे डालीं ॥ १३ ॥ १४ ॥

ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपि राक्षसाः ।

शिरोभिर्धारयामासु रुजेषु च महावलाः ॥ १५ ॥

उन सब वलवान राज्ञों और वानरों ने उन रत्नों को माथे चढ़ा, उनको गले में, भुजाओं में ( यथास्थान ) धरण कर लिया ॥ १५ ॥

हनुमन्तं च नृपतिरिक्ष्वाकूणां महारथः ।

अङ्गदं च महावाहुमङ्ग्लमारोप्य वीर्यवान् ॥ १६ ॥

इत्याकुवंशोऽद्व महारथी श्रीरामचन्द्र जी ने, महावलवान अंगद तथा हनुमान को अपनी गोद में बिठा लिया ॥ १६ ॥

रामः कमलपत्राक्षः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।

अङ्गदस्ते सुपुत्रोऽयं मन्त्री चाप्यनिलात्मजः ॥ १७ ॥

\* युद्धकाण्ड सर्ग १३१ के इलाक ८४ में लिखा है:—“प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम्” । एक बार जब श्रीरामचन्द्र जी सिंहासनारूढ़ हैं तो पर विभीषण एवं सुग्रीवादि की बिदाई कर चुके थे और वे अपने अपने स्थानों को छले भी गये थे, तब पुनः अब उन सब की बिदायी का यहाँ प्रकरण आना सर्वथा विचारणीय है ।

फिर कमलनयन श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव से कहा—यह अंगद  
तुम्हारे सुपुत्र और यह पत्रनन्दन हनुमान तुम्हारे मंत्री हैं ॥ १७ ॥

सुग्रीव मन्त्रिते युक्तौ मम चापि हिते रतौ ।

अर्हतो विविधां पूजां त्वत्कृते वै हरीश्वर ॥ १८ ॥

हे सुग्रीव ! ये दोनों ही अच्छी सलाह देने में तत्पर और मेरा  
हित करने में भी सदा दत्तचित्त रहते हैं । हे कपिराज ! अतः इनका  
अनेक प्रकार से मान सम्मान करना उचित है । इसमें प्राधान्य  
आप ही का है ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा व्यपमुच्याङ्गाद् भूषणानि महायशाः ।

स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूपतोः ॥ १९ ॥

महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने यह कह कर अपने शरीर से बहु-  
मूल्य भूषण उतार कर, अंगद और हनुमान को पहिनाये ॥ १९ ॥

आभाष्य च महावीर्यान् राघवो यूथपर्षभान् ।

नीलं नलं केसरिणं कुमुदं गन्धमादनम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्र जी ने बड़े बड़े बलवान वानरयूथपतियों  
से सम्भाषण किया । नील, नल, केसरी, कुमुद, गन्धमादन ॥ २० ॥

सुषेणं पनसं वीरं मैन्दं द्विविदमेव च ।

जाम्बवन्तं गवाक्षं च विनतं धूम्रमेव च ॥ २१ ॥

सुषेण, पनस, वीर मैन्द, द्विविद, जाम्बवन्त, गवाक्ष, विनत,  
धूम्र ॥ २१ ॥

बलीमुखं प्रजङ्घं च सन्नादं च महाबलम् ।

दरीमुखं दधिमुखमिन्द्रजानुं च यूथपम् ॥ २२ ॥

बलीमुख, प्रजंघ, महावलवान् सञ्चाद, दरीमुख, दधिमुख,  
इन्द्रजानु आदि यूथपों को ॥ २२ ॥

मधुरं श्लक्षणया वाचा नेत्राभ्यामपिबन्निव ।

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्र जो ने प्रेमदूषि से देखा और उनसे अत्यन्त मधुर-  
बाणी से बाले—आप सब लोग केवल मेरे उपकारी मित्र ही नहीं,  
किन्तु मेरे शरीर के और सभे भाइयों के समान हैं ॥ २३ ॥

युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात्काननोकसः ।

धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्विः सुहृदां वरैः ॥ २४ ॥

हे वानरो ! तुमने हमको वडे भारी दुःख से डबारा है । धन्य हैं  
राजा सुग्रीव ! जिनके आप जैसे हितैषी मित्र हैं ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः ।

वज्राणिं च महर्हाणि सख्यजे च नरर्षभः ॥ २५ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जो ने यह कह कर, उन वानरयूथपतियों  
को यथायोग्य वहुमूल्य वस्त्र तथा हीरों के जडाऊ गहने बाटे और  
उनको गले लगाया ॥ २५ ॥

ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधुनि मधुपिङ्गलाः ।

मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च ॥ २६ ॥

शहद जैसे वर्णवाले वानर यूथपति, सुगन्धित मधुपान करते,  
मांस और स्वादिष्ट मूल फल खाते दूष रहने लगे ॥ २६ ॥

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा ।

मुहूर्तमिव ते सर्वे रामभक्त्या च मेनिरे ॥ २७ ॥

इस प्रकार रहते रहते उनको कुक्र अधिक एक मास से अधिक बीत गया ; परन्तु श्रीरामचन्द्र में उनका अनुराग होने के कारण इतना समय भी उनको एक मुहूर्त सा जान पड़ा ॥ २७ ॥

रामोऽपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः ।

राक्षसैश्च महावीर्यैर्कृक्षश्वैव महाबलैः ॥ २८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी भी उन कामरूपी वानरों, महापराक्रमी राक्षसों और महाबली रीढ़ों के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ किया करते थे ॥ २८ ॥

एवं तेषां ययौ मासे द्वितीयः शिशिरः सुखम् ।

वानराणां प्रहृष्टानां राक्षासानां च सर्वशः ॥ २९ ॥

इस प्रकार सन्तुष्टमना उन वानरों और राक्षसों को अयोध्या में रहते रहते शिशिरऋतु का दूसरा मास भी बीत गया ॥ २९ ॥

इक्ष्वाकुनगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम् ।

रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ ॥ ३० ॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रीति के कारण रीढ़ों, वानरों और राक्षसों का रम्य अयोध्यापुरी में अत्यन्त सुखपूर्वक रहते हुए समय व्यतीत होने लगा ॥ ३० ॥

उत्तरकाण्ड का उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

## चत्वारिंशः सर्गः

— :०: —

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानरक्षसाम् ।

राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस प्रकार वे सब अयोध्या में आनन्दपूर्वक रहते थे । एक दिन महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव से यह कहा ॥ १ ॥

गम्यतां सौम्य किञ्चिन्नां दुर्धर्षां सुरासुरैः ।

पालयस्व सहामात्यै राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥

हे सौम्य ! अब तुम सुरासुर से दुर्धर्ष किञ्चिन्धापुरी की बौट जाओगे और वहाँ अपने मंत्रियों सहित निष्करणटक राज्यसुख मेंगे ॥ २ ॥

अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः ।

पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥

हे महाबीर ! तुम महाबलवान् श्रीगद, हनुमान और नल पर परमप्रीतियुक्त दृष्टि रखना ॥ ३ ॥

सुषेण श्वशुरं वीरं तारं च बलिनां वरम् ।

कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥

अपने ससुर सुषेण, बलवानों में श्रेष्ठ वीर तार, दुर्धर्ष कुमुद, महाबली नील ॥ ४ ॥

वीरं शतबलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ।

गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥ ५ ॥

वीर शतबलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाच्च, गवय, महाबलवान  
शरभ ॥ ५ ॥

ऋक्षराजं च दुर्धष्टं जाम्बवन्तं महाबलम् ।

पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥ ६ ॥

महाबली पवं श्रज्ञेय ऋक्षराज जाम्बवन्त और गन्धमादन पर  
आपकी प्रीतियुक्तदृष्टि रहनी चाहिये ॥ ६ ॥

ऋषभं च सुविक्रान्तं प्लुवंगं च सुपाटलम् ।

केसरि शरभं शुम्भं शङ्खचूडं महाबलम् ॥ ७ ॥

पराक्रमी ऋषभ, सुपाटल, केसरी, शरभ, शुम्भ और महाबल-  
वान शङ्खचूड़ को ॥ ७ ॥

ये ये मे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः ।

पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ ८ ॥

तथा अन्य जिन वानर वीरों ने मेरे लिये अपने प्राणों को  
हथेली पर रख कर युद्ध किया है ; हे सुग्रीव ! तुम इन सब को  
प्रीतियुक्तदृष्टि से देखना कर्त्ता ऐसा काम न करना, जो इनको बुरा  
लगे ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा च सुग्रीवमाशिलष्य च पुनः पुनः ।

विभीषणमुवाचाथ रामो मधुरया गिरा ॥ ९ ॥

इस प्रकार कह और बारंबार सुग्रीव को गले लगा, श्रीरामचन्द्र  
जी ने विभीषण से यह मधुर चचन कहे ॥ ९ ॥

लङ्घां प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम ।

पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्वैश्रवणस्य च ॥ १० ॥

हे राज्ञसराज ! अब आप भी जाय । हम आपको धर्मात्मा समझते हैं अतः आप धर्मनुकूल वहाँ शासन करें । नगरवासियों, राज्ञसों और भाई कुबेर के विषय में धर्मबुद्धि रखें ॥ १० ॥

मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन्कथञ्चन ।

बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवपशनन्ति मेदिनीम् ॥ ११ ॥

हे राजन ! आप अधर्म को और कभी दूषि न डालना क्योंकि बुद्धिमान् राजा ही पृथिवी पर राज्यसुख भोगते हैं ॥ ११ ॥

अहं च नित्यशो राजन्सुग्रीवसहितस्त्वया ।

स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ १२ ॥

हे राजन ! आप मुझे और सुग्रीव को मत भूल जाना और सदा हम पर प्रीति बनाये रखना । अब आप आनन्दपूर्वक यात्रा कीजिये ॥ १२ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः ।

साधुसाधिति काकुतस्थं प्रशाशंसुः पुनः पुनः ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का यह भाषण सुन कर, रीढ़ बानर और राज्ञस “वाह वाह” कह कर, बारंबार श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥

तव बुद्धिर्महावाहो वीर्यमद्भुतमेव च ।

माधुर्यं परमं राम 'स्वयंभोरिव' नित्यदा ॥ १४ ॥

वे कहने लगे, हे श्रीरामचन्द्र ! आपकी बुद्धि ब्रह्मा जी के समान सदैव प्राणिमात्र का कल्याण करने वाली है । आपमें सर्वोक्तुष्ट माधुर्य भी है । आपका पराक्रम भी अद्भुत है ॥ १४ ॥

१ स्वयंभोरिव—अनन्तकल्याणगुणस्य भगवतोब्रह्मणमिव । ( रा० )

२ नित्यदा—सर्वकाले । ( रा० )

तेषामेवं ब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम् ।

हनूमान्प्रणतो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

स्नेहो मे परमो राजं स्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।

भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १६ ॥

इस प्रकार जब वे सब कह रहे थे कि, इस बीच में हनुमान जी ने प्रणाम कर श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे राजन् ! हे वीर ! आपमें मेरी परम भक्ति और प्रीति सदा बनी रहै । मेरा मन आपको छोड़ और किसी में अनुरक्त न हो ॥ १५ ॥ १६ ॥

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।

तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥ १७ ॥

यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन ।

तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नर्षभ ॥ १८ ॥

हे रघुनन्दन ! जब तक आपकी यह कथा इस संसार में प्रचलित रहै, तब तक मेरे प्राण मेरे शरीर से कभी न्यारे न हों । हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम ! आपका यह पवित्र चरित्र तथा यह कथा मुझे अप्सराएँ गा कर सुनाया करें ॥ १७ ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वाहं ततो वीर तव चर्यामृतं प्रभो ।

उत्कण्ठां तां हरिष्यामि मेघलेखामिवानिलः ॥ १९ ॥

हे प्रभो ! जब मैं आपके चरितामृत को श्रवण करूँगा, तब आपके दर्शन की उत्कण्ठा मैं वैसे ही दूर कर दूँगा, जैसे पवन मेघों को दूर कर देता है ॥ १९ ॥

एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनुमन्तं वरासनात् ।

उत्थाय सख्जे स्नेहाद्वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २० ॥

इस प्रकार की प्रेमपगी बातें कहने वाले हनुमान जी को श्रीरामचन्द्र जी ने सिंहासन से उठ कर अपने हृदय से चिपटा लिया । तदनन्तर वे बड़े स्नेह से उनसे बोले ॥ २० ॥

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥ २१ ॥

तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ।

लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत्स्थास्यन्ति मे कथाः ॥२२॥

हे वानरोत्तम ! जो कुछ तुमने चाहा है, वही होगा । इसमें संशय नहीं है । जब तक मेरी कथा प्रचलित रहेगी तब तक तुम्हारी कीर्ति भी इस लोक में वनी रहेगी और तभी तक तुम भी शरीर धारण कर यहाँ वास करोगे और जब तक यह लोक रहेंगे तब तक मेरी कथाएँ वनी रहेंगी ॥ २१ ॥ २२ ॥

एकैकस्येहोपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे ।

शेषस्येहोपकाराणां भवाम क्रुणिनो वयम् ॥ २३ ॥

हे वानर ! तुम्हारे एक ही उपकार पर ( प्रसन्न हो ) मैं तुम्हें अपने प्राणदान करता हूँ । तुम्हारे बचे हुए उपकारों के लिये हम लोग तुम्हारे रिणियाँ बने रहेंगे ॥ २३ ॥

मदञ्जेजीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे ।

नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥२४॥

हे वानर ! तुमने जो उपकार किये हैं, वे मेरे अंगों में जीर्ण हो जायँ । क्योंकि मनुष्य आपत्तियों ही में प्रत्युपकार के पात्र हुआ करते हैं । अथवा जो तुमने मेरे प्रति उपकार किये हैं वे सब मेरे हृदय में बने रहेंगे । क्योंकि उपकारी के प्रति विना, उस पर

विपत्ति पड़े, प्रत्युपकार किया नहीं जा सकता ( और मैं यह नहीं चाहता कि, तुम पर कभी विपत्ति पड़े ) ॥ २४ ॥

ततोऽस्यहारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात्स राघवः ।  
वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनुमतः ॥ २५ ॥

यह कह कर, श्रीरामचन्द्र जी ने अपने गले से चन्द्रमा के समान चमकीला पन्ने का हार उतार कर हनुमान जी के गले में पहिना दिया ॥ २५ ॥

तेनोरसि निवद्धेनहारेण महता कपिः ।  
रराज हेमशैलेन्द्रश्वन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥ २६ ॥

सुवर्णमय शैलराज सुमेरु अपने ऊपर क्रिटकी हुई चन्द्रमा की चाँदनी से जैसे शोभित होता है, वैसे ही हनुमान जी के बक्षःस्थल पर पड़ा हुआ वह हार, उनकी शोभा बढ़ाने लगा ॥ २६ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः ।  
प्रणम्य शिरसा पादौ निर्जग्मुस्ते महाबलाः ॥ २७ ॥

श्रीरामचन्द्र की बातें सुन कर, अन्य सब वानर उठ उठ कर, उनको प्रणाम कर, अपने अपने घरों को चल दिये ॥ २७ ॥

सुग्रीवः स च रामेण निरन्तरमुरोगतः ।  
विभीषणश्च धर्मात्मा सर्वे ते वाष्पविक्लवाः ॥२८॥

कपिराज सुग्रीव और धर्मात्मा विभीषण जी, श्रीरामचन्द्र जी के गले से लिपट कर, उनसे मिले भेंटे। उस समझ तीनों के नेत्रों से आँखु टपकने लगे और सब की गदगद वाणी ही गयी ॥ २८ ॥

[ नोट—इस इलोक में और कहे बार पूर्व भी विभीषण के लिये आदि कवि ने “धर्मात्मा” शब्द का विशेषण दिया है। सुप्रीव के लिये नहीं। विभीषण के चरित्र में वात्स भी तिल भर भी अधार्मिकता नहीं थी। विभीषण की तरह सुप्रीव भी श्रीरामचन्द्र जी के मित्र तो थे, किन्तु बड़े भाई की छी रखने के कारण आदिकवि ने सुप्रीव के लिये “धर्मात्मा” शब्द का प्रयोग नहीं किया। यह बात ध्यान में रखने की है। ]

सर्वे च ते बाष्पकलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः ।

सम्मूढा इव दुःखेन त्यजन्तो राघवं तदा ॥ २९ ॥

बड़े दुःख के साथ श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ सके। उस समय उन सब के नेत्रों से आँखु टपक रहे थे और वे मारे दुःख के विह्वल हो रहे थे ॥ २६ ॥

कृतप्रसादास्तेनैवं राघवेण महात्मना ।

जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिवत्यजन् ॥ ३० ॥

इस प्रकार वे सब महात्मा श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता सम्पादन कर अपने अपने धरों को गये तो सही; किन्तु (अयोध्या त्यागते समय) उनको वैसी ही पीड़ा का अनुभव हुआ, जैसा कि प्राणधारियों को प्राण त्यागते समय हुआ करता है ॥ ३० ॥

ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः

प्रणम्य रामं रघुवंशवर्धनम् ।

वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः

प्रतिप्रयातास्तु यथा निवासिनः ॥ ३१ ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः ॥

वा० रा० उ०—३२

राजस, रीढ़ और वानर, श्रीरामचन्द्र जी के वियोग से उत्पन्न आँखुओं से नेत्रों को तर किये हुए, रघुवंश की वृद्धि करने वाले श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम कर, जहाँ से आये थे, वहाँ को रवाना हो गये ॥ ३१ ॥

उत्तरकाण्ड का चालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



### एकचत्वारिंशः सर्गः

—:०:—

विसृज्य च महावाहोर्क्षवानरराक्षसान् ।

भ्रातुभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखं सुखी ॥ १ ॥

रीढ़ों, वानरों और राजसों को विदा कर, महावलवान् श्रीरामचन्द्र जी अपने भाइयों सहित सुखी हो हर्षित होने लगे ॥ १ ॥

अथापराह्नसमये भ्रातुभिः सह राघवः ।

शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षान्यहाप्रभुः ॥ २ ॥

एक दिन मध्याह्नोत्तर भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र जी ने आकाश से यह मधुर वाणी सुनी ॥ २ ॥

सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेनमाम् ।

कुबेरभवनात्प्राप्तं विद्धि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥

हे सौम्य राम ! आप प्रसन्न हो कर मेरी ओर देखिये । हे प्रभो ! मैं पुष्पक नामक विमान हूँ और कुबेर के भवन से आया हूँ ॥ ३ ॥

तत्र शासनमाज्ञाय गतोस्मि भवनं प्रति ।

उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! मैं आपको आज्ञा पा, कुबेर के पास गया था । उन्होंने मुझसे यह कहा है ॥ ४ ॥

निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ।

निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥

महाराज श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसराज दुर्धर्ष रावण को मार कर तुमको भी जीत लिया है ॥ ५ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन्दुरात्मनि ।

रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहवान्धवे ॥ ६ ॥

सेना, पुत्रों और बन्धुवान्धश्चों सहित दुष्ट रावण के मारे जाने से मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ६ ॥

स त्वं रामेण लङ्घायां निर्जितः परमात्मना ।

वह सोम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! परमात्मा श्रीरामचन्द्र जी, लङ्घेश को जीत कर, तुमको लाये हैं, अतः मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि, तू उन्हींकी सवारी में रह ॥ ७ ॥

परमो ह्येष मे कामो यत्त्वं राघवनन्दनम् ।

वहेलोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥ ८ ॥

तू भूरादि लोकों में आ जा सकता है; अतः मेरी यहो अभिलाषा है तू श्रीरामचन्द्र जी की सवारी में रह । तू किसी प्रकार की चिन्ता न कर और उनके पास चला जा ॥ ८ ॥

सोऽहं शासनमाज्ञाय धनदस्य महात्मनः ।

त्वत्सकाशमनुप्राप्तो निर्विशङ्कः प्रतीच्छ माम् ॥ ९ ॥

अतः महात्मा कुबेर जी की आज्ञा से मैं आपके समीप आया हूँ । अतः आप बेखटके मुझे अनपी सवारी में रखें ॥ ९ ॥

अधृष्यः सर्वभूतानां सर्वेषां धनदाज्ञया ।

चराम्यहं प्रभावेण तवाज्ञां परिपालयन् ॥ १० ॥

कुबेर की आज्ञा से मुझे कोई प्राणी रोक नहीं सकता । मैं आपके आज्ञानुसार और आपके प्रताप से ( सर्वत्र ) गमनागमन करूँगा ॥ १० ॥

एवमुक्तस्तदा रामः पुष्पकेण महावलः ।

उवाच पुष्पकं दृष्ट्वा विमानं पुनरागतम् ॥ ११ ॥

विमान का यह कथन सुन कर, महावलवान श्रीरामचन्द्र जी ने लौट कर आये हुए और आकाशस्थित पुष्पक को देख कर कहा ॥ ११ ॥

यद्येवं स्वागतं तेऽस्तु विमानवर पुष्पक ।

आनुकूल्याद्वनेशस्य वृत्तदोषो न नो भवेत् ॥ १२ ॥

हे वाहनश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । यदि ऐसा ही है, तो बहुत अच्छी बात है । कुबेर की प्रीति के अनुसार ही मुझे तो बर्तना है, जिससे मेरे चरित्र पर कोई धब्बा न लगे ॥ १२ ॥

लाजैश्वै तथा पुष्पेधूपैश्वै सुगन्धिभिः ।

पूजयित्वा महावाहू राघवः पुष्पकं तदा ॥ १३ ॥

यह कह महावीर श्रीरामचन्द्र जी ने पुष्पों, खीलों ( लावों ) चन्दन तथा धूपादि से पुष्पक का पूजन कर, उससे कहा ॥ १३ ॥

गम्यतामिति चेवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा ।

सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योंजय ॥१४॥

हे पुष्पक ! अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जा कर रहो, किन्तु जब मैं तुम्हें स्मरण करूँ, तब यहीं आ जाना । सिद्धसेवित आकाशमार्ग से हे सौम्य ! अब तुम जाओ और किसी बात के लिये दुःखी मत हो ॥ १४ ॥

प्रतिघातश्च ते मा भूद्यथेष्टं गच्छतो दिशः ।

एवमस्त्वति रामेण पूजयित्वा विसर्जितम् ॥ १५ ॥

गमन करते हुए तुम हिसी चीज़ से टकराना मत । तुम अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहो वहाँ घूमों फिरो । यह कह कर, श्रीराम-चन्द्र जी ने पुष्पक का पूजन कर उसको विदा कर दिया ॥ १५ ॥

अभिप्रेतां दिशं तस्मात्प्रायात्तत्पुष्पकं तदा ।

एवमन्तर्हिते तस्मिन्पुष्पके सुकृतात्मनि ॥ १६ ॥

तब पुष्पक विमान “बहुत अच्छा, जो आज्ञा” कह कर जिधर, चाहा उधर चला गया । जब पुष्पक विमान कृतार्थ हो चला गया ॥ १६ ॥

भरतः प्राञ्जलिर्वक्यमुवाच रघुनन्दनम् ।

\*विबुधात्मनि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति ॥१७॥

+अमानुषाणि सत्वानि व्याहृतानि मुहुर्महुः ।

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ॥१८॥

\* पाठान्तरे — “विविधात्मनि ।” † पाठान्तरे — “अमानुषाणि सत्वानां ।”

तब भरत जी ने हाथ जोड़ कर, श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे वीर ! आपके शासनकाल में विविध प्रकार के ऐसे अद्भुत प्राणी देख पड़ते हैं और उनकी बोलियाँ सुन पड़ती हैं, जो मनुष्य नहीं हैं । प्रजा में कोई रोगव्रस्त भी नहीं देख पड़ता । आपको राज्य करते कुछ ही महीने बीते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

**जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ।**

**अरोगप्रसवानार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः ॥ १९ ॥**

इस बीच में हे राघव ! जो देहधारी जीव अति जीर्ण हो गये हैं, वे भी नहीं मरे । स्त्रियों का प्रसवकाल में कोई कष्ट नहीं होता । पुरवासी सब हृष्पुष्ट देख पड़ते हैं ॥ १६ ॥

**हर्षश्चाभ्यधिको राजन् जनस्य पुरवासिनः ।**

**काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ॥ २० ॥**

हे राजन् ! पुरवासी व जनपदवासी अत्यन्त हर्षित हैं । बादल भी यथावसर अमृत के समान जल की वृष्टि करते हैं ॥ २० ॥

**वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः ।**

**\*ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वरः ॥ २१ ॥**

मङ्गलमय पवन भी सदा सुखस्पर्शी हो कर चला करता है । हे नरेश्वर ! इस प्रकार का राजा तो बहुत दिनों से नहीं हुआ ॥ २१ ॥

**कथयन्ति पुरे राजन्पौरजानपदास्तथा ।**

**एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।**

**श्रुत्वा रामो मुदा युक्तो बभूव नृपसत्तमः ॥ २२ ॥**

**इति एकचत्वारिंशः सर्गः ॥**

\* पाठान्तरे—“ईदृशोऽनश्वरो” ।

हे राजन् ! पुरवासी और जनपदवासी लोग यही कहते हैं ।  
नृपशेष श्रीरामचन्द्र जी, भाई भरत के ऐसे मधुर वचन सुन कर  
हर्षित हुए ॥ २२ ॥

उत्तरकाण्ड का एकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

— : \* : —

### द्विचत्वारिंशः सर्गः

— : o : —

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् ।  
प्रविवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥

सुवर्णभूषित पुष्पक विमान को विदा कर, महाबाहु श्रीरामचन्द्र  
जी अशोकवाटिका में गये ॥ १ ॥

चन्दनागुरुचूतैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ।  
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥

उस उपवन में चन्दन, आम, अगर, तुङ्ग, लालचन्दन और  
देवदारु के वृक्ष लगे हुए थे ॥ २ ॥

चम्पकागुरुपुन्नागमधूकपनसासनैः ।  
शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः ॥ ३ ॥

चम्पा, अगर, पुन्नाग, मधूक, पनस, और धुवाँ रहित आग के  
समान दमकता हुआ पारिजात ॥ ३ ॥

लोधनीपार्जुनैर्नगैः समपर्णातिमुक्तकैः ।  
मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥

लोध, नीप, अर्जुन, नागकेसर, शतावरी, तिनिश, मन्दार,  
और केला, तथा विविध भाँति की लताओं व झाड़ों से वह उपवन  
परिषुर्ण था ॥ ४ ॥

**प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा च बकुलैरपि ।**

**जम्बूभिर्दाढिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥**

वह प्रियङ्गु, कदम्ब, बकुल, जामुन, अनार और कोविदार के  
बृक्षों से शोभित था ॥ ५ ॥

**सर्वदा कुमुमै रम्यैः फलवद्विर्मनोरमैः ।**

**दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणाङ्कुरपल्लवैः ॥ ६ ॥**

उसमें सर्वऋतु में फूलने वाले सुन्दर पुष्पित वृक्ष लगे थे  
और सुखाद फलदार वृक्ष भी उस उपवन में उगे हुए थे । ऐसे  
भी वृक्ष थे, जिनमें से सुगन्ध निकलती थी । नये पत्तों और कोपलों  
से वहाँ के वृक्ष सुशोभित थे ॥ ६ ॥

**तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिलिपभिः परिकल्पितैः ।**

**चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसङ्कुलैः ॥ ७ ॥**

वृक्ष लगाने में चतुर मालियों ने इन दिव्य वृक्षों को बड़े अच्छे  
ढंग से लगाया था । इन वृक्षों के सुन्दर पत्ते और फूल लहलहाँ  
रहे थे । उनके ऊपर मतवाले भौंरे गूँज रहे थे ॥ ७ ॥

**कोकिलैर्भङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः ।**

**शोभितां शतशशिचत्रां चूत दृक्षावतंसकैः ॥ ८ ॥**

उस उपवन में आम के वृक्ष के भूषण रूप कोयल, भृङ्गराज,  
तथा अन्य रंग विरंगे पत्तों शोभायमान थे ॥ ८ ॥

शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्रिशिखोपमाः ।

नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्रस्त्यपादपाः ॥९॥

वहाँ कोई कोई तो पेड़ सफेद रंग के, कोई कोई अग्निशिखा की तरह लाल रंग के, कोई नीलाञ्जन की तरह नीले रंग वाले तथा अन्य प्रकार के भी अनेक वृक्ष थे ॥ ९ ॥

सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च ।

दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ॥ १० ॥

वहाँ अत्यन्त सुगन्धित फूल और विविध भाँति के पुष्पगुच्छ थे । वहाँ विविध आकार की बाबलियाँ थीं, जिनमें स्वच्छजल भरा हुआ था ॥ १० ॥

\*माणिक्यकृतसोपानाः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।

फुलपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ११ ॥

उन बाबलियों में माणिक्य की सीढ़ियाँ थीं और उनकी भीतरी तह सफाटिक पत्थर की बनो हुई थी । उनमें खिले हुए कमल और कुई के फूल शोभायमान थे । वहाँ चक्रवाक ॥ ११ ॥

दात्यूहशुकसंघृष्टा हंससारसनादिताः ।

तस्मिः पुष्पशब्लैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥ १२ ॥

परीहा, शुक, हंस, सारन, बोल रहे थे । उनके किनारों पर फूलों से लदे हुए रंग विरंगे वृक्ष लहरा रहे थे ॥ १२ ॥

प्रकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः ।

तत्रैव च वनोद्देशे वैदूर्यमणिसन्निभैः ॥ १३ ॥

\* पाठान्तरे—“माणिक्यकृतसोपानाः” । † पाठान्तरे—“पुष्पवज्जित्ता” ।

उनके प्राकार रङ्ग विरङ्गे और अद्भुत पत्थरों से बने हुए थे ।  
उनके चारों ओर पन्ने की तरह हरी ॥ १३ ॥

शाद्वलैः परमोपेतां पुष्पितदूमकाननाम् ।

तत्र संघर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम् ॥ १४ ॥

प्रस्तराः पुष्पशब्दला नभस्तारागणैरिव ।

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ॥ १५ ॥

दूब लगी हुई थी । वहाँ के वृक्ष मानों पारस्परिक ईर्ष्यावश फूलों से लद रहे थे । इवा के झोकों से आपस में टकरा कर पुष्पित वृक्षों के फूल नीचे की पथरीली ज़मीन पर बिक्र जाते थे । उस समय उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, मानों आकाश में तारागण उदय हुए हों । जैसे इन्द्र का नन्दनवन और ब्रह्मा का बनाया कुवेर का चैत्ररथवन शोभायमान देख पड़ता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

तथाभूतं हि रामस्य काननं सन्निवेशनम् ।

बहासनगृहोपेतां लतागृहसमावृताम् ॥ १६ ॥

वैसी ही श्रीरामचन्द्र जो की यह अशोकवाटिका (या अशोक वन) शोभायमान थी । इस वाटिका में जगह जगह बैठने के लिये बैठकें पड़ी हुई थीं और अनेक लतामण्डप बने हुए थे ॥ १६ ॥

अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ।

आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते ॥ १७ ॥

ऐसी समृद्धशालिनी अशोकवाटिका में श्रीरामचन्द्र जो पधारे और एक बड़े सुन्दर फूलों से भूषित आसन पर ॥ १७ ॥

\*कुशास्तरणसंस्तीर्णे रामः सन्निसप्ताद ह ।  
सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयंकं शुचि ॥ १८ ॥

जो एक कुश की चटाई पर बिढ़ा हुआ था, वैठ गये । वहाँ सीता को अपने निकट बैठा कर अपने हाथ से व्यच्छ मैरेय नामक मदिरा, ॥ १८ ॥

पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः ।  
मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च ॥ १९ ॥

काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्र जी ने सोता को वैसे ही पिलायी, जैसे इन्द्र अपनी इन्द्राणी शत्रु को पिलाते हैं । वहाँ पर अच्छे सुखादु माँस और विविध प्रकार के फल ॥ १९ ॥

रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन् ।  
उपानृत्यंश्च राजानं नृत्यगीतविशारदाः ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्र के व्यवहारार्थ ठहलुओं ने तुरन्त ला कर रख दिये । ( माँस मदिरा का आवश्यक अंग स्वरूप ) नाचना गाना भी श्रीरामचन्द्र जी के सामने आरम्भ हुआ । वह नाच ( मामूली नाच न था बढ़िक ) नाचने गाने में निपुणों का था ॥ २० ॥

[अप्सरोरगसङ्घाश्च किन्नरीपरिवारिताः ।  
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशंगताः ॥ २१ ॥

उपानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः ।]  
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ॥ २२ ॥

\* पाठान्तरे—“ कुशास्तरणसंबीते । ”

रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः ।

स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह ॥ २३ ॥

तदन्तर अप्सरायैँ, नागिनें, किञ्चरी व परम चतुर एवं छपवती  
स्त्रियाँ मदमाती हो गयीं । गाने नाचने में निपुण स्त्रियाँ श्रीरामचन्द्र  
जी के सामने नाचने लगीं । इस तरह यन को प्रसन्न करने वाली एवं  
शृङ्खार किये हुए उन स्त्रियों का गान व नृत्य श्रीराम जो जानकी के  
साथ उत्तम आसन पर बैठ देखते सुनते रहे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अरुन्धत्या \*इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ।

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ २४ ॥

रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ।

तथातयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चरम् ॥ २५ ॥

श्रीराम जी जानकी महित ऐसे बैठे हुए थे, मानों अरुन्धती जी  
के पास वशिष्ठ जी बैठे हों । इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जो देवकन्याओं  
के समान सीता जी को, देवताओं के तरह नित्य सन्तुष्ट करने लगे ।  
इस प्रकार जानकी के साथ विहार करते, करते श्रीरामचन्द्र जी को  
बहुत दिन बीत गये ॥ २४ ॥ २५ ॥

अत्यक्रामच्छुभः कालः शैशिरो भोगदः सदा ।

दिश वर्षसहस्राणि गतानि सुप्रहात्मनोः ।

प्राप्तयोर्विविधान्भोगानतीतः शिशिरागमः ॥ २६ ॥

\* पाठान्तरे — “सहासीनो” ।

† किसी किसी टीकाकार ने इसे प्रक्षिप्त माना है और यह जान भी ऐसा  
ही पड़ता है ।

यहाँ तक कि, भेग विलास के लिये सुखदायी शिशिर ऋतु भी निकल गयो । इस प्रकार विविध प्रकार के भेग विलास करते करते श्रीरामचन्द्र और सीता जी ने बहुत वर्ष बिता दिये । विविध भेगों का भेगते हुए शिशिर ऋतु भी निकल गयी ॥ २६ ॥

**पूर्वाङ्गे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ।**

**शेषं दिवसभार्गधिमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥ २७ ॥**

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी पूर्वान्ह (दो पहर होने के पूर्व) तक धर्मनुसार समस्त धर्मकार्य कर, दिन का शेष भाग बिताने के लिये रनवास में जाते थे ॥ २७ ॥

**सीताऽपि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाङ्गिकानि वै ।**

**इवश्रूणामकरोत्पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ २८ ॥**

सीता जी भी दिन के प्रथम आधे भाग में समस्त देवकार्य कर, विशेष अद्वाभक्ति के साथ अपनी सासों की सेवा किया करती थीं । सेवा करते समय वे सब सासों की समान मानती थीं ॥ २८ ॥

**अभ्यगच्छत्ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा ।**

**त्रिविष्टुपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥ २९ ॥**

तदनन्तर वे विविध भौति के वस्त्राभूषण धारण कर श्रीराम-चन्द्र जी के पास जा वैसे ही बैठती थीं ; जैसे इन्द्राणी इन्द्र के पास जा बैठती हैं ॥ २६ ॥

**दृष्टा तु राघवः पर्वीं कल्याणेन समन्विताम् ।**

**प्रहर्षमतुलं लेखे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥**

श्रीरामचन्द्र जी सीता जी को गर्भवती देख, अत्यन्त आनन्दित हो “वाह वाह” कहने लगे ॥ ३० ॥

अब्रवीच वरारोहां सीतां सुरसुतोपमाम् ।

अपत्यलाभो वैदेहि श्लत्यययं समुपस्थितः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर देववाला के समान वरवर्णिनी सीता से वे कहने लगे—  
हे देवि ! तुममें गर्भधारण के लक्षण स्पष्ट देख पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ।

स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३२॥

हे वरारोहे ! उत्तलाओं तुम्हारी इच्छा किस वस्तु पर चलती  
है ? तुम जो कहा मैं तुम्हारी वही इच्छा पूरी कर दूँ । इसके उत्तर  
में सीता जी ने मुसक्का कर श्रीराम जी से कहा ॥ ३२ ॥

तपेवनानि पुण्यानि द्रप्दुमिच्छामि राघव ।

गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥ ३३ ॥

फलमूलाशिनां देव पादमूलाषु वर्तितुम् ।

एष मे परमः कामो यन्मूलफलभेजिनाम् ॥ ३४ ॥

अप्येकरात्रिं काकुत्स्थ निवसेयं तपेवने ।

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्षिष्ठकर्मणा ।

विस्त्रिधा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥ ३५ ॥

हे राघव ! मैं पवित्र तपेवनों को देखना चाहती हूँ । गङ्गातट  
पर निवास करने वाले, उग्रतेजस्वी और फलमूलाहारी\* ऋषियों  
की मैं चरणसेवा करना चाहती हूँ । हे देव ! यही मेरी परम  
कामना है । फलमूलभेजी मुनियों के पास तपेवन में यदि मैं

\* पाठान्तरे—“त्वयि मे ।” † पाठान्तरे—“रामे ।”

एक रात भी रह पाऊँ तो मेरी अभिलाष पूरी हो जाय । अक्षिष्ठ-  
कर्मकारी काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे वैदेहि ! ऐसा ही  
होगा । तुम-निश्चिन्त रहो । तुमको मैं कल ही तपेषन में  
भेजूँगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।

मध्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम सुहृदवृत्तः ॥ ३६ ॥

इति द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

सीता जी से यह कह कर, काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्र अपने मित्रों  
के साथ भवन के बिचले चौक में चले आये ॥ ३६ ॥

उत्तरकाण्ड का व्यालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:\*:—

### त्रिचत्वारिंशः सर्गः

—:\*:—

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ।

कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥ १ ॥

अब वहाँ पर श्रीरामचन्द्र जी के आस पास ऐसे मनुष्य आ बैठे,  
जो विविध प्रकार की कथावार्ता कहने में निपुण तथा हँसने हँसाने  
में प्रवीण थे ॥ १ ॥

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपो \*मङ्गलः कुलः ।

सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्रः सुमागधः ॥ २ ॥

\* पाठान्तरे—“ पिङ्गलः कुटः । ”

विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय,  
भद्र, दन्तवक, और सुमागध, ॥ २ ॥

एते कथा बहुविधाः परिहाससमन्विताः ।

कथयन्ति स्म संहष्टा राघवस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

ये सब हण्डित अन्तःकरण से महात्मा श्रीराम जी के सामने  
विविध प्रकार की हँसने वाली वातें कह रहे थे ॥ ३ ॥

ततः कथाया कस्यांचिद्राघवः समधाषत ।

काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥ ४ ॥

किसी छिड़े हुए प्रसङ्ग के बीच में ही श्रीरामचन्द्र जी पूँछ  
बैठे—हे भद्र ! आज कल अयोध्यापुरो और राज्य में क्या चर्चा  
फैली हुई है ॥ ४ ॥

मामाश्रितानि कान्याहुः पैरजानपदा जनाः ।

किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ॥५॥

मेरे आश्रित पुरवासी लोग सीता, भरत, लक्ष्मण और  
शत्रुघ्न के विषय में क्या कहते हैं ? ॥ ५ ॥

किनु शत्रुघ्नमुहिश्य कैकेयीं किनु मातरम् ।

वक्तव्यतां च राजानो वने राज्ये व्रजन्ति च ॥ ६ ॥

शत्रुघ्न के बारे में और मेरी माता कैकेयी के बारे में लोगों  
का क्या मत है ? क्योंकि ( अविचारी ) राजा की बस्ती ही  
में नहीं, वलिक तपस्त्रियों के आश्रमों में भी निन्दा होने लगती  
है ॥ ६ ॥

एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

स्थिताः शुभाः कथा राजन्वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥७॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने यह कहा, तब भद्र हाथ जोड़ कर बोला—  
हे राजन् ! पुरवासो लोग तो श्रीमहाराज की प्रशंसा ही करते  
हैं ॥ ७ ॥

अयं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ।

भूयिष्ठं स्वपुरे पैरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभम् ॥ ८ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! हे सौम्य ! अयोध्या में ( आपके द्वारा ) विशेष कर  
दशानन का वध कर लड़ा को सर करने की चर्चा पुरवासियों में  
बहुत हुआ करती है ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।

कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥

भद्र के इस प्रकार कहने पर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—यह नहीं,  
वे लोग जो कुछ कहा करते हैं, वह सब ज्यों को त्यों कहा ॥ ९ ॥

शुभाशुभानि वाक्यानि \*यान्याहुः पुरवासिनः ।

श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्या न कुर्यामशुभानि च ॥ १० ॥

अर्थात् भली बुरी जो जो बातें वे कहते हों, सो सब कहो । उन  
सब बातों को सुन कर, मैं अच्छा ही करूँगा और बुरे काम छोड़  
दूँगा ॥ १० ॥

कथयस्व च विस्त्रिष्यो निर्भयं विगतज्वरः ।

कथयन्ति यथा पैराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥

\* पाठान्तरे—“ कान्याहुः । ”

हे भद्र ! तुम निर्भय हो कर कहो । अपने मन में किसी प्रकार का सङ्कोच मत करो । मैं जानना चाहता हूँ कि, पुरवासी और जनपदवासी मेरे सम्बन्ध में क्या बुरी बुरी टोका टिप्पणी किया करते हैं ॥ ११ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ।

प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन कर, भद्र सम्हल कर और हाथ जोड़ कर अति सुन्दर वचन बोला ॥ १२ ॥

शृणु राजन्यथा पैराः कथयान्त शुभाशुभम् ।

चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥ १३ ॥

हे राजन् ! वन, उपवन, हाट वाट, और चौराहों पर पुरवासी लोग जो कुक्कु अच्छी बुरी बातें ( आपके सम्बन्ध में ) कहा करते हैं, सो मैं कहता हूँ, आप सुनें ॥ १३ ॥

दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ।

अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ॥ १४ ॥

वे कहते हैं—श्रीरामचन्द्र जी ने अति दुष्कर कार्य किया, जो समुद्र पर पुल बांध दिया । हमारे पुरखों ने तो क्या, देवता दानवों ने भी ऐसी अनहोनी बात नहीं सुनी थी ॥ १४ ॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।

वानराश्च वशं नीता कृक्षाश्च सह राक्षसैः ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने दुर्धर्ष रावण को सेना तथा बाहनों सहित नष्ट किया है और वानरों, भालुओं और राक्षसों को अपने वश में कर लिया है ॥ १५ ॥

इत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ।

अमर्षं पृष्ठतः कुत्वा स्ववेशम् पुनरानयत् ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में रावण का संहार कर, सीता का उद्धार किया तो, किन्तु रावण ने जो सीता का स्पर्श किया था, इस पर उन्होंने कुक्कु भी विचार न किया और वे सीता को अयोध्या में ले आये ॥ १६ ॥

कीदृशं हृदये तस्य सीतासंभोगजं सुखम् ।

अङ्गमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्युताम् ॥ १७ ॥

जिस सीता को पहले रावण बरजोरी अपनी गोद में उठा कर ले गया था, उसी सीता के सम्भोग का सुख श्रीरामचन्द्र जी के मन में रहे कर अच्छा जान पड़ता है ॥ १७ ॥

लङ्घामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।

रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न \*कुत्स्यति ॥ १८ ॥

रावण ने सीता को लङ्घा में ले जा कर, वहाँ श्रशोकवाटिका में रखा था और वहाँ सीता (सोलहों आने) रावण की मुट्ठी में थी; इन सब बातों पर विचार कर, महाराज के मन में (सीता जी के प्रति) वृणा क्यों उत्पन्न नहीं होती ॥ १८ ॥

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।

यथा हि कुरुते राजा प्रजा स्तम्भुवर्तते ॥ १९ ॥

अब हम लोगों को भी खिथों के ऐसे दोषों को (आँख बंद कर के) सह लेना पड़ेगा। क्योंकि राजा जैसा व्यवहार करता है, उसकी प्रजा भी वैसा हो व्यवहार करती है ॥ १९ ॥

\* पाठान्तरे—“कुत्स्यते ।”

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।

नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च ॥ २० ॥

हे राजन् ! सब नगरों और जनपदों में प्रजाजन इसी ढंग की बहुत सी बातें कहा करते हैं ॥ २० ॥

तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ।

उवाच सुहृदः \*सर्वान्कथमेतद्वदन्तु माम् ॥ २१ ॥

भद्र के इस प्रकार के वचन सुन श्रीरामचन्द्र जी परम व्याकुल हो, ( वहाँ उपस्थित ) समस्त सुहृदों से पूँछने लगे कि, क्या प्रजाजन ( सचमुच ) मेरे बारे में ऐसी बातें कहा सुना करते हैं ? ॥२१॥

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।

प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतत्त्र संशयः ॥ २२ ॥

यह सुन ( वहाँ उपस्थित ) समस्त जनों ने हाथ जोड़ और भूमि पर माथा टेक, दुःखी हो, श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे पृथिवी-नाथ ! निस्सनदेह यह बात ऐसी ही है ॥ २२ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ।

विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥ २३ ॥

इति त्रिचत्वारिशः सर्गः ॥

तब शत्रुसंहारकारी काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्र जी ने उन सब के मुख से ( भद्र के कथन का ) अनुप्रादन सुन, उन समस्त मित्रों को अपने अपने घरों को जाने की आशा दी ॥ २३ ॥

उत्तरकाशड का तैतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

\* पाठान्तरे—“ सर्वान्कथमेतद्ववीथ । ”

## चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

—०—

विसृज्य तु सुहृद्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः ।  
समीपे द्वाःस्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सब हितैषी मित्रों को विदा कर और आपने मन में कुछ निर्णय कर, पास खड़े हुए द्वारपाल से श्रीरामचन्द्र जी बोले ॥ १ ॥

शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।  
भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥

तुम शीघ्र जा कर सुमित्रानन्दन एवं शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मण,  
महाभाग भरत और अजेय शत्रुघ्न को लिखा लाओ ॥ २ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वाद्वाःस्थो मूर्धिन कृताञ्जलिः ।  
लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥ ३ ॥

द्वारपाल श्रीरामचन्द्र जी की यह आङ्गा सुनते ही हाथ जोड़, सोस नवा, पहले वड़ी फुर्ती के साथ चिना रोकटोक लक्ष्मण जी के घर में गया ॥ ३ ॥

उवाच सुमहात्मानं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ।  
द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥

वहाँ जा उसने लक्ष्मण जी को प्रणाम कर उनसे कहा—महाराज आपसे मिला चाहते हैं; अतः आप वहाँ अति शीघ्र पधारें ॥ ४ ॥

बादमित्येव सौमित्रिः कृत्वा राघवशासनम् ।  
प्राद्रवदथामारुष्य राघवस्य निवेशनम् ॥ ५ ॥

तब लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी की आङ्गा सुन, कहा “बहुत अच्छा” । फिर वे रथ में बैठ, बड़ी तेज़ी से श्रीरामचन्द्र जी के भवन की ओर रवाना हुए ॥ ५ ॥

प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वाःस्थो भरतमन्तिकात् ।  
उवाच भरतं तत्र वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

लक्ष्मण जी को जाने हुए देख, द्वारपाल विनीतभव से भरत जी के पास गया और हाथ जोड़ कर उनसे बोला ॥ ६ ॥

विनयावनतो भूत्वा राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।  
भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वाःस्थादामसमीरितम् ॥ ७ ॥

उसने भरत जी से बड़ी अधीनताई से कहा—“महाराज आपसे मिलना चाहते हैं । भरत जी द्वारपाल से श्रीरामचन्द्र जी की यह आङ्गा सुन, ॥ ७ ॥

उत्पातासनात्तूर्णं पद्मयामेव \*महाबलः ।  
दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

वे महाबली आसन ढोड़ तुरन्त उठ खड़े हुए और मारे जल्दी के (सवारी आने की प्रतीक्षा न कर) पैदल ही चल दिये । भरत जी को जाने देख, द्वारपाल हाथ जोड़ कर, तुरन्त ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यमुवाच ह ।  
एत्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥

\* पाठान्तरे—“ययौबली ।”

शत्रुघ्न के भवन में गया और उनसे भी यही बात कही कि,  
आइये महाराज आपसे ( शीघ्र ) मिलना चाहते हैं ॥ ६ ॥

गते हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशाः ।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥ १० ॥

शिरसा वन्द्य धरणीं प्रययौ यत्र राघवः ।

द्वाःस्थस्त्वागम्य रामाय सर्वनिव कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥

द्वारपाल के मुख से यह भी सुन कि, महायशस्वी भरत और  
लक्ष्मण जी पहिले ही वहाँ जा चुके हैं, शत्रुघ्न जी भी आसन ढोड़  
तुरन्त उठ खड़े हुए और पृथिवी पर माथा टेक ( श्रीरामचन्द्र जी को  
जह्य कर प्रणाम कर ) श्रीरामचन्द्र जी के भवन की ओर प्रस्थानित  
हुए । द्वारपाल ने हाथ जोड़ कर, श्रीरामचन्द्र जी को सब ॥ १० ॥ ११ ॥

निवेदयामास तथा भ्रातृन्खान्समुपस्थितान् ।

कुमारानागताञ्छ्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ १२ ॥

भाइयों के आने की सूचना दी । कुमारों का आना सुन, चिन्ता  
से बिकल ॥ १२ ॥

अवाङ्मुखो दीनमना द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ।

प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः ॥ १३ ॥

नीचे को मुख किये उदास श्रीरामचन्द्र जी ने द्वारपाल से  
कहा—तुम शीघ्र कुमारों को मेरे पास यहाँ लिवा लाओ ॥ १३ ॥

एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम ।

आज्ञासास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः \*शुक्र वाससः ॥ १४ ॥

\* पाठातरे — “शक्तेजसः । ”

न्योंकि वे ही मेरे जीवन के आधार हैं और वे ही मेरे प्राण-प्रिय हैं। श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा सुन सफेद पोशाक पहिने हुए तीनों कुँवर ॥ १४ ॥

प्रव्हाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः ।

ते तु दृष्टा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ॥ १५ ॥

सन्ध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् ।

बाष्पपूर्णे च नयने दृष्टा रामस्य धीमतः ।

हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥ १६ ॥

बड़ी सावधानी से और हाथ जोड़े हुए श्रीरामचन्द्र जी के भवन के भीतर गये। उन लोगों ने श्रीरामचन्द्र जी का मुखमण्डल, ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा की तरह अथवा अस्तोन्मुख सूर्य की तरह मलिन देखा। उन बुद्धिमानों ने श्रीरामचन्द्र जी की आँखों में आँसू भरे हुए देखे। शोभाहीन कमलपुष्प की तरह श्रीरामचन्द्र जी का मुख निहार, उन लोगों ने ॥ १५ ॥ १६ ॥

ततोऽभिवाद्य त्वरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः ।

तस्युः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के चरणों पर माथा टेक उनको प्रणाम किया। तदनन्तर वे हाथ जोड़े खड़े रहे। किन्तु उस समय श्रीरामचन्द्र जी केवल आँखों से आँसू बहाते रहे ॥ १७ ॥

तान्परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाबलः ।

आसनेष्वासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह १८ ॥

(कुक्क देर वाद) श्रीरामचन्द्र जी ने दोनों भुजाओं से सब को गले लगाया और उनसे आसनों पर बैठने को कहा। तदनन्तर वे बोले ॥ १८ ॥

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम ।

भवद्दिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥ १९ ॥

हे नरवरो ! आप लोग मेरे सर्वस्व हैं । आप लोग मेरे जीवनाधार हैं । आपही के सम्पादित राज्य का मैं पालन करता हूँ ॥ १९ ॥

भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्ध्या च परिनिष्ठिताः ।

सम्भूय च मदर्थेऽयमन्वैष्टव्यो नरेश्वराः ॥ २० ॥

आप लोग शास्त्रों में निष्ठात और बड़े चतुर हैं आप लोगों की समझ अच्छी है । अतः आप लोग मिल कर, मैं जो कहता हूँ, उस पर विचार करें ॥ २० ॥

तथा बदति काकुत्स्थे अवधानपरायणाः ।

उद्दिग्नमनसः सर्वे किनु राजाऽभिधास्यति ॥ २१ ॥

इति चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने ऐसा कहा, तब तीनों भाई घबड़ा कर, बड़े व्यान से सोचने लगे कि, दंखे महाराज ज्ञा कहते हैं ॥ २१ ॥

उत्तरकाण्ड का चवालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

पञ्चत्वारिंशः सर्गः

—:o:—

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ।

उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

जब वे सब कुँवर उदास हो बैठ गये ; तब श्रीरामचन्द्र जी ने उसे मुँह से कहा—॥ १ ॥

सर्वे शुणुत भद्रं वा मा कुरुध्वं मनोऽन्यथा ।  
पैराणां मम सीतायां यादशी वर्तते कथा ॥ २ ॥

हे भाइयो ! आप लोगों का भला है । मैं जो कुछ कहूँ उसके  
विपरीत मत चलना । मेरी सीता के बारे मैं पुरवासियों का जो मत  
है, उसे आप सब सुने ॥ २ ॥

पैरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।  
वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥ ३ ॥

पुरवासियों और जनपदवासियों में मेरे बारे मैं ऐसा भयानक  
अपवाद फैला हुआ है, जो मेरे मर्मस्थलों को विदीर्घ करे डालता  
है ॥ ३ ॥

अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।  
सीताऽपि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

देखो, मैं महात्मा इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ और  
सीता भी महात्मा जनक के कुलीनवंश की है ॥ ४ ॥

जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने ।  
रावणेन हृता सीता स च विध्वसितो मया ॥ ५ ॥

हे सौम्य लक्ष्मण ! तुम तो यह जानते ही हो कि, दण्डकारण्य  
में रावण जानकी को हर ले गया था । सो उस दुरात्मा का सो  
सर्वनाश मैंने कर ही डाला ॥ ५ ॥

तत्र मे बुद्धिरूपन्ना जनकस्य सुतां प्रति ।  
अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ॥ ६ ॥

लङ्घा ही में मेरे मन में यह बात खटकी थी कि, राक्षस के घर में रही हुई सीता को मैं अपने नगर में कैसे ले चलूँ ॥ ६ ॥

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा ।

प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥ ७ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम्हारी आँखों देखी बात है कि, मुझे ( अपने सतीत्व का ) विश्वास कराने के लिये सीता ने दहकती हुई आग में प्रवेश किया था । तब हव्यावहन अग्निदेव ने प्रकट हो ॥ ७ ॥

अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ।

चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां सन्धिं पुरा ॥ ८ ॥

ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम ।

एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसन्धिं ॥ ९ ॥

तथा आकाशस्थित वायु ने सीता को दोषरहित बतलाया था । देवताओं और ऋषियों के सामने चन्द्र और सूर्य ने भी जानकी के पापरहित होने ही की बात कही थी । ऐसी शुद्ध चरित्र वाली सीता को देवता और गन्धर्वों के सामने ॥ ८ ॥ ६ ॥

लङ्घादीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेदिता ।

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ॥ १० ॥

लङ्घा में इन्द्र ने मेरे हाथ सौंपा था । इसके अतिरिक्त मेरा अन्तरात्मा भी यही कहता है कि, यशस्विनी सीता शुद्ध है ॥ १० ॥

ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ।

अयं तु मे महान्वादः शोकश्च हृदि वर्तते ॥ ११ ॥

इसीसे मैं उसे अयोध्या में ले आया था । किन्तु अब यह महापवाद मुझको बड़ा सता रहा है ॥ ११ ॥

**पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।**

**अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥**

पुरवासी और जनपदवासी मेरो बड़ी निन्दा करते हैं । लोक में जिसकी निन्दा या बदनामी फैल जाती है ॥ १२ ॥

**पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ।**

**अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ॥ १३ ॥**

वह व्यक्ति, जब तक उसको वह अकीर्ति फैलाती रहती है, तब तक अधम लोकों में पड़ा रहता है । देवता भी अकीर्ति—(बदनामी) को तुरा बतलाते हैं । कोर्तिवान का सर्वत्र बड़पन समझा जाता है ॥ १३ ॥

**कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ।**

**अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषभाः ॥ १४ ॥**

अतः महात्मा लोग कीर्तिसम्पादन के लिये सब प्रकार से उपाय किया करते हैं । हे पुरुषश्रेष्ठों ! मैं धपने जीवन को और तुम लोगों तक को ॥ १४ ॥

**अपवादभयाद्वीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ।**

**तस्माद्वन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ॥ १५ ॥**

अपवाद के भय से भीत डो, परित्याग कर सकता हूँ । फिर सीता की तो वात ही क्या है । आप लोग देखो, मैं इस समय अकीर्ति रूपी शोकसागर में डूब रहा हूँ ॥ १५ ॥

न हि पश्याम्यहं भूतं किञ्चिद्दुःखमतोऽधिकम् ।

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ॥ १६ ॥

इससे अधिक दुःख तो मुझे अन्य किसी भी प्राणी में नहीं देख पड़ता । हे लक्ष्मण ! तुम कल सबेरे सुमन्त्र से रथ ज्ञातवा कर ॥ १६ ॥

आरुहसीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सुज ।

गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ॥ १७ ॥

और उस पर सीता को सचार करा मेरे राज्य के बाहिर छोड़ आओ । गङ्गा जी के उस पार महर्षि वाल्मीकि जी का ॥ १७ ॥

आश्रमो दिव्यसङ्काशस्तमसातीरमाश्रितः ।

तत्रैनां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ॥ १८ ॥

तमसा नदी के तट पर दिव्य आश्रम है । हे लक्ष्मण ! तुम उसी जनशून्य बन में सोता को छोड़ कर, ॥ १८ ॥

शीघ्रमागच्छ \*सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम ।

न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथश्चन ॥ १९ ॥

शीघ्र लौट आना । हे लक्ष्मण ! तुम इतना मेरा कहना करो और सीता के बारे में मुझसे कुछ भी मत कहो ॥ १९ ॥

तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा ।

अप्रीतिर्हि परा मर्त्यं त्वयैतत्प्रतिवारिते ॥ २० ॥

हे लक्ष्मण ! अब तुम जाओ और इस बारे में भले बुरे का विचार मत करो । यदि तुम इसके लिये मुझे रोकोगे, तो मैं बहुत अप्रसन्न होऊँगा ॥ २० ॥

शापिता हि मया यूर्यं पादाभ्यां जीवितेन च ।

ये माँ वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथञ्चन ।

अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ॥ २१ ॥

मैं तुम्हें अपने दोनों चरणों की और प्राणों की शपथ दिलाता हूँ कि, इस बारे में तुम किसी प्रकार का अनुनय विनय मुझसे मत करना । यदि करोगे तो मेरे अभीष्टकार्य में वाधा पड़ेगी और मैं तुम्हें सदा अपना अहितकारी समझूँगा ॥ २१ ॥

मानयन्तु भवन्तो माँ यदि मच्छासने स्थिताः ।

इतोद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ॥ २२ ॥

यदि तुम लोग मेरी आङ्गा मानते हों तो मैं जो कहुँ सो करो । मैं कहता हूँ सीता को यहाँ से ले जा कर मेरी आङ्गा पूरी करो ॥ २२ ॥

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रयान् ।

पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ॥ २३ ॥

इसके पूर्व एक बार सीता ने मुझसे कहा भी था कि, मैं श्रीगङ्गातटवासी मुनियों के आश्रमों को देखना चाहती हूँ । अतः ऐसा करने से उसका मन भी रह जायगा ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण \*पिहितेक्षणः ।

+संविवेश स धर्मात्मा 'आतृभिःपरिवारितः ।

‡शोकसंविप्रहृदयो मिशश्वास यथा द्विपः ॥ २४ ॥

इति पञ्चत्वारिंशः सर्गः ॥

१ आतृभिः परिवारितः—आतृन विसूज्य स्ववेशम प्रविवेशेत्यर्थः । ( गो० )

\* पाठान्तरे—“ पिहिताननः । ” † पाठान्तरे—“ प्रविवेश । ”

‡ पाठान्तरे—“ शोकसंलग्नहृदयो । ”

यह कहते कहते श्रीरामचन्द्र जी के नेत्रों में आँख भर आये । वे सब को बिदा कर स्वयं भी अपने भवन में चले आये । उनका हृदय शोकसन्तप्त हो गया और वे हाथी की तरह लंबी साँसे लेने लगे ॥ २४ ॥

उत्तरकाण्ड का पैतालोसर्वां सर्ग पुरा हुआ ।

—\*—

### षट्क्त्वारिंशः सर्गः

—: ० :—

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।

सुमन्त्रमब्रवीद्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

जब रात बीती और भोर हुआ ; तब उदास और शुष्कवद्न लक्ष्मण जी ने सुमन्त्र से कहा ॥ १ ॥

सारथे तुरगान् शीघ्रान्योजयस्य रथोत्तमे ।

स्वास्तीर्णं राजवचनात्सीतायाश्वासनं \*शुभम् ॥ २ ॥

सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् ।

मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥

हे सारथे ! श्रीरामचन्द्र जी की आङ्गा है । तुम शीघ्रगामी घोड़े रथ में जातो और रथ में सीता जी के बैठने योग्य विद्वाना विद्वांशो । क्योंकि महाराज के आङ्गानुसार सीता को पवित्रकर्मा ऋषियों के आश्रम में ले चलना है । अतः तुम शीघ्र रथ तैयार कर के ले आओ ॥ २ ॥ ३ ॥

\* पाठान्तरे—“ कुरु । ”

सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः ।  
 रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशश्यया ॥ ४ ॥  
 अनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम् ।  
 रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥

सुमंत्र—“जो आज्ञा” कह कर और रथ में उत्तम घोड़े जोत तथा सुखदायी मुलायम बिछौने विछा, रथ ले आये और मित्रों का मान बढ़ाने वाले लद्मण जी से बोले—हे प्रभो ! रथ तैयार है, अब जो काम करना हो सो कीजिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेशमनि लक्ष्मणः ।  
 प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥ ६ ॥

नरश्रेष्ठ लद्मण जी सुमंत्र के यह चर्चन सुन, राजभवन में सीता जी के निकट जा उनसे बोले ॥ ६ ॥

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।  
 नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञसश्चाश्रमं प्रति ॥ ७ ॥

हे वैदेहि ! आपने श्रोमहाराज से श्रोगङ्गातटवासी ऋूषियों के आश्रमों को देखने की प्रार्थना की थी और उन्होंने आपको प्रार्थना मान कर आपको आश्रमों को दिखाना स्वीकार किया था । अतः महाराज ने इस समय आपको ले जाने के लिये मुक्तकी आज्ञा दी है ॥ ७ ॥

गङ्गातीरे मया देवि कृषीणामाश्रमान् शुभान् ।  
 शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥ ८ ॥

अतः हे देवि ! आप श्रीगङ्गातटवासी ऋषियों के पवित्र आश्रमों का देखने के लिये चलिये । मैं महाराज की आङ्गा से आपको शीघ्र ॥ ८ ॥

अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि ।

एवमुक्तातु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ९ ॥

मुनिसेवित वन में ले चलूँगा । महात्मा लक्ष्मण जी के ऐसा कहने पर, सीता जी ॥ १० ॥

प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् ।

वासांसि च महार्हाणि रक्षानि विविधानि च ॥ १० ॥

अत्यन्त हर्षित हो जाने को तैयार हो गर्याँ । उन्होंने ( मुनि पत्नियों का देने के लिये ) मूल्यवान् वस्त्र और विविध प्रकार के रक्ष अपने साथ लिये ॥ १० ॥

गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ।

इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार यात्रा की तैयारी कर, उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा— हे लक्ष्मण ! मैं मुनिपत्नियों को ये बहुमूल्य आभरण दूँगी ॥ ११ ॥

वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ।

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ॥ १२ ॥

इनके अतिरिक्त बढ़िया वस्त्र और विविध प्रकार के रक्षादि मैं दान करूँगी । लक्ष्मण जी ने “बहुत अच्छी बात है,” कह कर, सीता जी को रथ पर बैठाया ॥ १२ ॥

प्रययौ \*शीघ्रतुरगं रामस्याज्ञामनुस्मरन् ।

अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ १३ ॥

और श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा को स्मरण कर, वे शीघ्र चलने वाले घोड़ों के रथ में बैठ चल दिये । उस समय सीता जी ने कान्तिवान लक्ष्मण जी से कहा ॥ १३ ॥

अशुभानि वहून्येव पश्यामि रघुनन्दन ।

नयनं मे फुरत्यथ गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥ १४ ॥

हे रघुनन्दन ! इस यात्रा में मुझे बड़े बड़े अशकुन देख पड़ते हैं । देखो, इस समय मेरी दहिनी आँख फड़क रही है और मेरा शरीर काँप रहा है ॥ १४ ॥

हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये ।

आौत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ॥ १५ ॥

हे लक्ष्मण ! मुझे अपना हृदय भी रोगप्रस्त मनुष्य जैसा जान पड़ता है । मुझे बड़ी उत्कण्ठा भी हो रही है और महान् अर्धैर्य से मैं विकल हूँ ॥ १५ ॥

शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ।

अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ॥ १६ ॥

हे विशाललोचन ! मुझे यह पृथिवी सुखशून्य देख पड़ती है । हे भ्रातृवत्सल ! क्या तुम्हारे बड़े भाई का तो कोई अमङ्गल नहीं हुआ ? ॥ १६ ॥

श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः ।

पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ॥ १७ ॥

\* पाठान्तरे—“ शीघ्रतुरगै । ”

हे वीर ! विशेष कर मेरी सासें तो सब प्रकार से प्रसन्न हैं ?  
पुरवासी और जनपदवासी तो सब सकुशल हैं ? ॥ १७ ॥

इत्यज्ञलि कृता सीता देवता अभ्ययाचत ।

लक्ष्मणोऽर्थं \*ततः श्रुत्वा शिरसा वन्द्य मैथिलीम् ॥ १८ ॥

यह कह सीता जी हाथ जोड़ कर, देवताओं की मनौती मनाने  
लगीं । तब सीता जी की सब बातें सुन, लक्ष्मण जी ने सिर सुका  
कर, सीता जी को प्रणाम किया ॥ १८ ॥

शिवमित्यब्रवीदृष्टो हृदयेन विशुष्यता ।

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ॥ १९ ॥

और हृदय के भाव को हृदय ही में दबा कर, बनावटी प्रसन्नता  
प्रकट कर, बैले—हे देवि ! सब मङ्गल हैं । तदनन्तर जाते जाते  
लक्ष्मण जी गोमती के तीरबर्ती आश्रम में पहुँचे और रात भर  
वहाँ रहे ॥ १९ ॥

प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ।

योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ॥ २० ॥

सबेरा होने पर लक्ष्मण जी ने उठ कर, सुमंत्र से कहा शीघ्र  
रथ जातो । आज मैं भागीरथी का जल ॥ २० ॥

शिरसा धारयिष्यामि †त्रियम्बक इवौजसा ।

सोऽश्वान्विचारयित्वा? तु रथे युक्तान्पनोजवान् ॥ २१ ॥

१ विचारयित्वा रथेयुक्तानश्वान्विचारयित्वा, अतिचाङ्गल्यकिञ्चिन्निवृत्तये  
इत्सत्तः सञ्चाल्य । ( शि० )

\* पाठान्तरे—“तु तं । ” † पाठान्तरे—“ त्र्यम्बकः पर्वते यथा । ”

श्रीशिव जी की तरह अपने मस्तक पर धारण करूँगा ( अर्थात् गङ्गा स्नान करूँगा ) । यह आज्ञा पा कर, सुमंत्र ने मन के समान वैगवान धोड़ों को धुमा किरा कर, रथ में जाता ॥ २१ ॥

आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्छलिरब्रवीत् ।

सा तु सूतस्य वचनादास्त्रोह रथोत्तमम् ॥ २२ ॥

और हाथ जोड़ कर जनकनन्दिनी से कहा कि, आप रथ पर सवार हों । सुमंत्र के कहने से सीता जी रथ पर जा बैठीं ॥ २२ ॥

सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ।

आससाद विशालाक्षी गङ्गां पापविनाशिनीम् ॥ २३ ॥

जानकी जी, लक्ष्मण जी और बुद्धिमान सुमंत्र ; तीनों उस रथ पर बैठ कर वहाँ से रवाना हुए । चलते चलते विशालाक्षी जानकी गङ्गा के तट पर जा पहुँची ॥ २३ ॥

अर्थार्थदिवसं गत्वा भागीरथ्याजलाशयम् ।

निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्रस्त्रोद महास्वनः ॥ २४ ॥

( सबेरे के चले हुए ) लक्ष्मण जी ( जानकी सहित ) दोपहर होते होते भागीरथी श्रीगङ्गा जी के तट पर पहुँचे । श्रीगङ्गा जी को देख, लक्ष्मण अपने को न सम्भाल सके । वे दुखी हो ज़ोर से रोने लगे ॥ २४ ॥

सीता तु परमायता दृष्टा लक्ष्मणमातुरम् ।

उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥ २५ ॥

तब धर्मज्ञा सीता जी लक्ष्मण जी को आतुर देख अत्यन्त दुःखी हो उनसे बोलीं कि, हे लक्ष्मण ! तुम किस लिये रोते हो ? ॥ २५ ॥

जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।

हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥ २६ ॥

हे लक्ष्मण ! मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि, मैं गङ्गा  
जी के तीर पर चलूँ, सो मैं आज यहाँ आयी हूँ । सो इससे तो  
तुमको इस समय हर्षित होना था । इसके विपरीत तुम रो रो कर  
मुझे दुःखी क्यों कर रहे हो ॥ २६ ॥

नित्यं त्वं रामपाश्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।

कच्चिद्विनाकृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥ २७ ॥

तुम सदा श्रीरामचन्द्र जी के पास रहते हो, अतएव क्या दी  
दिन का अन्तर पड़ने से तुमको विषाद हो रहा है ॥ २७ ॥

ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ।

न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥ २८ ॥

हे लक्ष्मण ! यद्यपि श्रीराम जी तो मुझको अपने प्राणों से भी  
अधिक प्यारे हैं ; तथापि मैं तो दुखी नहीं होती । अतः तुम ऐसा  
लड़कपन ( मूर्खता ) मत करो ॥ २८ ॥

तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ।

ततो मुनिभ्यो दास्यामि वासांस्याभरणानि च ॥ २९ ॥

तुम मुझे गङ्गा के उस पार ले चलो और वहाँ मुझे तपस्वियों  
के दर्शन कराओ । जिससे मैं उनको वस्त्राभरण भेंट करूँ ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा महर्षीणां \*यथार्हमभिवादनम् ।

तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥ ३० ॥

और उन महर्षियों का यथायोग्य प्रणाम करूँ । तदन्तर एक रात वहाँ रह कर, अयोध्यापुरी की लौट चलूँ ॥ ३० ॥

ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ।

त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतांवरम् ॥ ३१ ॥

कोंकि मेरा मन भी उन कमलनयन, सिंह की तरह छाती बाले, कृशोदर, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी को देखने के लिये उतावला हो रहा है ॥ ३१ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ।

नाविकानाहयामास लक्ष्मणः परवीरहा ।

इयं च सज्जानौश्वेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ ३२ ॥

सीता जी के ये वचन सुन कर, रिपुनाशकारी लक्ष्मण जी ने अपने दोनों सुन्दर नेत्र पोक्के और मळाहों को बुलाया । बुलाते ही वे आये और हाथ जोड़ कर बोले कि, महाराज ! नाव तैयार है ॥ ३२ ॥

तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत् ।

गङ्गां सन्तारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ॥ ३३ ॥

इति षट्कृत्वारिशः सर्गः ॥

पुण्यस्तलिला जान्हवी के पार होने की इच्छा से लक्ष्मण जी, सीता सहित नाव पर बैठे और बड़ी सावधानी से वे गङ्गा के पार पहुँच गये ॥ ३३ ॥

उत्तरकाण्ड का क्रियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

## सप्तचत्वारिंशः सर्गः

—०—

[ नोट — यथा पि ४६वें सर्ग के समाप्त करते हुए आदिकवि ने, एक ही इलोक में लक्ष्मण का श्रीगङ्गा जी के पार होना लिख दिया है, तथापि इस सर्ग में श्रीगङ्गा जी के पार होने का वर्णन विस्तार से किया है । ]

अथ नावं सुविस्तीर्णा नैषादीं राघवानुजः ।

आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥ १ ॥

मल्लाहों की लायी हुई सज्जी सजायी बड़ी नाव पर पहिले जानकी जी को बैठा, फिर लक्ष्मण जी स्वयं उस पर सवार हुए ॥ १ ॥

सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः ।

उवाच शोकसन्तसः प्रयाहीति च नाविकम् ॥ २ ॥

तदनन्तर सुमन्त्र से कहा—“तुम रथ सहित इसी पार रहो ।”  
फिर शोकाकुल हो मल्लाहों से कहा कि—“नाव चलाओ ।” ॥ २ ॥

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः ।

उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः ॥ ३ ॥

श्रीगङ्गा जी के उस पार पहुँच कर, लक्ष्मण जी आँखों में आँसू भर, गद्गद कण्ठ से सीता जी से बोले ॥ ३ ॥

हृदगतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता ।

अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥ ४ ॥

हे विदेहकुमार ! ऐसे बुद्धिमान महाराज ने इस निन्द्यकर्म में मुझे नियुक्त कर, मुझे संसार में निन्दा का पात्र बनाया है । इसलिये यह कार्य मेरे हृदय में काटि की तरह चुभ रहा है ॥ ४ ॥

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ।  
नचास्मिन्नीद्वशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥ ५ ॥

ऐसे लोकनिन्दित काम करने की अपेक्षा तो, यदि मैं मर जाता  
तो बहुत ही अच्छा था । मेरे लिये बड़ा अच्छा होता, यदि मैं इस  
जाल में न फाँसा जाता ॥ ५ ॥

प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने ।

इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ ६ ॥

हे शाभने ! तुम प्रसन्न हो । तुम मुझे दोष मत देना । यह कह  
कर लक्ष्मण जी हाथ ज्ञाड़े हुए, ज़मीन पर गिर पड़े ॥ ६ ॥

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्टा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः ।

मैथिली भृशसंविशा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

जब लक्ष्मण जी हाथ ज्ञाड़े, पृथिवी पर गिर कर अपना मरना  
मनाने लगे, तब सीता ने लक्ष्मण जी की ऐसी दशा देख, अत्यन्त  
घबड़ा कर उनसे कहा ॥ ७ ॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण ।

पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥ ८ ॥

हे लक्ष्मण ! मेरी समझ में नहीं आता कि, बात क्या है ?  
मुझे साफ साफ बतलाओ । मैं देखती हूँ कि, तुम अति विकल हो  
सो महाराज तो सकुशल हैं ? ॥ ८ ॥

शापितोसि नरेन्द्रेण यत्त्वं सन्तापमागतः ।

तद्ब्रूयाः सन्धिधौ महामहमाङ्गापयामि ते ॥ ९ ॥

हे बत्स ! तुमको महाराज की शपथ है । बतलाओ तुम्हारे  
इस प्रकार सन्तान होने का कारण क्या है ? मैं तुम्हें आज्ञा देती  
हूँ ॥ ६ ॥

वैदेहा चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ।

अवाङ्मुखो \*बाष्पगलो वाक्यमेतदुवाचह ॥ १० ॥

जब सोता जो ने इस प्रकार शपथ दी, तब लक्ष्मण जो बड़े  
दीन हो, नीचे को मुँह कर, गदगद कण्ठ से यह बोले ॥ १० ॥

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् ।

पुरे जनपदे चैव त्वकृते जनकात्मजे ॥ ११ ॥

हे जनकनन्दिनी ! राजधानी और राज्य भर में तुम्हारे संम्बन्ध  
में जो महादारुण अपवाद फैला हुआ है, उसे सभा में सुन, ॥ ११ ॥

रामः सन्तस्त्वदयो मां निवेद्य गृहं ग्रतः ।

न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्र जो बड़े दुःखी हुए और मुझे समस्त वृत्तान्त  
बतला राजभवन में चले गये । हे देवि ! वे सब बातें, आपके  
सामने कहने योग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥

यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यर्थात्पृष्ठतः कृतः ।

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्देषा मम सन्निधौ ॥ १३ ॥

महाराज ने उनको अपने मन ही में द्विपा कर रखा है ।  
मैंने उन्हें सुना अनसुना कर दिया है । ( उन बातों का सारांश यह  
है कि ) महाराज ने आपका त्याग किया है । किन्तु मेरी दृष्टि में

\* पाठान्तरे—“ वाष्पकलं । ”

आप सर्वथा निर्दोषा हैं अथवा महाराज ने मेरे सामने आपको निर्दोष बतलाया है ॥ १३ ॥

पैरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ।

आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥ १४ ॥

परन्तु वे पुरवासियों के अपवाद से डरते हैं । आप और कुछ न समझें । मैं आपको यहाँ आश्रम के समोप छोड़ जाऊँगा ॥ १५ ॥

राज्ञः \*शासनमादाय तथैव किल दौर्हदम् ।

तदेतज्जाहवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ॥ १५ ॥

क्योंकि राजा की आज्ञा और गर्भिणी द्वारा की अभिलाषा अवश्य पुरी करनी चाहिये । अतः श्रीगङ्गा जी के तट पर ब्रह्मर्षियों के तपोवन में ॥ १५ ॥

पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ।

राज्ञो †दशरथस्यैव पितुर्मुनिपुङ्गवः ॥ १६ ॥

सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ।

पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।

उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥ १७ ॥

जो अतिरम्य और पवित्र है, मैं आपको त्यागूँगा । आप यहाँ रहें और शोक न करें । हे शुभे ! मेरे पिता महाराज दशरथ के मुनिश्रेष्ठ, महायशस्वी विप्र वाल्मीकि बड़े मित्र हैं । हे सीते ! अतः आप उन्होंने महात्मा के चरणों में पहुँच, सावधानता पूर्वक उनकी सेवा करती हुई सुख से रहें ॥ १६ ॥ १७ ॥

\* पाठान्तरे—“ शासनमाज्ञाय तवेदं । ”

† पाठान्तरे—“ दशरथस्येषुः । ”

[ नेट—महर्षि वाल्मीकि के लिये “विप्र” एवं “महायशस्वी” का विशेषण देना और उनके अपने पिता का भित्र बतलाना यह प्रकट करता है कि, सीता का वाल्मीकि के पास रहना अपवादमूलक न होगा । ]

पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।  
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥ १८ ॥

इति सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

हैं सीते ! आप श्रीरामचन्द्र जी का अपने हृदय में ध्यान करती हुई, पतिव्रतधर्म का पालन करें । बस इसीसे आपका परम कल्याण होगा ॥ १८ ॥

उत्तरकाण्ड का सैतालीसर्वां सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

### अष्टचत्वारिंशः सर्गः

—:०:—

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ।

परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ १ ॥

जनकनन्दिनो महारानी वैदेही जी, लक्ष्मण जी के मुख से इन कठोर वचनों को सुन कर, अत्यन्त दुःखी हुई और पृथिवी पर गिर पड़ी ॥ १ ॥

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।

लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥

वे कुछ देर अचेत रह कर उठीं और आँखों में आँसू भर कर एवं दीन ही लक्ष्मण जी से कहने लगीं ॥ २ ॥

मामिकेर्य तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्षण ।

धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥

हे लक्षण ! विधाता ने मेरा शरीर दुःख भोगने ही के लिये बनाया है । इसीसे आज दुःख मुझे मूर्ति धारण कर दिखाई देता है ॥ ३ ॥

किंनु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।

याऽहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥ ४ ॥

नहीं मालूम, पूर्वजन्म में मैंने क्या पाप किया था, अथवा किसका रूपी से वियोग करवाया था, जिसके कारण मेरे शुद्ध चरित्रा और पतिव्रता होने पर भी मेरे पति से मेरा वियोग किया जाता है ॥ ४ ॥

पुराऽहमाश्रमे वासं राष्ट्रपादानुवर्तिनी ।

अनुरुद्ध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥ ५ ॥

पहिले भी श्रीरामचन्द्र के साथ वन में वास कर श्रीरामचन्द्र के चरणों की सेवा की । किन्तु हे लक्षण ! आश्रम में रह कर दुःख भेलते हुए भी, मैंने स्वामी के संग रहने के कारण उन दुःखों को सुख ही माना ॥ ५ ॥

सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनी कृता ।

आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥६॥

हे सौम्य ! अब मैं इस जनशून्य आश्रम में कैसे रह सकूँगी ? मैं महादुःखियारी किसके आगे अपना दुःख रोऊँगी ॥ ६ ॥

किंनु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।

कस्मिन्वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ ७ ॥

हे लक्ष्मण ! ऋषियों के पूढ़ने पर मैं उनको क्या उत्तर दूँगी ? क्योंकि मैंने तो कोई दुष्कर्म किया नहीं । फिर मैं उनसे महात्मा श्रीरामचन्द्र द्वारा अपना परित्याग किये जाने का क्या कारण बतलाऊँगी ॥ ७ ॥

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्वीजले ।

त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ८ ॥

हे लक्ष्मण ! मैं तो श्रीगङ्गा में कूद कर अपने प्राण गवाँ देती । पर ऐसा भी तो मैं नहीं कर सकती । क्योंकि यदि मैं ऐसा करूँ तो राजवंश का और मेरे पति का परिहास होगा ॥ ८ ॥

यथाऽन्नं कुरु सौमित्रे त्यज्य मां दुःखभागिनीम् ।

निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

हे सुमित्रानन्दन ! तुम उनकी आङ्गा के अनुसार ही काम करो । मुझ दुःखियारी को यहाँ छोड़ जाओ । किन्तु अब मैं जो कहती हूँ उसे लुना ॥ ९ ॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च ।

शिरसा वन्ध्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥ १० ॥

पहिले तो विशेष कर मेरी ओर से हाथ जोड़ कर और चरणों में माथा टेक कर, मेरी सब सासों से और फिर महाराज से कुशल पूँछना ॥ १० ॥

शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण ।

वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः ॥ ११ ॥

हे लक्ष्मण ! सब को सिर झुका कर मेरा प्रणाम कहना और अपने धर्म में सदा सावधान रहने वाले महाराज से कहना ॥ ११ ॥

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ।

भक्त्या च परया युक्ता हिता च तत्र नित्यशः ॥१२॥

हे रघुनन्दन ! तुमको तो भली भाँति मालूम ही है कि, तुम्हारी सीता शुद्धचरित्रा है और सदा तुममें भक्ति रखती हुई तुम्हारा हित चाहती रहती है ॥ १२ ॥

अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने ।

यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥ १३ ॥

मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।

वक्तव्यश्वैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥ १४ ॥

हे वीर ! तुमने अपवाद के भय से मेरा परित्याग किया है । यदि मुझे त्यागने से तुम्हारा अपवाद नष्ट होता हो, तो मुझे यह भी स्वीकार है । क्योंकि मेरे लिये तो तुम्ही मेरी परमगति हो । यह बात तुम धर्म में सदा सावधान रहने वाले महाराज से कह देना ॥ १३ ॥ १४ ॥

यथा भ्रातुषु वर्तेयास्तथा पौरेषु नित्यदा ।

परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥ १५ ॥

( महाराज को ) जैसे तुम भाइयों के साथ व्यवहार करते हो वैसे ही पुरवासियों के साथ व्यवहार करना । यही तुम्हारा कर्त्तव्य है । इसीसे तुमको उत्तम से उत्तम कीर्ति प्राप्त होगी ॥ १५ ॥

यत्तु पौरजने राजन्धर्मेण समवाप्नुयात् ।

अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥ १६ ॥

( लक्ष्मण यह भो कह देना कि ) जैसे हो वैसे पुरवासियों के अपवाद से तुम अपने को बचाओ अथवा धर्मसहित पुरवासियों

के साथ व्यवहार करना ही तुम्हारा धर्म है । ( इसके साथ ही यह भी कह देना कि ) हे नरश्चेष्ट ! मुझे अपने, शरीर की रक्ती भर भी चिन्ता नहीं है ॥ १६ ॥

**यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।**

**पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥ १७ ॥**

हे रघुनन्दन ! अतपव जिस प्रकार पुरावासियों का अपवाद कूटे तुम वैसा ही करो । ( रही मैं सो ) नारी के लिये उसका पति ही देवता है, पति ही उसका बन्धु है और पति ही उसका गुरु ( अर्थात् पूज्य ) है ॥ १७ ॥

**प्राणैरपि प्रियं तस्माद्गृतुः कार्यं विशेषतः ।**

**इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥ १८ ॥**

इस लिये खी को चाहिये कि, अपने प्राण का दाँव लगा कर भी पाँत का मनचाहा कार्य करे । हे लक्ष्मण ! मेरा यह संदेशा जाकर तुम महाराज से कह देना ॥ १८ ॥

**निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ।**

**एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १९ ॥**

जाओ और यह भी देखते जाओ कि ; इस समय मैं गर्भवती हूँ । जब जानकी जी ने ऐसा कहा तब लक्ष्मण जो बड़े दुःखी हुए ॥ १९ ॥

**शिरसा वन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह ।**

**प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्वेव महास्वनः ॥ २० ॥**

फिर उन्होंने सीता जी को प्रणाम करने के लिये अपना माथा पृथिवी पर टेका । ( कहने की इच्छा रहने पर भी ) वे कुछ न

कह सके और महारानी की प्रदक्षिणा कर उच्चस्वर से रोने लगे ॥ २० ॥

ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वक्ष्यसि शोभने ।  
दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ॥ २१ ॥

फिर वे थोड़ी देर बाद कुछ सोच कर कहने लगे — हे शोभने ! यह तुम क्या कहती हो ? ( कि तुम मुझे देखते जाओ ) हे अनघे ! मैंने तो आज तक कभी तुम्हारा रूप नहीं देखा । मेरी दृष्टि तो सदा तुम्हारे चरणों ही में रही है ॥ २१ ॥

कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ।

इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ॥ २२ ॥

फिर मैं श्रीरामचन्द्र जी के पीठ पीछे इस निर्जनवन में किस प्रकार तुमको देख सकता हूँ । यह कह और जानकी जी को नमस्कार कर, लक्ष्मण नाव पर चढ़े ॥ २२ ॥

आरुरोह पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ।

स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः ॥ २३ ॥

फिर नाव पर सवार हो उन्होंने मल्लाह से कहा — नाव उस पार ले चलो । इस प्रकार अत्यन्त दुःखी लक्ष्मण गङ्गा जी के उत्तर तट पर आये ॥ २३ ॥

संमूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहदद्रुतम् ।

मुहुर्मुहः प्रावृत्य दृष्टा सीतामनाथवत् ॥ २४ ॥

शोक से विहृल लक्ष्मण जो तुरन्त रथ पर सवार हुए, किन्तु बार बार पीछे की ओर फिर कर अनाथ की तरह ( बैठी हुई ) जानकी जो को देखते जाते थे ॥ २४ ॥

चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ।  
दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।  
निरीक्षमाणां तूद्विग्रां सीतां शोकः समाविशत् ॥२५॥

लक्ष्मण जी ने देखा कि, दुखियारी महारानी सीता गङ्गा के उस पार छठपटा रही हैं । जब सीता जी ने देखा कि, लक्ष्मण जी का रथ धीरे धीरे दूर निकल गया ; तब वे और भी अधिक शोकातुर हो गयीं ॥ २५ ॥

सा दुःखभारावनता यशस्विनी  
यशोधरा नाथमपश्यती सती ।  
रुरोद सा वर्हिणनादिते वने  
महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥ २६ ॥

इति अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

फिर दुःखभार से दबी हुई पतिवता एवं यशस्विनी सीता, अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र जी को न देख कर, मयूरों से शब्दायमान उस वन में बड़े ज़ोर से रोने लगी ॥ २६ ॥

उत्तरकाण्ड का अङ्गतालोकनां सर्ग पूरा हुआ ।

—\*—

### एकोनपञ्चाशः सर्गः

—०—

सीतां तु रुदर्तीं दृष्टा ते तत्र मुनिदारकाः ।  
प्राद्रवन्यन्तभगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ॥ १ ॥

अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।  
सर्वे निवेदयामासु स्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

उस स्थान के निकट ही मुनिकुमार ( खेल रहे ) थे । जब उन्होंने सीता को रोते देखा, तब वे सब तुरन्त दौड़ कर, बड़े बुद्धिमान वाल्मीकि जी के पास गये और उनके चरणों में सीस नवा पक्व उनको प्रणाम कर उनसे सीता के रोने का हाल कहा ॥ १ ॥ २ ॥

अदृष्टपूर्वा भगवन्कस्याप्येषा महात्मनः ।  
पत्री श्रीरिव संमोहाद्विरौति विकृतानना ॥ ३ ॥

वे बोले—भगवन् ! जिसको पहले हम लोगों ने कभी नहीं देखा, वह किसी बड़े आदमी की एक छोटी बुरा मुँह बना अर्थात् बुरी तरह रो रही है । रूप में वह लहमी के समान है ॥ ३ ॥

भगवन्साधु पश्येस्त्वं देवतामिव खाच्चयुताम् ।  
नद्यास्तु तीरे भगवन्वरस्त्री कापि दुःखिता ॥ ४ ॥

हे महर्षे ! आप चल कर उसे गङ्गा के किनारे देखिये । वह छोटी तो ऐसी जान पड़ती है, मानों स्वर्ग से कोई देवी धराधाम पर उतर आयी हो । हे भगवन् ! वह कोई सुन्दरी छोटी बहुत दुखी हो रही है ॥ ४ ॥

दृष्टाऽस्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।  
अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत् ॥५॥

यद्यपि वह दुखी होने और शोक करने के योग्य नहीं है, तथापि वह बड़े शोक से विकल है और अनाथ की तरह अकेली उच्चस्थर से रो रही है ॥ ५ ॥

\*न ह्येनां मातुषीं विद्वः सत्क्रियाऽस्याः प्रयुज्यताम् ।  
आश्रमस्याविदूरे च त्वामियं शरणं गता ॥ ६ ॥

हमें तो वह मनुष्य की खो नहीं जान पड़ती । आप चल कर उसका सत्कार कीजिये । वह आपके आश्रम के निकट ही है । वह बेचारी पतिव्रता आपके शरण में आयी है ॥ ६ ॥

त्रातारमिच्छते साध्वी भगवंत्स्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

वह रक्षक की चाहना रखती है, अतः आप उसकी (चल कर) रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ।

तपसा लब्धचक्षुष्मान्प्राद्रवद्यत्र मैथिली ॥ ८ ॥

उन मुनिकुमारों की ये बातें सुन और (योगबल से) ध्यान द्वारा सब हाज जान कर, तपःप्रभाव से ज्ञानरूपी चक्षुओं से देखने वाले महर्षि वालमीकि, बड़ी शीघ्रता से उस और गये, जिस और जानकी जी बैठीं हुईं (रुदन कर रही थीं) ॥ ८ ॥

तं प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या ह्येनं महामतिम् ।

तं तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित्पद्मभ्यां महामतिः ॥ ९ ॥

महामतिमान् वालमीकि जी को जाते देख, उनके शिष्य भी उनके पीछे लग लिये । मृषि थोड़ी ही दूर तेजी के साथ पैदल चल कर, ॥ ९ ॥

अर्ध्यमादाय रुचिरं जाह्वीतीरमागमत् ।

ददर्श राघवस्येष्टां सीतां पत्नीमनाथवत् ॥ १० ॥

\* कतक टीकाकार के मतानुसार ६ से १० संख्या तक के इलोकों को प्रक्षिप्त माना है ।

अर्ध्य लिये हुए वे गङ्गातट पर ( बैठी हुई श्रीजानकी जी के पास ) पहुँच गये । वहाँ उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी की प्यारी महारानी जानकी जी अनाथ की तरह बैठी हुई देखीं ॥ १० ॥

तां सीतां शोकभारातीं वाल्मीकिर्मुनिपुञ्जवः ।  
उवाच मधुरां वाणीं लहादयन्निव तेजसा ॥ ११ ॥

मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि शोक के मारे विकल सीता जी को अपने तपोबल से हरित कर, मधुर वचन बोले ॥ ११ ॥

स्नुषादशरथस्य त्वं रामस्य महसी प्रिया ।  
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ १२ ॥

तू दशरथ की पुत्रवधू, श्रीरामचन्द्र की प्यारी पटरानी और जनक की पुत्री है । हे पतिव्रते ! मैं तेरा स्वागत करता हूँ ॥ १२ ॥

आयान्तीचासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।  
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ १३ ॥

जिस समय तू यहाँ आने को तैयार हुई थी, उसी समय मैंने योगबल से ध्यान द्वारा तेरे त्यागे जाने का कारण आदि समस्त बातें अपने मन में जान ली थीं ॥ १३ ॥

तव चैव माहाभागे विदितं मम तत्त्वतः ।  
सर्वं च विदितं महां त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १४ ॥

हे महाभागे ! मैं तेरे शुद्धाचरण को भी भली भाँति जानता हूँ, क्योंकि त्रैलोक्य की सब बातें मुझे ( यहाँ बैठे बैठे ही योगबल से ) मालूम हैं ॥ १४ ॥

अपापां वेद्मि \*सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा ।

विस्त्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे १५ ॥

हे सीते ! मैं अपने तप द्वारा प्राप्त दिव्य दृष्टि द्वारा तुझे पापशून्या जानता हूँ । हे ज्ञानकी ! अब निश्चिन्त हो कर मेरे समीप रह ॥ १५ ॥

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ।

तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥ १६ ॥

मेरे आश्रम के निकट ही अनेक तपस्विनी तप करती हैं । हे वेटी ! वे सब अपनी वेटी की तरह तेरा पालन करेंगी ॥ १६ ॥

इदमध्यं प्रतीच्छ त्वं विस्त्रब्धा विगतज्वरा ।

यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥ १७ ॥

यह अर्थ ले और अपने मन को सावधान कर, सन्तापरहित हो जा और जिस प्रकार तू अपने घर में रहती थी ; उसी तरह ( बेखटके ) यहाँ रह । अब दुखी मत हो ॥ १७ ॥

श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परमद्भुतम् ।

शिरसा वन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥

सीता ने महाषि वाल्मीकि के इन परम अद्भुत वचनों को सुन, उनके चरणों में सिर रख, उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर उनकी बात मान ली ॥ १८ ॥

तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठोऽन्वगात् ।

तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्रयः ।

उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १९ ॥

जब मुनि वहाँ से अपने आश्रम को और लौट कर चले, तब सीता भी हाथ जोड़े हुए उनके पीछे होलीं। मुनिराज का जानकी सहित आते देख, मुनिपत्नियाँ आगे बढ़ पर्वं हर्षित हो, उनसे यह कहने लगीं ॥ १६ ॥

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठं चिरस्यागमनं च ते ।

अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥२०॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। इस बार हम लोगों को बहुत दिनों बाद आपके दर्शन मिले। हम सब आपको प्रणाम करती हैं। आङ्गा दीजिये, हम क्षा करें ॥ २० ॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।

सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥ २१ ॥

उन सब के ये वचन सुन, महर्षि वाल्मीकि जी ने कहा—  
बुद्धिमान महाराज श्रीरामचन्द्र जी की यह भार्या यहाँ आयी है ॥ २१ ॥

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ।

अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥२२॥

यह महाराज दशरथ की पुत्रवधू और महाराज जनक की सुशीला बेटी है। इसे विना अपराध अर्थात् ( निष्कारण ) इसके पति ने त्याग दिया है। यह पतिव्रता और निर्दोषा है। मैं अब सदा इसका पालन करूँगा ॥ २२ ॥

इमां भवन्त्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ।

गौरवान्मय वाक्याच्च पूज्या वोस्तु विशेषतः ॥ २३ ॥

मेरे कथन का नौरव मान कर, आप सब भी बड़ी भ्रीति  
के साथ सम्मानपूर्वक इसकी रक्षा करें ॥ २३ ॥

मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं \*प्रणिधाय<sup>१</sup> महायशाः ।

स्वमाश्रमं शिष्यवृत्तः पुनरायान्महातपाः ॥ २४ ॥

इति एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥

इस प्रकार बार बार महायशस्वी और महातपस्वी वाल्मीकि जी  
उन तापसियों को भली भाँति समझा और जानकी जी को उन्हें  
सौंप, शिष्यों सहित अपने आश्रम में चले आये ॥ २४ ॥

उत्तरकाण्ड का उनचासवां सर्ग समाप्त हुआ ।

—\*—

### पञ्चाशः सर्गः

—:०:—

दृष्टा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे संप्रवेशिताम् ।

सन्तापमगमद्घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥

सीता जी को वाल्मीकि के आश्रम में गयी हुई देख, लक्ष्मण  
जी अत्यन्त दुःखित हो, बहुत उदास हुए ॥ १ ॥

[नोट—इससे जान पढ़ता है कि, लक्ष्मण प्रथम कुछ दूर चले आये  
और फिर जानकी जी के वाल्मीकिआश्रम में जाने की प्रतीक्षा में, कहाँ छिपे  
खड़े रहे थे । ]

अब्रवीच महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् ।

सीतासन्तापञ्चं दुःखं पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥

<sup>१</sup> प्रणिधाय—तापसीनां हस्ते दत्त्वा । ( गो० )

\* पाठान्तरे—“ परिदाय ” ।

वे महातेजस्वी, परामर्श द्वारा सहायता देने वाले सारथी सुमंत्र से बोले—हे श्रीरामचन्द्र जी के सारथि ! देखो सीता जी के सन्ताप का वृत्तान्त सुन कर, श्रीरामचन्द्र जी को बड़ा दुःख होगा ॥ २ ॥

**ततो दुःखतरं किंनु राघवस्य भविष्यति ।**

**पत्रीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥**

इससे बढ़ कर श्रीरामचन्द्र जी को और उस दुःख हो सकता है कि, महाराज को अपनी शुद्ध चरित्रा पत्नी जानकी त्याग देनी पड़ी ॥ ३ ॥

**व्यक्तं दैवादहं मन्ये राघवस्य विनाथवम् ।**

**वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ ४ ॥**

हे सारथे ! जानकी जी का यह वियोग महाराज को अदृष्ट के फल से प्राप्त हुआ है। मुझे तो इस बात का अब निश्चय हो गया है कि, दैव को कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता अर्थात् भाव्य के लिखे को कोई नहीं मिटा सकता ॥ ४ ॥

**यो हि देवान्सगन्धर्वानसुरानसहराक्षसैः ।**

**निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवं पर्युपासते\* ॥ ५ ॥**

देखो, जो क्राघ में भर, देवता, गन्धर्व दैत्य और राक्षसों का नाश कर सकते हैं, वे श्रीरामचन्द्र जी ( भी ) दैव के वशीभूत हुए देख पड़ते हैं ॥ ५ ॥

**पुरा रामः पितुर्विक्याहण्डके विजने वने ।**

**उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ॥ ६ ॥**

देखो न, पहिले तो उन्होंने विता को आज्ञा से चौदहर्ष निर्जन दण्डकवन में वास किया ॥ ६ ॥

\* पाठान्तरे—“दैवमनुवर्तते । ”

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् ।

पैराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥

परन्तु उससे भी अधिक उनके लिये यह सीता का त्याग रूपी दुःख है, जो नगरवासियों के वचनों के कारण उनको प्राप्त हुआ है। मेरी समझ में तो उनका यह कार्य बड़ा ही निष्ठुर है ॥ ७ ॥

को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन्यशोहरे ।

मैथिलीं \*समनुप्राप्तः पैरैर्हीनार्थवादिभिः ॥८॥

हे सुमंत ! न्यायशूल्य अर्थात् अनुचित बात कहने वाले, नगरवासियों के कथन मात्र से सीता का त्याग जैसा यशनाशकारी कर्म कर बैठना—कौनसा ( बड़ा ) धर्म का काम है ? ॥ ८ ॥

एता वाचो बहुविधाः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः ।

सुमन्त्रः श्रद्धया प्राज्ञो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

इस प्रकार की लक्ष्मण जी की अनेक बातें सुन, बुद्धिमान सुमंत्र श्रद्धापूर्वक कहने लगे ॥ ९ ॥

न सन्तापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति ।

दृष्टमेतत्पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥ १० ॥

भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायो विसौख्यभाक् ।

प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्दृतम् ॥ ११ ॥

हे सौमित्र ! तुम मैथिली के लिये दुःखी मत हो । हे लक्ष्मण ! दुर्वासा ने तुम्हारे पिता के सामने ही इस बात को विचार कर निर्णीत कर दिया था कि, श्रीरामचन्द्र प्रायः

\* पाठान्तरे—“प्रति सम्प्राप्तः ।” † पाठान्तरे—“दुःखप्रायोपि सौख्यभाक् ।” ‡ पाठान्तरे—“प्रियैर्दृतम् ।”

दुःखी ही रहेंगे और उन्हें सुख नहीं मिलेगा । उनका अपने प्यारे जनों से शीघ्र ही वियोग होगा ॥ १० ॥ ११ ॥

त्वां चैव मैथिलीं चैव \*शत्रुघ्नभरतौ तथा ।

सन्त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥ १२ ॥

सीता ही को भी—यह धर्मात्मा महाराज तो कुछ अधिक समय बीतने पर, तुमको, शत्रुघ्न को और भरत जी को भी त्याग देंगे ॥ १२ ॥

इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतेऽपि वा ।

राजा वो व्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥ १३ ॥

हे लक्ष्मण ! यह बात तुम भरत और शत्रुघ्न से भी मत कहना । जिस समय, वडे महाराज ( दशरथ ) ने दुर्वासा से तुम लोगों के बारे में पूँछा था, तब उन्होंने यह बात ॥ १३ ॥

\*महाजनसमीपे च मम चैव नरर्षभ ।

ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ १४ ॥

मेरे और वशिष्ठ जी के सामने महाराज ( दशरथ ) से यह बात कही थी ॥ १४ ॥

ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः ।

सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसन्निधौ ॥ १५ ॥

दुर्वासा की यह बात सुन महाराज दशरथ ने मुझसे कहा था कि, हे सूत ! तुम इस बात को किसी( अन्य ) जन के सामने मत कहना ॥ १५ ॥

१ महाजनसमीपे—दशरथसमोप इत्यर्थः । ( गो० )

\* पाठान्तरे—“ शत्रुघ्नभरतादुभौ । ”

तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितः ।

नैवजात्वनृतं कुर्यामिति मे सौम्यदर्शनम् ॥ १६ ॥

इसी से, लोकपाल-समान महाराज के मना कर देने से आज तक यह बात किसी से नहीं कहीं अर्थात् क्षिपा कर रखी । क्योंकि मेरे मतानुसार इतने बड़े महाराज की आज्ञा टालना उचित नहीं था ॥ १६ ॥

सर्वथैव न वक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रतः ।

यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥ १७ ॥

हे सौम्य ! मुझे तो तुमसे भी यह बात किसी दशा में भी कहनी उचित नहीं है । किन्तु हे रघुनन्दन ! यदि तुम सुनना चाहते हो तो मैं कहता हूँ ; “सुनिये” ॥ १७ ॥

यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितं पुरा ।

तथाप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ १८ ॥

यद्यपि पूर्वकाल में यह बात बड़े महाराज ने मुझे एकान्त में सुनायी थी, तथापि मैं इसे तुमसे कहता हूँ । क्योंकि भाग्य तो अमिट है ॥ १८ ॥

येनेदमीदृशं प्राप्तं दुःखं शोकसमन्वितम् ।

न त्वयाऽभरतस्याग्रे शत्रुघ्नस्यापि सन्निधौ ॥ १९ ॥

भाग्यदोष ही से तो इस प्रकार का दुःख और शोक प्राप्त हुआ है । तो भी यह गूढबात तुम भरत और शत्रुघ्न से मत कह देना ॥ १९ ॥

\* पाठान्तरे—“भरते वाच्यं ।”

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् ।  
 तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः सूतं तं वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥  
 इति पञ्चाशः सर्गः ॥

सुमंत्र के इन गम्भीर वचनों को सुन, लद्मण जी बोले—हे सूत ! तुम समस्त वृत्तान्त ज्यों का त्यों कहो ॥ २० ॥

उत्तरकाण्ड का पवासनी सर्ग समाप्त हुआ ।

उत्तरकाण्ड का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ ।



॥ श्रीः ॥

## श्रीमद्रामायणपारायणसमापनक्रमः श्रीवैष्णवसम्प्रदायः



एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।  
प्रव्याहरत विस्तव्यं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।  
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।  
देशोऽयं क्षेषाभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥

कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।  
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्वर वर्धताम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां  
न्याय्येन मागेण महीं महीशाः ।  
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं  
ज्ञाकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनोयगुणावधये ।  
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥

वेदवेदान्तवेद्याय भेदश्यामलमूर्तये ।  
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।  
 भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥  
 पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।  
 नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥  
 त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।  
 सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥  
 सौमित्रिणा च जानक्या चापवाणासिधारिणे ।  
 संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिनैः मम मङ्गलम् ॥ ११ ॥  
 दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरणत्रवे ।  
 गृध्रराजाय भक्ताय मुकिदायस्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥  
 सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।  
 सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्गिकाय मङ्गलम् ॥ १३ ॥  
 हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायने ।  
 वालिप्रमथानायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ १४ ॥  
 श्रीमते रघुवीराय सेतूलङ्घितसिन्धवे ।  
 जितराज्ञसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥  
 श्रासाद्य नगरोऽदिव्यामभिषिकाय सीतया ।  
 राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥  
 मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोपमैः ।  
 सर्वैश्च पूर्वोराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥

माध्वसम्प्रदायः  
 स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां  
     न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः ।  
 गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं  
     लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥  
 काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।  
 देशोऽयं ज्ञोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥  
 लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।  
 येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥  
 मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणावधये ।  
 चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ४ ॥  
 कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा  
     बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।  
 करोमि यद्यत्सकलं परस्मै  
     नारायणायेति समर्पयामि ॥ ५ ॥

---

स्मार्तसम्प्रदायः  
 स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां  
     न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः ।  
 गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं  
     लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥  
 काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।  
 देशोऽयं ज्ञोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥  
 अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।  
 अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ ३ ॥

वरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।  
 पकैकमद्दरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥  
 श्रृगवन्नामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।  
 स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सद्गा ॥ ५ ॥  
 रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।  
 रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ६ ॥  
 यन्मङ्गलं सहस्राद्दे सर्वदेवनमस्तुते ।  
 वृत्रनाशे समभवत्तते भवतु मङ्गलम् ॥ ७ ॥  
 मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने ।  
 चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥  
 यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा ।  
 अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ९ ॥  
 अमृतोत्पादने दैत्यान्घतो वज्रधरस्य यत् ।  
 अदितिर्मङ्गलं प्रादातते भवतु मङ्गलम् ॥ १० ॥  
 श्रीन्विक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।  
 यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ११ ॥  
 ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।  
 मङ्गलानि महाबाह । दिशन्तु तव सर्वदा ॥ १२ ॥  
 कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा  
     बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।  
 करोमि यद्यत्सकलं परस्मै  
     नारायणायेति सर्मर्पयामि ॥ १३ ॥